I.S.S.N. - 0971 - 9024 R.N.I. No. 50199/88

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 23, अंक 01–02 **जनवरी–जून 2011**
Volume 23, Issue 01-02 **January-June 2011**

मानद – सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष-गणित,
शासकीय होलकर (स्वशासी) विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर – 452 001 भारत
☎ 0731 – 2797790, 2545421

HONY. EDITOR
Dr. Anupam Jain
Professor & Head-Department of Mathematics,
Govt. Holkar (Autonomous) Science College,
INDORE - 452 001 INDIA
email : anupamjain3@rediffmail.com

❖ ❖ ❖

प्रकाशक
डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र)

PUBLISHER
Dr. Ajitkumarsingh Kasliwal
President
KundaKunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 2545744, 2545421 (O) 2434718, 09302104700

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से अध्यक्ष- डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स**, LG - 11, ट्रेड सेन्टर, साऊथ तुकोगंज, इन्दौर से मुद्रित फोन : 4065518 **सम्पादक : डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर**

अर्हत् वचन सम्पादक मंडल / Arhat Vacana Editorial Board, 2010 & 2011

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन (अध्यक्ष)
सेवानिवृत्त प्राचार्य,
104, नई बस्ती,
फिरोजाबाद – 283 203

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक – गणित एवं प्राचार्य,
554, सराफा, दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
जबलपुर – 482 002

प्रो. राधाचरण गुप्त
सेवानिवृत्त प्राध्यापक – गणित,
आर-20, रसबहार कॉलोनी, लहरगिर्द,
झांसी – 284 003

डॉ. तकाओ हायाशी
प्राध्यापक - विज्ञान इतिहास,
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो – 610 – 03 **जापान**

प्रो. जगदीश चन्द्र उपाध्याय
प्राध्यापक – इतिहास,
172, रेडियो कॉलोनी,
इन्दौर – 452 001

श्री सूरजमल बोबरा
निदेशक – ज्ञानोदय फाउन्डेशन,
9/2, स्नेहलतागंज,
इन्दौर – 452 003

श्री जयसेन जैन
सम्पादक - सन्मति वाणी,
201, अमित अपार्टमेन्ट, 1/1 पारसी मोहल्ला,
इन्दौर – 452 001

डॉ. अनीता जैन
प्राचार्य - श्री जैन दिवाकर महाविद्यालय
ओल्ड पलासिया
इन्दौर – 452 001

प्रो. जे.एस. कुशवाह
विभागाध्यक्ष - अंग्रेजी
299, गोयल नगर (पूर्व)
इन्दौर – 452 019

Shri Narendra Prakash Jain (President)
Retired Principal,
104, Nai Basti,
Firozabad - 283 203

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor of Mathematics & Principal,
554, Sarafa, Upstairs Diksha Jewellers,
Jabalpur - 482 002

Prof. Radha Charan Gupta
Retired Professor of Mathematics,
R-20, Rasbahar Colony, Lahargird
Jhansi - 284 003

Dr. Takao Hayashi
Professor - History of Science,
Science & Tech. Res. Institute,
Doshisha University,
Kyoto - 610-03 Japan

Prof. Jagdish Chandra Upadhyay
Professor of History,
172, Radio Colony,
Indore - 452 001

Shri Surajmal Bobra
Director - Jñānodaya Foundation,
9/2, Sneh Lataganj,
Indore - 452 003

Shri Jaisen Jain
Editor - Sanmativāṇī,
201, Amit Apartment, 1/1 Parasi Mohalla,
Indore - 452 001

Dr. Anita Jain
Principal - Shri Jain Diwakar College,
Old Palasia
Indore - 452 001

Prof. J.S. Kushwah
H.O.D. - English
299, Goyal Nagar (East)
Indore - 452 019

– सम्पादकीय पत्राचार का पता –

डॉ. अनुपम जैन
'ज्ञान छाया' डी – 14, सुदामा नगर,
इन्दौर – 452 009
फोन : 0731 – 2797790

Dr. Anupam Jain
ëGyan Chhayaí D - 14, Sudama Nagar,
Indore - 452 009
Ph. : 0731 - 2797790

email : anupamjain3@rediffmail.com, 094250-53822

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामायिक सन्दर्भ

अर्हत् वचन वर्ष 23 का यह संयुक्तांक अंक 1-2, जनवरी-जून 2011 आपके हाथों में है। इसमें हमने 12 लेखों, 2 टिप्पणियों एवं अन्य अनेक आख्याओं / गतिविधियों को स्थान देकर 140 पृष्ठों में पाठकों को यथेष्ट सामग्री दी है। दिनांक 18.10.2011 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर का स्थापना रजत जयंती वर्ष प्रारंभ हो रहा है। अतः जुलाई-सितम्बर 2011, अंक-3 एवं अक्टूबर-दिसम्बर 2011 अंक-4 के 2 स्वतंत्र अंकों के अतिरिक्त एक इंडेक्स वाल्यूम (प्रारम्भ से अब तक 23 वर्षों में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका) भी निकालने की योजना है। यह अंक हमारे प्रेरणा स्रोत पूज्यश्री देवकुमार सिंह कासलीवाल (काका सा.) को समर्पित होगा। हमारे पाठकों को याद होगा कि वर्ष 15, अंक 1-2, जनवरी-जून 2003 में हमने 1-14 वर्षों का इंडेक्स वाल्यूम प्रकाशित किया था। विगत 8 वर्षों में शोधार्थियों ने इसका भरपूर उपयोग किया। जो इसकी उपयोगिता को स्वयं प्रमाणित करता है। अब नये इंडेक्स वाल्यूम में 1-23 (1988-2011) वर्षों की सामग्री होगी। हमारे सभी पाठकों को यह अंक भी हम 2011 में ही उपलब्ध कराना चाहते हैं।

अब हम कुछ ज्वलंत / सामायिक विषयों पर चर्चा करेंगे।

दक्षिण की जैन संस्कृति का संरक्षण :– *यह निर्विवाद सत्य है कि जैन धर्म की मूल संस्कृति दक्षिण भारत में संरक्षित है। कर्नाटक प्रांत में तो यह संस्कृति आज भी संरक्षित होकर अनुसंधुत्सुओं को सहजता से उपलब्ध हो रही है। इस कार्य में वहां के पूज्य भट्टारक स्वामी जी महाराजों का बहुत बड़ा योगदान है। उनके प्रयासों से ही प्राचीन पाण्डुलिपियां सुरक्षित रहीं और अनेक सातिशय, दुर्लभ, प्राचीन कलापूर्ण जिनबिम्बों के भी दर्शन हो रहे हैं, किन्तु तमिलनाडु, पाण्डिचेरी, केरल, आंध्रप्रदेश उड़ीसा आदि में स्थितियां इतनी अनुकूल नहीं रही। इस कारण जैन संस्कृति के अनेक स्मारक या तो नष्ट हो गये अथवा उन पर काल की इतनी गहरी परत पड़ गई है कि आज उनको पहचान पाना मुश्किल है।*

खण्डगिरि और उदयगिरि (उड़ीसा) की गुफाओं में जिस तरह से जिन मूर्तियों को विकृत और रूपान्तरित किया जा रहा है और जैन समाज असहाय होकर उसे देख रहा है वह निश्चित ही विचारणीय है। ***श्री आर.के.जैन–मुम्बई*** *ने केरल की जैन संस्कृति को प्रकाश में लाने के लिये बहुत प्रयास किया है और उसके परिणाम भी सामने आ रहे हैं।* ***श्रीमती सरिता महेन्द्र कुमार जैन, चेन्नई*** *के उदात्त आर्थिक सहयोग, गहन अभिरुचि तथा तमिलनाडु के कुछ मठों के युवा भट्टारक स्वामीजी की सक्रियता के कारण तमिलनाडु की तस्वीर बदल रही है। अब दक्षिण भारत की यात्रा करने वाले जैन तीर्थयात्रियों द्वारा तमिलनाडु को यात्रा पथों में सम्मिलित किया जाने लगा है। बहन सरिता जी ने तमिलनाडु के शताधिक प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराकर जैन संस्कृति की स्वर्णाक्षरों में अंकित की जाने वाली सेवा की है। आप अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला महासभा की राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन की संरक्षक हैं। ऐसी मातृशक्ति सदैव आदरणीय है।*

अपने प्राचीन तीर्थों के इतिहास तथा सांस्कृतिक अवशेषों के संरक्षण के प्रति जैन समाज की अभिरुचि बढ़ी है। ***प्रो. भागचन्द जैन 'भास्कर' – नागपुर*** *के कुशल संपादकत्व में प्रकाशित*

*होने वाली प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार पत्रिका के संपादकीय आलेख, प्रकाशित होने वाले दुर्लभ चित्र इतिहास प्रेमियों के लिये बड़े महत्वपूर्ण हैं। सम्पादकीय आलेखों में तो प्रो. भास्कर का ज्ञान गांभीर्य सतत् दृष्टिगोचर होता है। इसी श्रृंखला में **श्री हेमन्त कुमार जैन-जयपुर** ने टाईम्स ऑफ इण्डिया (20.04.10) में प्रकाशित एक रिपोर्ट के आधार पर मदुरै में क्षरित होती जैन संस्कृति पर एक टिप्पणी हमें भेजी जो इसी अंक (पृ. 111-112) में प्रकाशित है। इस अंक में प्रकाशित दोनों टिप्पणियां डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा की गौवंश संरक्षण पर तथा श्री हेमन्त कुमार जैन की मदुरै में नष्ट होती जैन संस्कृति हमारे लिये चिन्तन की महत्वपूर्ण सामग्री देती हैं। क्या शिक्षित और सम्पन्न जैन समाज का यह कर्तव्य नहीं है कि वह इनमें उठायें गये मुद्दों पर विचार कर त्वरित कार्यवाही करें ? जिससे अहिंसा फेडरेशन तो मजबूत हो ही हमारी प्राचीन मूल संस्कृति के दिग्दर्शक नग्न दिगम्बर जिन बिम्बों को समाहित करने वाले फलक, गुफायें भी संरक्षित की जा सके।*

जैनागम सूचीकरण परियोजना *- भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की गतिविधियों में विगत 2 दशकों में पर्याप्त विविधता आई है। धर्म संरक्षिणी, तीर्थ संरक्षिणी, श्रुत संरक्षिणी, महिला महासभा के बाद इतिहास लेखन हेतु एक स्वतंत्र ट्रस्ट का गठन करने की योजना एवं अब इस श्रुत पंचमी 2011 से अ.भा.दि. जैन श्रुत संवर्द्धनी महासभा द्वारा श्री रतनलाल जैनमती चेरिटेबल ट्रस्ट के साथ मिलकर जैनागम सूचीकरण परियोजना का प्रारंभ करना एक सुखद संयोग है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इंदौर द्वारा 1998 में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की योजना शुरु की गई थी और उस समय कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ-इंदौर, पार्श्वनाथ विद्यापीठ-वाराणसी, सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट-अजमेर, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर एवं अनेकांत ज्ञान मंदिर -बीना के पुस्तकालयों की परिग्रहण पंजियों की डाटा इन्ट्री एक विशेष साफ्टवेयर में कराई गई थी। उस समय लगभग 40,000 पुस्तकों की इन्ट्री कर दिये जाने के बाद अपरिहार्य कारणों से हमें अपना ध्यान जैन पाण्डुलिपियों पर केन्द्रित करना पड़ा और यह योजना नैपथ्य में चली गई। जैन साहित्य की किसी भी विधा पर शोध कार्य करने वाले शोधार्थियों की आज सबसे बड़ी दिक्कत यह होती है कि प्रकाशित साहित्य की ही सूचना उसे समुचित रूप से नहीं मिल पाती है तो अप्रकाशित की तो बात ही क्या ? इस दृष्टि से श्रुत संवर्द्धनी महासभा द्वारा हस्तगत योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं इस श्रेष्ठ पहल हेतु महासभाध्यक्ष **श्री निर्मल कुमारजी सेठी** को बधाई देता हूँ। आदरणीय **श्री सी.के.जैन** जैसे वरिष्ठ प्रशासक का मार्गदर्शन, सुदीर्ध अनुभव, राजनेताओं से सतत् सम्पर्क इस योजना के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा किन्तु यह योजना अत्यन्त व्यापक एवं जटिल है। भाषा का वैविध्य एक बड़ी अड़चन रहेगी। अनेक भाषा-भाषी समर्पित कार्यकर्ताओं की टीम, सुव्यवस्थित नेटवर्क, आंकड़ों का विश्लेषण कर आधुनिक तकनीक से उनको संपादित करने में सक्षम केन्द्रीय कार्यालय ही इस योजना को सफलता के शिखर तक पहुंचा सकेगा। सम्पर्क (साधुओं , पत्रिकाओं, विद्वानों, प्रकाशकों, शोध संस्थानों की सूची), दि. जैन तीर्थ निर्देशिका, दि. जैन मन्दिर निर्देशिका के संकलन, संपादन एवं प्रकाशन से हमें इसकी जटिलता का अहसास है तथापि हमारा जो भी सहयोग अपेक्षित होगा, प्रदान कर हमें प्रसन्नता होगी क्योंकि यह संस्कृति संरक्षण का दीर्घगामी, स्तुत्य प्रयास है। क्या ही अच्छा हो इसे एक नहीं अनेक केन्द्रों पर एक साथ चलाया जाये? इससे परिणाम शीघ्र एवं जरूर आयेंगे।*

जैन पाण्डुलिपियों का सूचीकरण एवं संरक्षण *- भगवान महावीर 2600वाँ जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर जैन पाण्डुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी निर्माण योजना के तहत चयनित 5 नोडल एजेन्सियों ने 2002-03 तथा 2003-04 से 2,50,000 से अधिक पाण्डुलिपियों का सूचीकरण किया किन्तु आज तक यह सूचियां न तो प्रकाशित हुई और न किसी वेबसाईट पर उपलब्ध हुई।*

फलतः इस महत्वपूर्ण कार्य से आज भी अकादमिक जगत लाभ नहीं प्राप्त कर पा रहा है। पूर्व प्रकाशित पाण्डुलिपि ग्रंथागारों की सूचियों से अनेक अप्रकाशित पाण्डुलिपियां प्रकाश में आई हैं। कतिपय प्रमुख प्रकाशित सूचियां निम्नवत् हैं :-

1. *जैन ग्रंथावली, श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, मुम्बई, 1908*
2. *ग्रंथ - नामावलि - ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, झालरापाटन, ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन, झालरापाटन, 1931*
3. *जिनरत्नकोश, हरि दामोदर वेलंकर, भण्डारकर ओरियेन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1944*
4. *कन्नड़प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रंथसूची, के. भुजबली शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1948*
5. *आमेर शास्त्र भण्डार की ग्रंथ सूची, कस्तूरचंद कासलीवाल, रामचंद्र खिन्दूका, जयपुर, 1948*
6. *राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची, भाग 1-5, कस्तूरचंद कासलीवाल आदि, दि. जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी, 1954, 1957, 1962, 1972*
7. *Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Jesalmer Collection, Dalsukh Malvania, L.D. Institute of Indology, Ahmedabad, 1972*
8. *Catalogue of Manuscripts, L.D. Institute of Indology Collection, Vol-V, VI, Jitendra B. Shah, Institute of Indology, Ahmedabad, 1972*
9. *Treasures of Jaina Bhandars, Umakant P. Shah, L.D. Institute of Indology, Ahmedabad, 1978*
10. *दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली, कुंदनलाल जैन आदि, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1981*
11. *Jain Granth Bhandars in Jaipur and Nagour, P.C. Jain, Centre for Jain Studies University of Rajasthan, Jaipur, 1981*
12. *जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र, सेवा मंदिर रावटी, जोधपुर, 1988*
13. *श्री जैन सिद्धांत भवन ग्रंथावली, भाग 1-2, ऋषभचंद्र जैन 'फौजदार' आदि जैन सिद्धांत भवन प्रकाशन, आरा, 1987*
14. *श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर, गाँधी चौक, गंजबासौदा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ सूची, सुमनकुमार 'सुमन', दिग. जैन समाज, गंजबासौदा, 1988*
15. *Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Government Manuscripts Library B.O.R.I. Jaina Litrature and Philosophy, Com. H.R. Kapadia, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1988*
16. *अणहिलपाटकर (पाटन) जैन ग्रंथ भण्डार की हस्तलिखित ग्रंथ सूची, भाग 1-4, शारदाबेन चिमनभाई एजुकेशनल रिसर्च सेन्टर, अहमदाबाद, 1991*
17. *जैन सिद्धांत भास्कर-प्राच्य दुर्लभ पाण्डुलिपि विशेषांक, 1994-95, राजाराम जैन, देवकुमार ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, आरा, 1995*
18. *अमर ग्रंथालय, दि. जैन उदासीन आश्रम, इंदौर (म.प्र.) में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची, अनुपम जैन, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर एवं श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर, 2000*

19. जैसलमेर (राज.) के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, सेवा मंदिर, रावटी, जोधपुर, 2000
20. अनेकांत भवन ग्रंथ रत्नावली, भाग 1-3, ब्र. संदीप जैन 'सरल', बीना, 2000, 2001
21. आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित शास्त्र भण्डार, खजुराहों (म.प्र.) में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची, अनुपम जैन आदि, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर एवं श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर, 2000
22. भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेव में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची, अनुपम जैन आदि, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर एवं श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर, 2001
23. राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान-कन्नड़ और प्राकृत हस्तप्रतियों की वर्णनात्मक सूची, भाग-4, बी.एस सण्णय्या, अनु. पी.डी. श्रीधर, श्रुतकेवली एजुकेशन ट्रस्ट, श्रीधवलतीर्थ, श्रवणबेलगोला, 2003
24. कैलास श्रुतसागरसूरि ग्रंथ सूची, आचार्य श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर में संग्रहीत हस्तलिखित ग्रंथों की विस्तृत सूचियां, श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा तीर्थ, गांधीनगर, 2003, 2004, 2005, 2006
25. Catalogue of Jaina Manuscripts in India house Library, Institute of Jainology, London, 2006
26. Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Bhattarkiya Granth Bhandar, Nagour Vol. 1-5, P.C. Jain, Centre for Jain Studies, University of Rajasthan, Jaipur, 1978, 1981, 2009, 2011
27. इन्दौर ग्रंथावली भाग - 1 (कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर में संग्रहीत पांडुलिपियों की सूची), अनुपम जैन एवं ब्र. अनिल जैन, इन्दौर, 2011 (मुद्रणाधीन)

इसके अलावा भी कुछ सूचीपत्र हो सकते हैं इनकी सूचनाएं अपेक्षित हैं। कुछ सूचियों को मात्र भण्डार के उपयोग हेतु ही तैयार किया गया किन्तु उनका विधिवत प्रकाशन नहीं हुआ।

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन द्वारा मध्यप्रदेश के जैन शास्त्र भण्डारों का सूचीकरण का कार्य कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से कराया गया है। इसका विस्तृत विवरण हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे। इस अंक में जिन लेखकों के लेखों को स्थान दिया गया है उनके प्रति अनेकशः आभार।

अर्हत् वचन के इस संयुक्तांक 23 (1-2) के सृजन में संस्थाध्यक्ष डॉ. अजित कासलीवाल एवं आश्रम ट्रस्ट के सभी ट्रस्टियों का संरक्षण एवं सहयोग रहा। मेरे महाविद्यालयीन साथियों विशेषतः महाविद्यालय के गणित विभाग के साथी प्राध्यापकों एवं प्राचार्य **डॉ. एस.एल.गर्ग** ने भी अप्रत्यक्ष रूप से बहुत सहयोग दिया है उन्हें भी बहुत-बहुत धन्यवाद।

इस अंक में प्रकाशित सामग्री पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

श्रुतपंचमी, 06.06.2011 **डॉ. अनुपम जैन**

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 7-17

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आधुनिक जीव विज्ञान से परे जैन जीव विज्ञान

■ प्रभात कुमार जैन *

सारांश

कर्मों की 8 प्रकृतियों एवं उनके बंध की प्रक्रिया को बताने के साथ ही एक समय में प्रबद्ध कर्मवर्गणाओं के 8 कर्मों में विभाजन की रुपरेखा बताई गई है। आत्मा के साथ जुड़े इन कर्मों के कारण ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्धारित होता है।

जीव के अपने-अपने कर्म के उदय से उसमें उपस्थित डीएनए की श्रृंखला में Nucleotide में भिन्न-भिन्न प्रकार के बंध होते हैं जो लाखों लाखों प्रकार के हैं, जिनसे प्रत्येक जीव के गुण भिन्न-भिन्न होते हैं।

किन्तु इन बंधनों को पुरुषार्थ से परिवर्तित भी किया जा सकता है। वैज्ञानिक इस कार्य में संलग्न हैं, सफलताएं मिल रही हैं और भविष्य में मिलेगीं भी किन्तु बाधा अभी यह है कि कार्माण वर्गणा इतनी सूक्ष्म हैं कि उनका वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से भी देख पाना अभी सम्भव नहीं है। भविष्य के गर्भ में क्या दिया है? इसे जानना अभी कठिन सा है। इस प्रबंध में तीन स्थानों पर रासायनिक प्रतिक्रियाएं देकर यही सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि परमाणु में या उनसे बने यौगिकों में भिन्न-भिन्न रचनाएं बनने या नये प्रकार के बॉन्ड बनने पर किस प्रकार से उनके गुणों में अंतर आ जाता है। इसी प्रकार से भावों से क्रियाओं से कार्माण वर्गणाओं में भी अंतर आता है जिससे औदारिक या वैक्रियिक शरीर की रचना, आकृति तथा संस्कारों में अंतर आ जाता है।

लोक के मौलिक छह अवयवी द्रव्यों में एकमात्र चेतनत्व गुण से युक्त आत्मा (अप्पा, आदा), असंख्यात प्रदेशी, अमूर्तिक, शाश्वत द्रव्य है जो संसारी अवस्था में अर्थात् द्रव्यकर्म से युक्त कार्माण शरीर तथा सहयोगी तैजस शरीर से युक्त किसी औदारिक या वैक्रियिक शरीर के मुख्यतः आश्रित है। इस कार्माण शरीर का निर्माण अनन्तानन्त कार्माण वर्गणाओं से हुआ है (जो अनादि है) तथा जो किसी जीव के मन, वचन या / और काय के परिस्पंदन के कारण द्रव्यकर्म में परिणत हो चुकी हैं तथा समस्त, असंख्यात आत्मप्रदेशों के साथ अब एकक्षेत्रावगाही व समाङ्ग रूप से बंधी हुई है। प्रश्न होता है कि इन कर्मों का बन्ध हुआ कैसे ? सामान्य सा उत्तर है कि कथंचित् अनन्तकालीन पूर्वबद्ध कर्मों के उदय से उत्पन्न भावकर्म और भावकर्म से प्रभावित/प्रेरित होकर अनन्त ज्ञेयों में रुचि या आकर्षण- विकर्षण अर्थात् राग, द्वेष, मोहादि के कारण। प्रत्येक समय किसी भी जीव के साथ कर्मों का आस्त्रव (आगमन) हो रहा है, उनकी संख्या कितनी है ? उनका विभिन्न अष्ट कर्म प्रकृतियों में विभाजन कैसे होता है? वे घातिया एवं अधातिया कर्मों में किस प्रकार से बंटते हैं तथा काल अथवा एक समय प्रबद्ध कर्मवर्गणाओं के विभाजन का गणितीय आधार क्या है ?

* के.एच-93, एफ.एफ.-2, शान्ति निकेतन, कविनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.) 210002

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने एक समय प्रबद्ध कर्म वर्गणाओं की संख्या को अभव्य जीवों की कुल संख्या का अनन्तगुणा तथा समस्त सिद्ध राशि की संख्या का अनन्तवां भाग बतलाया है। आचार्य गुणधर प्रणीत 'कसायपाहुड' के आधार पर आचार्य यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों के रूप में रचित कसायपाहुड सुत्त की व्याख्या में एक समयप्रबद्ध कर्म वर्गणाओं का विभिन्न कर्मों में विभाजन निम्न प्रकार से निर्देशित किया है।

कार्माण वर्गणाओं का सबसे बड़ा अंश-वेदनीय कर्म में जाता है, शेष द्रव्य कर्म में से, वेदनीय कर्म द्रव्य से कुछ कम (आधा) अंश मोहनीय कर्म में परिणमित होता है। इनसे भी कुछ कम द्रव्यकर्म ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्म प्रकृतियों में जाता है जो इन तीनों में परस्पर समान हैं। शेष में से इन तीनों कर्मों के द्रव्य से कुछ कम किन्तु परस्पर में समान-समान नाम व गोत्र कर्मों में जाता है तथा शेष व सबसे कम भाग आयु कर्म में प्रवेश करता है।

गणितीय आधार पर यदि एक समय प्रबद्ध कर्म वर्गणाओं का द्रव्य 30, 720 मान लिया जाये तब उसका विभाजन निम्न प्रकार से होता है।

1. सम्पूर्ण द्रव्यराशि 30,720 के चार समान अंश करने पर इनके 7680-7680 के चार अंश बनते हैं। इनमें एक अंश को 30,720 सम्पूर्ण से ऋण करने पर शेष 23040 को समान-समान रूप से आठों कर्मों में अर्थात् 2880-2880 अंश चले जाते हैं।

2. शेष लघुभाग 7680 के पुनः चार समान भाग 1920, 1920 अंश के प्राप्त होते हैं। इनमें से बहुभाग अर्थात् तीन अंश 1980 x 3 = 5760 वेदनीय कर्म में परिवर्तित होते हैं।

3. शेष 1920 राशि के पुनः समान चार अंश करने पर 480-480 के अंश प्राप्त होते हैं। इनमें से बहुभाग अर्थात् 980 x 3 = 1440 अंश मोहनीय कर्म में परिणमित हो जाते हैं।

4. शेष लघुभाग 480 के पुनः चार समान अंश 120-120 प्राप्त होते हैं। इनमें तीन 120-120 अंश ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्मों में पहुंच जाते हैं।

5. शेष उपलब्ध 120 अंश के पुनः चार समान-समान खण्ड 30-30 अंश के प्राप्त होते हैं जिनमें तीन अंश अर्थात् 30 x 30 = 90 में से आधे-आधे 45-45 अंश नाम व गोत्र कर्मों में पहुंचते हैं तथा शेष 30 अंश आयु कर्म में पहुंचते हैं।

इस प्रकार एक समय प्रबद्ध अनन्त कर्म वर्गणाओं का इसी प्रकार विभाजन (वितरण) होता है। इन वर्गणाओं का कुल विभाजन का योग इस प्रकार बनता है -

कुल वर्गणाद्रव्य (माना) 30720, कुल कर्म प्रकृति 8 हैं।

कर्म राशि	वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरणीय	दर्शनावरणीय	अन्तराय	नाम	गोत्र	आयु
प्रथम विभाजन	2880	2880	2880	2880	2880	2880	2880	2880
द्वितीय विभाजन	5760	1440	120	120	120	45	45	30
कुल योग -	8640	4320	3000	3000	3000	2925	2925	2910

यदि इस राशि को प्रतिशत के आधार पर निरूपित करें तब

कर्म राशि	वेदनीय	मोहनीय	ज्ञानावरणीय	दर्शनावरणीय	अन्तराय	नाम	गोत्र	आयु
कुलद्रव्य 30720 में से	8640	4320	3000	3000	3000	2925	2925	2910
प्रतिशत	28.125	14.063	9.765	9.765	9.765	9.522	9.522	9.473

100.000

एक समयप्रबद्ध कर्म वर्गणाओं का इस प्रकार अष्ट कर्मों में विभाजन होने के पश्चात् प्रश्न उठता है कि प्रत्येक मूल कर्म की उत्तर प्रकृतियों में विभाजन कैसे होता है? यह पुनर्विभाजन प्रत्येक बद्धकर्म के लिये भावों पर निर्भर करता है। माना, वेदनीय कर्म का द्रव्य इसकी दो उत्तर प्रकृति साता व असाता में जाना है, तब आचार्य बतलाते हैं कि उस समय इन दोनों प्रकार के वेदनीय कर्म की प्रकृति के बंध के योग्य भाव-शुभ या अशुभ जैसे भी थे, जो किसी एक समय में एक ही जाति के होंगे, उसी के अनुरूप प्रकृति बनकर इनका समस्त द्रव्य उसी उत्तर प्रकृति रूप में चला जाता है। यही पुनर्विभाजन सभी कर्मों में किंतु कुछ भिन्न-भिन्न प्रकार से घटित किया जा सकता है। जैसे-नाम कर्म की 42 या 93 उत्तर प्रकृतियों में होता है।

इस गणना से यह ज्ञात हो जाता है कि कि कार्माण वर्गणा के कितने प्रदेश (द्रव्य) किस कर्म में गये किन्तु उनकी प्रकृति कैसे बनी व बंधी, उनकी आंतरिक रचना अर्थात् Chemical structure या Resonatic structure (रासायनिक संरचना या अनुनाद रचना) में कैसा व कैसे परिवर्तन होता है, यह अभी वैज्ञानिकों को ज्ञात नहीं और न ही ऐसी रचना का उल्लेख कहीं देखने में आया है। किन्तु यह निर्विवाद सत्य व तथ्य है कि उनकी भिन्न–भिन्न प्रकृति अर्थात गुण होने से, रासायनिक संरचना में अन्तर अवश्य आता है क्योंकि उसी समय विभिन्न प्रकृतियां पड़कर उनके प्रभाव में संरचना में अन्तर आता है। रसायन विज्ञान की दृष्टि से उनके Resonatic structure में अंतर अवश्य आता है जिसका सोदाहरण उल्लेख आगे किया जाने वाला है। इस तथ्य का सबसे रुचिकर पक्ष यह है कि प्रत्येक जीव अपने साथ अनन्तानन्त कार्माण वर्गणाओं से निर्मित कार्माण शरीर लेकर जब अगले भव में गमन करता है अर्थात् विग्रह गति के पश्चात् गर्भ में प्रवेश करता है, तब गर्भ में आते ही, उसकी विभिन्न कर्म प्रकृतियों के उदय के कारण, तथा अन्तर्मुहूर्त में अपनी पर्याप्ति पूर्ण कर व फिर अपनी शारीरिक रचना पूर्ण करने लगता है। वास्तव में, जो जीव जैसी कर्म प्रकृतियां लेकर आता है, उनके उदय में आने पर उनके प्रभाव को भोगने के लिये अगले भव की वैसी ही परिस्थितियां बनाता है व बनती है। इसी कारण समागम के पश्चात माता व पिता के 46-46 गुणसूत्रों में से 23-23 उसी प्रकार के गुणसूत्र छंटकर परस्पर युग्मित होते हैं। शेष 23-23 अप्रभावी हो जाते हैं। युग्मित गुणसूत्रों में प्रत्येक का 1-1 गुणसूत्र लिङ्ग निर्धारित करने में उत्तरदायी है तथा दोनों के शेष 22-22 गुणसूत्र परस्पर में संयुक्त होकर / बंधकर इस प्रकार से रचना बनाते हैं कि उनके अनुसार

पूर्वोपार्जित कर्म के उदय के अनुसार जो प्रभाव / संस्कार / व्यवहार पड़ने वाला है वे ही क्रियाशील रहें । वे गुणसूत्र व डीएनए (Deoxy Ribonueleic Acid) के द्वारा उन्हीं गुणों को दिखाने वाले परमाणु या अभिलाक्षणिक समूह (Atoms or Functional Groups) को मुक्त रखता है तथा जो गुण / संस्कार प्रगट (दिखाने) नहीं करने होते हैं (क्योंकि उनके उदय रूप कर्म प्रकृति नहीं बंधी हैं।) उन्हीं में बंधन (Bonds) बनकर उन्हें सुरक्षित या अप्रभावी या निष्क्रिय कर देते हैं। अर्थात् किसी विशेष गुण/ संस्कार को प्रगट करने वाला एटम या Functional Group (वे ही अपनी विभिन्न संरचना से विभिन्न गुण प्रदर्शित करने के लिये उत्तरदायी होते हैं), सत्ता रूप में होते हुए भी बन्ध को प्राप्त होने से अप्रभावी हो जाते हैं। इसी प्रभावी व अप्रभावी अवस्था को जैन दर्शन कर्म का उदय व अनुदय संज्ञा से निरूपित करता है। इसके कारण ही एक ही रचना में तनिक या अंतर हो जाने पर गुणों में अंतर आ जाता है। रासायनिक सूत्रों से इसे निम्न प्रकार से समझा सकते हैं -

बैंजीन (Bengene C_6H_6) में सक्रिय रचना होती है तथा इसके 6- Corbon Atoms को 1 से 6 की संख्या से सामान्यतः इस प्रकार दिखाते हैं -

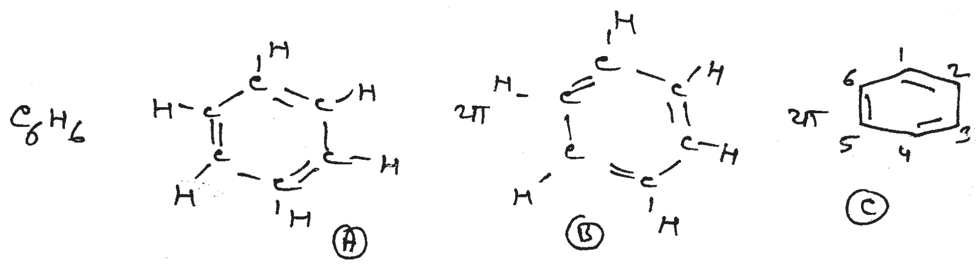

उपरोक्त A व B रचनाएं समान हैं क्योंकि इस चक्रीय रचना में एकल (-) व द्वि बंध (=) निरन्तर घूमते रहते हैं। जिन्हें अनुनाद संरचना कहते है। यदि इस बैंजीन में क्रम संख्या 1 कार्बन की हाइड्रोजन विस्थापित (हटकर या सबस्टीट्यूट) होकर क्लोराइड (–u) या नाइट्रो (-NO_2) समूह आ जाये तब उनकी रचना निम्न होगी -

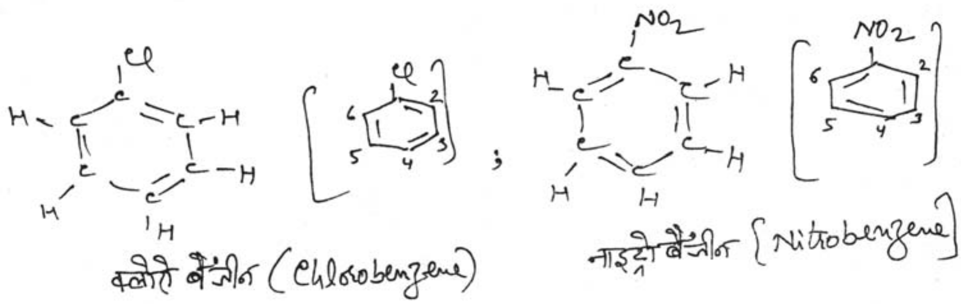

क्लोरोबैंजीन में क्लोराइड समूह के कारण तथा नाइट्रोबेंजीन में नाइट्रो समूह के कारण भिन्न-भिन्न यौगिक आ गये हैं। माना इन यौगिकों में पुनः कोई रासायनिक प्रतिक्रिया सम्पन्न कराकर कोई नया यौगिक उत्पाद बनाया जाये तब समीकरणों से निम्न प्रकार का अन्तर आ जाता है। जैसे H_2SO_4 की क्रिया से Sulphonic acid Group जोड़ने पर -

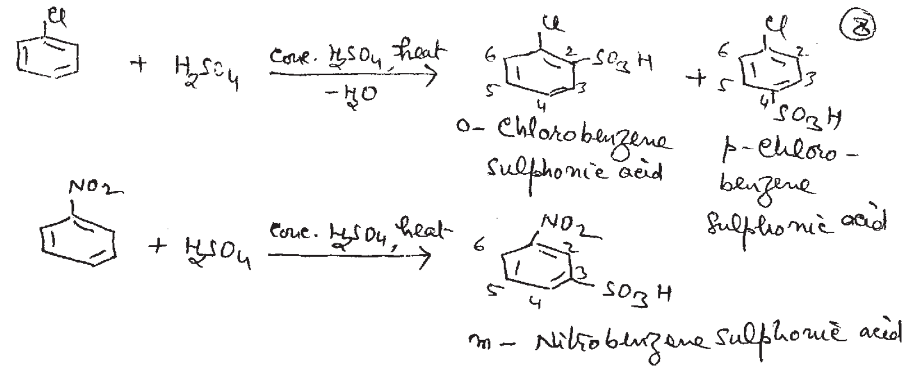

दोनों रासायनिक क्रियाओं में विशेष अन्तर स्पष्ट दिखायी देता है कि क्लोराइड होने पर सल्फ्यूरिक एसिड की क्रिया से दो यौगिक मिलते हैं जिनमें एक में $-SO_3H$ समूह दूसरे कार्बन परमाणु पर तथा दूसरे समावयव में चौथे कार्बन परमाणु पर सल्फोनिक एसिड समूह संयुक्त हुआ जबकि नाइट्रोबेंजीन में नाइट्रो समूह होने से SO_3H समूह तीसरे कार्बन परमाणु पर संयुक्त हुआ। निष्कर्ष निकलता है कि एक ही यौगिक बेंजीन भिन्न-भिन्न समूह या परमाणु होने पर क्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार से होती है अर्थात् यदि किसी स्थान पर कोई परिवर्तन या संयोग या बंध किसी प्रकार से होता है, तब उनका सम्पूर्ण प्रभाव ही विशिष्ट प्रकार का हो जाता है। इस तथ्य का आगे उपयोग किया जायेगा।

ऑक्सीजन व सल्फर का परमाणु संख्या क्रमशः 8 व 16 होने से इनमें कुल इलेक्ट्रॉन की संख्या 8 व 16 है जिनका वितरण क्रमशः (2,6) व (2,8,6) है अर्थात् दोनों के बाह्यतम् कोश में इलेक्ट्रॉन की संख्या 6-6 ही है किन्तु दोनों के गुणों में अन्तर निम्न प्रकार से स्पष्ट होता है।

ऑक्सीजन (Oxygen-O) व सल्फर (Sulphur-S) दोनों हाइड्रोजन (H) से संयोग करके समान प्रकार के यौगिक H_2O (जल) व H_2S (हाइड्रोजन सल्फाइड) बनाते हैं, इनमें H_2O द्रव व H_2S गैस है। क्यों ? ऑक्सीजन में रचना (2,6) होने से यह अपने नाभिक के प्रति आकर्षण अधिक रखती है जब सल्फर की रचना (2,8,6) अर्थात् इसमें एक कोश अधिक होने से नाभिक से दूरी बढ़ गयी, अतः 6 के प्रति आकर्षण कम हुआ जिससे यह निष्कर्ष निकला कि अपनी बाह्यतम कोश की रचना पूर्ण अर्थात् अष्टक (Octet - प्रत्येक तत्त्व का सामान्य स्वभाव है कि वह अपनी बाहरी ऑर्बिट में 8 इलेक्ट्रॉन पूर्ण करने की प्रवृत्ति रखता है, जिससे उनमें इलेक्ट्रॉन ग्रहण करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसे विद्युत ऋणात्मकता कहते हैं) पूर्ण करने की प्रवृत्ति सल्फर की अपेक्षा ऑक्सीजन में अधिक है। इसी गुण के कारण H_2S के अणु परस्पर संपर्क में आने पर भी सल्फर परमाणु दूसरे परमाणु से इलेक्ट्रॉन आकर्षित नहीं कर पाता, जिससे H_2S का प्रत्येक अणु पृथक्-पृथक् ही रहता है अर्थात् H_2S गैस अवस्था में पायी जाती है। जबकि H_2O के अणुओं में अद्भुत प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। H_2O के अणु परस्पर सम्पर्क में आने पर H_2O के अणु का ऑक्सीजन परमाणु, H_2O के दूसरे अणु के हाइड्रोजन परमाणु (जिसमें मात्र एक इलेक्ट्रॉन होने से, इसकी प्रकृति इलेक्ट्रॉन त्यागने की भी है अर्थात् यह विद्युत ऋणात्मक के स्थान पर विद्युत धनात्मक है। से एक विशेष प्रकार के आकर्षण बल से आंशिक बंध (---) बनाता है, जिसे हाइड्रोजन बंध कहते

हैं । इस हाइड्रोजन बॉडिंग के कारण H_2O के असंख्यात अणु परस्पर संयुक्त हो जाते हैं जिससे वह द्रव अवस्था में आ जाता है ।

इसी कारण जल में विशेष प्रभाव आ गया है कि अग्नि पर डालने से उसकी उष्मा को शोषित कर अग्नि को बुझा देता है तथा यह Hydrogen bonding टूटने से जल, भाप (जलवाष्प) में परिवर्तित हो जाता है । अर्थात् सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें कि Hydrogen bonding के कारण जल के बहुत से अणु संयुक्त होकर द्रव अवस्था में आ गये तथा अन्य गुण भी परिवर्तित हो गये ।

उपरोक्त दोनों तथ्यों को जोड़कर कर्म वर्गणाओं तथा गुणसूत्र व डीएनए तथा आरएनए (DNA & RNA) की रचना व उनके प्रभाव पर घटित किया जा सकता है ।

डीएनए में मुख्यतः तीन यौगिक होते हैं, Dioxiribose, नाइट्रोजन युक्त विशेष रचना वाले Purine व Pyramidine तथा Phosphoric Acid । इनके गुण इस प्रकार से हैं -

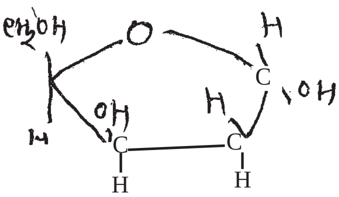

$C_5H_{10}O_4$ डीऑक्सीराइबोस

प्यूरीन Porine – दो प्रकार के हैं–

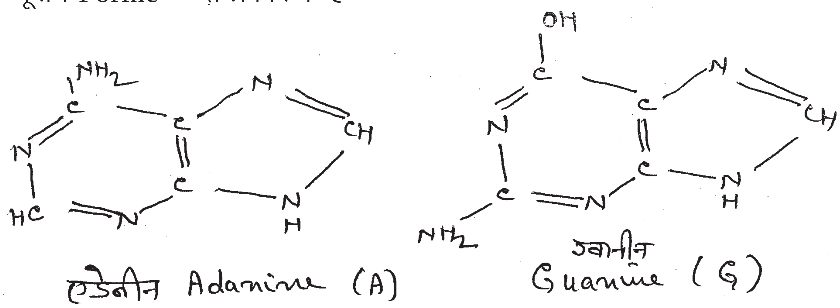

पिरीमिडीन Pyrimiding – मुख्यतः तीन हैं–

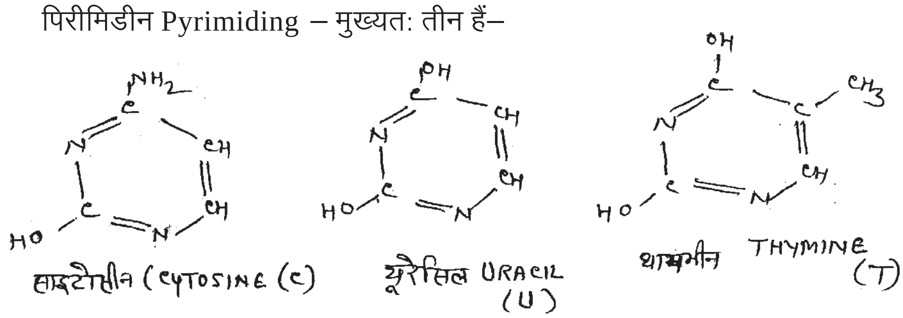

फॉस्फॉरिक एसिड (Phosphoric Acid)

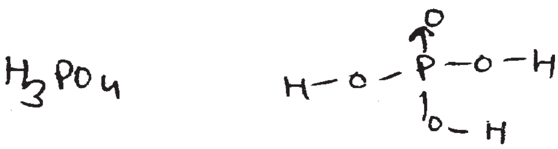

इस सबमें एक अणु Dioxyribose, एक अणु Phosphoric acid तथा Purine या Pyramidine में से कोई एक मिलकर एक संयुक्त अणु बनाता है जिसे Nucleotide कहते हैं। तथा ऐसे कई - कई लाख अणु संयुक्त होकर एक लम्बी श्रृंखला बना लेते हैं जिसमें ऐसी दो श्रृंखला सीढ़ीदार या सर्पिलाकर रचना बनाते हैं। इन दो श्रृंखलाओं में संयोग Nucleotide में उपस्थित नाइट्रोजन व हाइड्रोजन परमाणुओं में एक बड़ी संख्या में हाइड्रोजन Bonding के द्वारा होता है यह डीएनए की रचना है जो निम्न है -

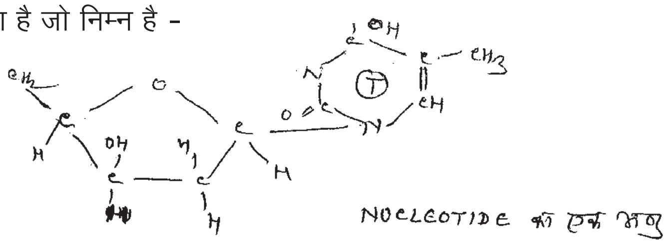

इस Nucleotide एडनीन, ग्वानीन, थायमीन या साइटोसीन में कोई एक अणु हो सकता है। (यूरेसिल केवल आरएनए में पाया जाता है) यहां थायमीन वाले Nucleotide की रचना दी गयी है अब ऐसे लाखों अणु निम्न प्रकार से संयुक्त होते हैं -

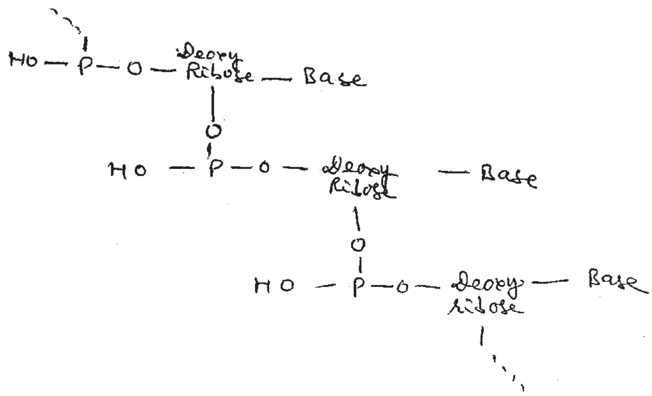

Purine व Pyrimidine ये सभी Base तथा Deoxyribose या Ribose - Sugar कहलाते हैं। इस प्रकार बनी लम्बी Chain की वास्तविक रासायनिक रचना निम्न प्रकार से होती है। कार्बनिक यौगिकों की रचना में कार्बन परमाणु को केवल एक मोड के बिन्दु (>) के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

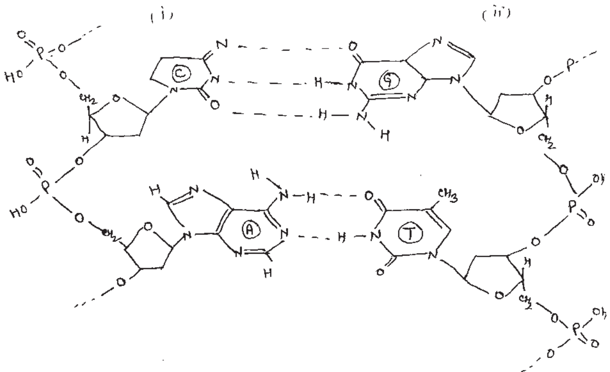

इसी क्रम में (I) व (II) श्रृंखलाओं में एक दूसरे से हाइड्रोजन Bonding के द्वारा संयोग होकर सर्पिलाकार रचना बनती जाती है जिसमें दोनों ओर लाखों-लाखों न्यूक्लिओटाइड होते हैं। अब प्रश्न ये होता है कि डीएनए की इन श्रृंखलाओं का कर्म, कर्मोदय, संस्कार, अनुदय, उपशम आदि से क्या संबंध है ?

ये डीएनए ही किसी भी जीव के सभी गुणों या स्वभावों को अपने में संचित रखते हैं। माता व पिता के समागम के समय उनके 46-46 गुणसूत्रों में से 1-1 गुणसूत्र लिङ्ग निर्धारित करता है। किन्तु यह लिङ्ग विग्रह गति से आये जीव के वेद के उदय के प्रभाव से गुणसूत्रों के संयोग से बनता है अर्थात् जैसा जीव ने बंध किया था, अब नये भव में उसी के अनुरूप पिता के Y व माता के X के सहयोग से पुरुषवेद तथा पिता के X व माता के X के संयोग से स्त्रीवेद बनता है। शेष जैसे-जैसे कर्म के अनुरूप Nucleotides में नाइट्रोजन व हाइड्रोजन एटम में हाइड्रोजन Bonding बनती है या नहीं बनती अर्थात् सभी 148 में से 145 कर्म प्रकृतियों के अनुरूप ही बन्ध होता है। जो प्रकृति उदय में नहीं आती है, वह बंधन युक्त होने से उदय में नहीं आती अर्थात् डीएनए की रासायनिक संरचना में दबाती है तथा जो उदय में आनी है, उसको प्रगट करने वाला परमाणु या अभिलाक्षणिक समूह बंधन से मुक्त रहता है।

इस प्रकार किसी भी जीव में उपस्थित कोशिका के डीएनए की रचना से यह ज्ञात किया जा सकता है कि इसमें किस प्रकार की Bonding होने से कौन सा संस्कार उत्पन्न होगा और कौन नहीं। वैज्ञानिक आजकल इन्हीं की रचना व खोजों में संलग्न हैं जिनमें बहुत से ऐसे जीन की पहिचान कर ली गयी है और की जा रही है, जो किसी रोग या अन्य प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं। उनकी रचना को परिवर्तित करके उसके पहिले प्रभाव को समाप्त व अन्य उत्तम प्रभाव को क्रियाशील बनाया जा सकता है।

अर्थात् निष्कर्ष यह आया कि किसी जीव के मरण के पश्चात नये भव में जाते समय, माता व पिता के वे-वे गुणसूत्र, डीएनए आदि क्रियाशील होंगे, अर्थात् उनकी रचना में उपस्थित Nucleotide क्रियाशील होंगें जैसे गुण, स्वभाव, रचना, आकृति , संस्थान, संहंनन आदि उसके कर्मोदय के कारण बनेंगे।

उदाहरण के लिये, माना किसी जीव को इस भव में कोई रोग जैसे मधुमेह है तब उसकी माता द्वारा प्राप्त गुणसूत्र में मधुमेह उत्पन्न करने वाला डीएनए है तथा जीव के अशुभ कर्म के उदय के कारण यह रोग उसे हो गया। माता के और दूसरे पुत्र-पुत्रियों में भी वह गुणसूत्र आ सकता है और नहीं भी। यदि नहीं आया, तब रोग नहीं होगा। किन्तु यदि वह गुणसूत्र इस रोग के लिये उत्तरदायी रचना को लेकर आया, तब यह सम्भव है कि उस जीव के शुभ कर्म के उदय से उसके सम्पूर्ण आयुकाल में वह उदय में ही ना आये, अर्थात् सत्ता में रहते हुए भी उदय में न आये, यहीं अनुदय अवस्था है। इसी कारण कुल 148 कर्म प्रकृतियों में 3 कर्म प्रकृतियों (तीर्थंकर, आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग) एवं शेष 145 सत्ता में रहती हैं, किंतु Nucleotide की रचना में वे Boding को प्राप्त हो जाने से भी उदय में नहीं हैं।

जैन दर्शनानुसार साधक /श्रमण अपने पुरुषार्थ, तप, यम, नियम, संयम, भावविशुद्धि आदि के कारण ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं कि कर्म प्रकृति में उत्कर्षता, अपकर्षता, उपशम, संक्रमण व उदीरणा तथा काण्डक घात आदि के द्वारा उन्हें अप्रभावी कर देते हैं। यहां फिर प्रश्न उठता है कि क्या इन कार्यों के द्वारा अर्थात् इस ऊर्जा के द्वारा यह परिवर्तन सम्भव है ? एक और रासायनिक प्रतिक्रिया से इसे समझाया जा सकता है।

एक यौगिक एसिटीन (C_2H_2), हाइड्रोजन क्लोराइड से दो पदों में क्रिया करके 1-1 डाइक्लोरोईथेन बनाती है। किन्तु एक पदार्थ बेंजोइक एनहाइड्राइड या ईथर परॉक्साइड की उपस्थिति में क्रिया का स्वरूप बदलकर 1,2 डाइक्लोरो इथेन बनाता है अर्थात् परिस्थितियां परिवर्तित होने पर क्रिया व क्रियाफल परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार सब जीवों के साथ तथा विशेषतः यौगिकों के साथ ऐसा ही होता है।

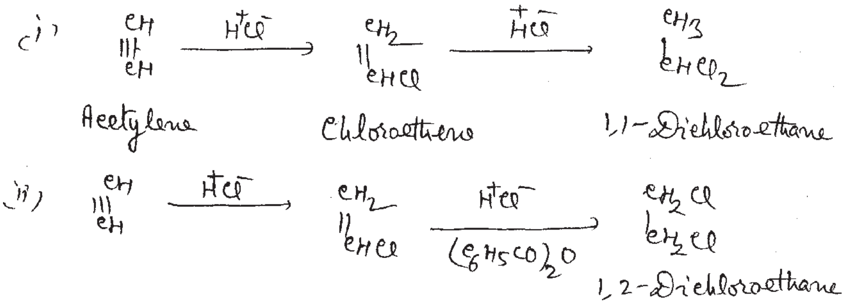

इस प्रकार सभी तथ्यों को जोड़ने पर निष्कर्ष निकलता है कि जीव के अपने-अपने कर्म के उदय से उसमें उपस्थित डीएनए की श्रृंखला में Nucleotide में भिन्न-भिन्न प्रकार के बंध होते हैं जो लाखों लाखों प्रकार के हैं , जिनसे प्रत्येक जीव के गुण भिन्न-भिन्न होते हैं।

णाणाजीवा, णाणा कम्मं णाणा विहि हवे लद्धी।
तम्हा वयण विवादं सजपर समएहिं वज्जिज्जो ॥

किन्तु इन बंधनों को पुरुषार्थ से परिवर्तित भी किया जा सकता है। वैज्ञानिक इस कार्य में संलग्न हैं, सफलताएं मिल रही हैं और भविष्य में मिलेगीं भी किन्तु बाधा अभी यह है कि कार्माण वर्गणा इतनी सूक्ष्म हैं कि उनका वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से भी देख पाना अभी सम्भव नहीं है। भविष्य के गर्भ में क्या दिया है? इसे जानना अभी कठिन सा है। इस प्रबंध में तीन स्थानों पर रासायनिक प्रतिक्रियाएं देकर यही सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि परमाणु में या उनसे बने यौगिकों में भिन्न-भिन्न रचनाएं बनने या नये प्रकार के बॉन्ड बनने पर किस प्रकार से उनके गुणों में अंतर आ जाता है। इसी प्रकार से भावों से क्रियाओं से कार्माण वर्गणाओं में भी अंतर आता है जिससे औदारिक या वैक्रियिक शरीर की रचना, आकृति तथा संस्कारों में अंतर आ जाता है। अतः अभी वैज्ञानिक अनुसंधान की बहुत आवश्यकता व अपेक्षाएं हैं। संभवतः हम भी इन्हें जानने में समर्थ हो सकें। किंतु इतना निश्चित है कि हमारी क्रियाओं से कैसे-कैसे बंध पड़ते हैं उनका प्रभाव किस प्रकार से व किस प्रकार का होता हे। उनके प्रभाव से बचने का उपाय भी इन्हीं Nucleotide की रचना में छिपा है। इसी तथ्य को वैज्ञानिक दृष्टि से समझकर वैज्ञानिक इनमें परिवर्तन करने में समर्थ हो रहे हैं। नये प्रकार के गुणसूत्रों को कृत्रिम रूप प्रयोगशाला में उत्पत्ति की जा रही है। डीएनए द्वारा कैसे अपना प्रभाव कोशिका को दिया जाता है, यह सभी रहस्य भली भांति जाने जा चुके हैं। अतः हम भी ऐसा आध्यात्मिक प्रयास भी करें कि संसार भ्रमण में अधिक न उलझ पायें तथा जब तक भी संसार में है, निराकुल व सुखी रहें, यह तथ्य ध्यान में रखकर कि ये सभी कार्य हमारे ही द्वारा ही किये गये हैं, किंतु किसी अन्य को या भगवान को दोष न दें।

विभिन्न Nucleotide से बनी सर्पिलाकार रचना कैसी होती है, इसकी सरल संरचना का चित्र आगे प्रस्तुत है। संक्षेप में इस क्रिया की रूपरेखा समझाने का प्रयास किया गया है, विशेष अध्ययन के लिये संदर्भित ग्रंथों का अवलोकन करें। इन सभी चिन्हों में अभी और खोज व प्रयोगों की आवश्यकता है।

इस चिन्तन का लेखन समाप्त होने पर पुनरावलोकन के समय 21 मई 2010 दिन शुक्रवार व 23 मई, 2010 दिन रविवार को टाइम्स ऑफ इंडिया (अंग्रेजी संस्करण) के विज्ञान विभाग में समाचार छपा कि यूएसए में वैज्ञानिक दल द्वारा कोशिका का संश्लेषण कर लिया गया है। अमेरिका के J. Crage Ventor व उनके 24 वैज्ञानिकों के दल ने प्राणी शरीर की इकाई कोशिका को कृत्रिम रूप से निर्मित किया जिसमें लगभग 1.6 मिलियन Nucleotide इकाई है। विशेषता यह है कि वे जीवित कोशिका की भांति स्वयं अपना पुनर्विभाजन करने में समर्थ है। सर्वप्रथम जीनोम को संश्लेषित कर उसे एक बेक्टीरिया की कोशिका में प्रविष्ट कराया गया जिसे माइकोप्लाज्मा माइकोउीज जेसीबी। संश्लेषण 1.0 (Mycoplasma mycoides JCVI syn 1.00) नाम दिया गया। इस क्रोमोसोम को कम्प्यूटर की सहायता से 4 विभिन्न रसायनों की बोतलों से 4 करोड़ डॉलर व्यय करके निर्मित किया गया। इस टीम में तीन भारतीय वैज्ञानिक संजय वाशी, राधा कृष्णकुमार व प्रशान्त पी. परमार भी सम्मिलित हैं।

जैन दर्शनानुसार यह जीवन की उत्पत्ति नहीं, वरन् 'योनि' की उत्पत्ति है। यहां ढेर से प्रश्न जाग्रत होते हैं जो निकट भविष्य में विश्वस्तरीय वार्ता का कारण बनेंगे।

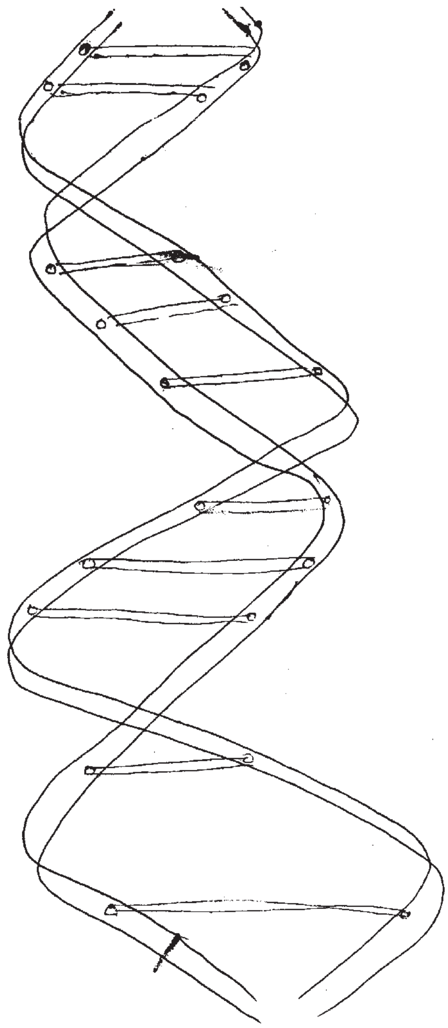

BY J.D. WATSON & F.H.C. CRICK (IN 1953)
NOBEL LAURETTE

संदर्भित ग्रंथ

1. कसायपाहुड सुत्त - आचार्य यतिवृषम, व्याख्याकार पं. हीरालाल शास्त्री,
   प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली,
2. गोम्मटसार कर्मकाण्ड - आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती - व्या. आर्यिका आदिमती
   प्रकाशक - श्री आ. शिवसागर दि. जैन ग्रन्थामाल शांतिवीर नगर, महावीरजी,
3. गोम्मटसार कर्मकाण्ड - आ. नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती, व्या- पं. मनोहरलाल शास्त्री
   प्रकाशक - श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद राज चन्द्र आश्रम, अगास
4. मोक्षशास्त्र टीका - आ. उमास्वामी, व्याख्या, आचार्य कनकनन्दीजी,
   प्रकाशक - धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन, बडौत (बागपत), उ.प्र.
5. त्रिलोकसार - आ. नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती व्या. विशुद्धमती माताजी
   प्रकाशक - आ. शिवसागर ग्रंथमाला, शांतिवीर नगर, श्री महावीरजी,
6. षट्खण्डागम भाग 13,14 - आचार्य पुष्पदन्त व भूतबलि
   प्रकाशक - जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
7. आलापपद्धति - आ. देवसेन व्याख्या - पं. रतनचन्द्रजी मुख्तार
   प्रकाशक - अखिल भारतीय श्री स्याद्वाद विमल ज्ञानपीठ, सिद्धक्षेत्र सोनगिर, दतिया, (म.प्र.)
8. Botany - Dr. M.P. Kaushik
   Publisher - Prakashpublications, Muzaffarnagar (U.P.)
9. Zoology - Dr. Ramesh Gupta
   Publisher - Prakash Publications, Muzaffarnagar (U.P.)
10. Organic Chemistry - I.L. Finar - Publisher - ElBS, London
11. Physical Chemistry - A.J. Mee - Publisher - ELBS, London
12. Organic Chemistry, Part II - Dr. K. N. Sharma
    Publisher - Prakash Publications, Muzaffarnagar
13. अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा - वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी
    धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान व धर्मदर्शन सेवा संस्थान, बड़ौत / उदयपुर
14. Nature - Science Research Magazine
15. Science Reporter - CSIR, New Delhi
16. Science Coloumn, Times of India, New Delhi
17. जैनेन्द्र सिद्धांत कोष - जिनेन्द्र वर्णी, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
18. कर्म का दार्शनिक व वैज्ञानिक विश्लेषण - लेखक - वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दीजी
    प्रकाशक - धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत,

प्राप्त : 23.09.10

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर - शोध समिति (निदेशक मण्डल)

2010 एवं 2011

अध्यक्ष
प्रो. ए.ए. अब्बासी
पूर्व कुलपति एवं मानद निदेशक,
IDA Plot No 80 EB,
स्कीम नं. 94, बॉम्बे हॉस्पिटल के पास, इन्दौर
0731-4041595

सदस्य सचिव
प्रो. अनुपम जैन
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष-गणित,
शास. होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय
ज्ञानछाया, डी-14, सुदामा नगर, इन्दौर
0731-2797790, 094250-53822

सदस्य

प्रो. बिमलकुमार जैन (पूर्व संकायाध्यक्ष वाणिज्य-डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि.)
एल.आई.जी-52, पद्माकर नगर, मकरोनिया-**सागर**

प्रो. गणेश कावड़िया (अध्यक्ष - अर्थशास्त्र विभाग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय)
ए-3, प्राध्यापक निवास देवी अहिल्या वि.वि. खंडवा रोड़, **इन्दौर**

प्रो. नलिन के. शास्त्री (प्राध्यापक-वन.शा. एवं पूर्व कुलसचिव)
ए-11, प्राध्यापक निवास, मगध वि.वि. परिसर, **बोधगया, (बिहार)**

प्रो. नरेन्द्र धाकड़ (अतिरिक्त संचालक-उच्च शिक्षा इन्दौर-उज्जैन संभाग)
296, तिलक नगर, **इन्दौर**

प्रो. पारसमल अग्रवाल (पूर्व प्राध्यापक - भौतिकी)
11, भैरवधाम कॉलोनी, सेक्टर-3, हिरणमगरी, **उदयपुर, (राज.)**

प्रो. प्रभुनारायण मिश्र (प्राध्यापक प्रबन्ध विज्ञान एवं पूर्व निदेशक)
पी-2, प्राध्यापक निवास, खंडवा रोड़ देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, **इन्दौर**

डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (सेवानिवृत्त व्याख्याता–हिन्दी)
91/1, गली नं. 3, तिलक नगर, **इन्दौर**

प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल (निदेशक-शुद्ध एवं प्रयुक्त विज्ञान संस्थान, शोभित वि.वि., मेरठ)
एफ-4, तरुकुंज, तेजगढ़ी, गढ़ रोड़, **मेरठ (उ.प्र.)**

महावीर ट्रस्ट–म.प्र. का मुखपत्र

सन्मति वाणी

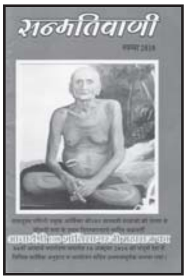

सम्पादक : श्री जयसेन जैन
परामर्श सम्पादक : डॉ. प्रकाशचन्द जैन एवं
डॉ. अनुपम जैन
सह सम्पादक : डॉ. सुशीला सालगिया
आजीवन शुल्क : रु. 1000=00
प्रकाशक : श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल, अध्यक्ष
महावीर ट्रस्ट, 63 महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर-452001

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 19-23

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अहिंसा के विशेष परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म और विश्वशांति

■ अजित जैन 'जलज' *

सारांश

'परस्परोग्रहो जीवानाम्' को मूल मंत्र मानने वाले जैन धर्म एवं दर्शन के सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक सत्य सिद्धांतों ने विगत सहस्रों वर्षों में विश्वशांति में अनन्य योगदान दिया है तथा वर्तमान विश्व की ज्वलंत समस्याओं को भी जैन जीवन मूल्यों के द्वारा हल किया जा सकता है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थकर महावीर स्वामी ने अहिंसा एवं अनेकांत की जो सूक्ष्म विवेचना की, उसका सम्पूर्ण मानवता पर गहरा प्रभाव पड़ा। महामानव महात्मा गांधी ने जैनदर्शन को आत्मसात करके अहिंसा का एक ऐसा प्रायोगिक रूप प्रस्तुत किया जिससे पूरी दुनिया ने परतंत्रता के बंधन तोड़े। वस्तुतः 'गांधी' के पूरे जीवन एवं विचारों में जैन सिद्धांतों के साक्षात् दर्शन होते हैं तथा 'गांधीवाद' आज विश्व की सबसे सशक्त, विचारधारा मानी जाने लगी है। अगर हम दूसरे के पक्ष को उसी के दृष्टिकोण से देखने की कोशिश करें तो कटुता और आतंकवाद दूर हो सकता है जिसके लिये आवश्यक ***'माध्यस्थ भाव'*** *जैन दर्शन ही सिखा सकता है। सभी जीवों पर दया एवं शाकाहार करने मात्र से खाद्यान्न समस्या, जल समस्या, ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि को समूल नष्ट किया जा सकता है। यह अहिंसा कोई कोरी दार्शनिक अवधारणा मात्र नहीं है बल्कि इसके प्रचुर वैज्ञानिक तथ्य प्रामाणिक रूप से उपलब्ध हैं जिसकी विस्तृत शोधपरक विवेचना प्रस्तुत शोध पत्र में की गई है।*

– सम्पादक

अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस (2 अक्टूबर) महात्मा गांधी के जन्मदिन को समर्पित है अतएव अहिंसा, जैन धर्म एवं विश्वशांति के त्रिभुज को समझने के लिये महात्मा गांधी के जीवन के एक प्रसंग से ही विवेचन आरंभ करते हैं।

'एक दिन शाम की प्रार्थना के चलते एक बड़ा सा साँप गांधी जी की पीठ पर चढ़ गया और वहीं बैठा रहा। ध्यान में डूबे गांधीजी ने प्रार्थना खंडित नहीं होने दी। उन्होंने अपनी खादी की चादर के पल्ले को धीरे से खोलकर खुद थोड़े आगे खिसक गये। साँप पीठ पर से उतरा और एक तरफ को चला गया।'

वस्तुतः सन् 1917 से 1930 तक गांधीजी की देखरेख में साबरमती का सत्याग्रह आश्रम चला। गांधीजी ने सब साथियों को समझाया कि हम साँपों की बड़ी बस्ती के बीच उनके मेहमान की तरह रहने आये हैं उनके साथ हमारा व्यवहार वैसे ही होना चाहिए जैसे मेहमान का होता है। छोटे से लेकर बड़े तक साँपों को कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। साँप हमारे मित्र हैं। इस तरह 16 सालों तक दोनों तरफ से धर्म का परिपूर्ण पालन हुआ।[1]

महामानव के उपरोक्त विचार एवं कार्य पर जैनधर्म के प्रभाव को जानने के लिये इस घटना से वर्षों पूर्व गांधीजी को उनके प्रश्नों के उत्तर में दिये गये जैन साधक श्रीमद् राजचंद्र के विचारों को जानते हैं :-

दक्षिण अफ्रीका में रहते समय गांधीजी 17वां प्रश्न पूछते है :-

'जब मुझे सर्प काटने आये तब उसे काटने देना या मार डालना। उसे दूसरी तरह से दूर करने

* अध्यापक – आवास, बड़ागाँव (घसान) जिला टीकमगढ़ – 472010

की शक्ति मुझमें न हो ऐसा मानते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र जी उत्तर देते हुए लिखते हैं कि इस असारभूत देह के रक्षण के लिये जिसे देह में प्रीत हो ऐसे सर्प को मारना आपके लिए कैसे योग्य है। जिसे आत्महित की इच्छा हो उसे तो वहाँ अपनी देह छोड़ देना ही योग्य है। .... अनार्यवृत्ति हो तो मारने का उपदेश किया जा सकता है। वह तो हमें, तुम्हें स्वप्न में भी न हो यही इच्छा करने योग्य है।'[2]

आज सम्पूर्ण विश्व महात्मा गांधी और उनकी अहिंसा को आदर्श मानती है जबकि महात्मागांधी के जीवन एवं विचारों से उन पर जैनधर्म का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

महावीर से महात्मा तक एवं महात्मा से अब तक और आगे जैनधर्म और अहिंसा ने विश्व शांति में अनन्य योगदान दिया है। इतिहास से लेकर विज्ञान तक के सर्वमान्य तथ्यों के आधार पर अपने विचारों को सबके सामने रखना सबसे श्रेयस्कर है। विचार ही तो आखिर कार्यरूप परिणित होते हैं जैसा कि डायर ने कहा भी है- 'हम ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के द्वारा हर उस वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं जिसकी इच्छा हम करते हैं क्योंकि जिसकी इच्छा हम करते हैं वह हमारे भीतर ही होता है और इसका उलट भी सत्य है।'

हिंसा का इतिहास और अहिंसक विश्व विजय

विश्व इतिहास पर हमारी जहां तक नजर जाती है वहाँ तक हिंसा-प्रतिहिंसा का क्रूर कुचक्र दृष्टिगत होता है। महावीर स्वामी के समय हिंसा अपने चरम पर थी। कमजोरों, पशुओं और महिलाओं पर अत्याचार हो रहे थे। धर्म के नाम पर पाखंड फैला हुआ था। ऐसे समय में महावीर ने तपस्या से ज्ञान प्राप्त किया एवं उस केवलज्ञान से धधकती धरती को शांत किया। जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर महावीर ने हिंसा को किसी भी रूप में किसी भी प्रयोजन में पूर्णतः त्याज्य बताया। महावीर के प्रभाव से सैकड़ों वर्षों तक अहिंसा तथा शांति का वर्चस्व बना रहा परंतु एक बार फिर हिंसा का दौर शुरु हुआ तो अहिंसा धर्मग्रंथों, आराधना स्थलों तथा चन्द लोगों तक सिमट कर रह गयी।

सैकड़ों वर्षों तक मुस्लिम शासकों ने पूरे विश्व में धर्म के नाम पर खून की नदियां बहाई तो फिर व्यापारिक कुटिलता के द्वारा अंग्रेजों ने अधिकांश देशों को अपना गुलाम बना लिया। विश्व की सर्वशक्तिमान शक्ति के खिलाफ अचानक एक आत्मा ने अहिंसा का अचूक अस्त्र सत्याग्रह रखा।

इस सत्याग्रह ने मोहन को महात्मा बना दिया। गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह केवल आत्मा का बल है इसलिये जहां और जितने अंश में शस्त्र बल अर्थात शरीर बल अथवा पशु बल का प्रयोग हो सकता हो अथवा उसकी कल्पना की जा सकती हो वहाँ और उतने अंश में आत्म बल का प्रयोग कम हो जाता है।[3]

स्पष्ट रूप से सत्याग्रह की इस अवधारणा पर जैन धर्म की आत्मा और अहिंसा के दर्शन का प्रभाव था। गांधीजी ने एक बार नहीं 16 बार विविध उद्देश्यों के लिये सत्याग्रह करके उसकी शक्ति को निरूपित किया गया है।[4]

सत्य और अहिंसा का राजनीति में क्रांतिकारी प्रयोग करके महात्मा गांधी ने वस्तुतः जैनत्व को ही अभिनव ऊँचाई दी है। जैन धर्म कहता है कि जब तक वह धर्म मन में अतिशय निवास करता है तब तक प्राणी अपने मारने वाले का भी घात नहीं करता है। सत्याग्रह के संबंध में बापू कहते हैं -

'इसमें प्रत्यक्ष गुण या प्रकट अथवा मनसा, वाचा या कर्मणा किसी भी प्रकार की हिंसा की गुंजाइश नहीं है। विरोधी का बुरा चाहना या उसका दिल दुखाने के इरादे से उसे या उसके प्रति कठोर वचन कहना सत्याग्रह की मर्यादा का उल्लंघन है।'[5]

अपने समकालीन हिंसा और क्रूरता के प्रतिमान एडोल्फ हिटलर को अहिंसा के अवतार महात्मा

गांधी ने अपने पत्र में जो लिखा वह मुझे विश्वशांति के लिये मील का पत्थर लगता है-

ब्रिटिश सत्ता संसार की सबसे अधिक संगठित हिंसात्मक सत्ता है और इसका मुकाबला करने के लिये हम किसी सही उपाय की तलाश कर रहे थे। हमें अहिंसा के रूप में एक ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई है जिसे यदि संगठित कर लिया जाए तो संसार भर की सभी प्रबलतम हिंसात्मक शक्तियों के गठजोड़ का मुकाबला कर सकती है।

महात्मा गाँधी वर्धा से 24 दिसम्बर 1940 को लिखे अपने इस पत्र में भविष्यवाणी करते हैं कि 'मुझे देखकर आश्चर्य होता है कि वह यह भी नहीं देख पाते कि विनाशकारी यंत्रों पर किसी का एकाधिकार नहीं है। अगर ब्रिटिश लोग नहीं तो कोई और देश निश्चय ही आपके तरीकों से ज्यादा बेहतर तरीका ईजाद कर लेगा और आपके ही तरीकों से आपको नीचा दिखायेगा।[6]

इस युगपुरुष के कथनानुसार ही अगस्त 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर अमेरिका ने हिटलर को हरा दिया।

16 दिसम्बर 1947 को गांधीजी ने फिर लिखा 'एटम बम के इस युग में केवल विशुद्ध अहिंसा ही वह शक्ति है जिससे हिंसा की किसी भी चाल को ध्वस्त किया जा सकता है।'

गांधीजी ने अन्ततः न केवल भारत को आजाद करा दिया बल्कि सारे विश्व में एक ऐसी लहर पैदा की जिससे कि ब्रिटिश साम्राज्य आगे चलकर पूरी तरह ध्वस्त हो गया।

जैन धर्म एवं महात्मा गांधी की अहिंसा में कोई अंतर नहीं है बल्कि कतिपय कारणोंवश महात्मा जैन धर्म की अहिंसा का पूरी तरह प्रयोग कर ही नहीं पाये। आत्मा और अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में ही हम आगे चलकर जैन धर्म तथा वर्तमान समस्याओं की विवेचना का प्रयास करते हैं।

आतंकवाद, अलगाववाद और जैन धर्म

'तुम तो बिल्कुल मूर्ख हो' यह सुनते ही अच्छे से अच्छे विचारक का मन रोष से भर जाता है, अतः अगर कोई भी व्यक्ति हिंसा एवं प्रतिहिंसा के द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है तो हमें अचरज नहीं होना चाहिए। अगर कोई आतंकवादी अपनी जान देकर भी दूसरों को मारता है अथवा कोई अलगाववादी अपने आप को क्रांतिकारी समझकर कत्लेआम करता है तो आम जनमानस भी इन्हें खत्म करने की ही वकालत करता है। जिस साधन के द्वारा हिंसा की प्रचण्ड शक्ति ब्रिटिश सत्ता को मजा चखाया जा सकता है.... क्या उसी अहिंसक जैन साधन के द्वारा आतंकवाद और अलगाववाद को दूर नहीं किया जा सकता है।

हिंसा के द्वारा विश्वशांति कभी नहीं पायी जा सकती। यह रूस ने भी देखा और अमेरिका, ईराक और अफगानिस्तान में आकर देख ही रहा है। वस्तुतः हमारे पास अहिंसा के अलावा और कोई चारा ही नहीं बचा है।

हम सब अन्याय को तो समाप्त करना चाहते है परंतु हमारी आस्था हिंसा में ही बनी हुई है। हम दरअसल, दूसरे के पक्ष को सुनना ही नहीं चाहते हैं। हम अपने निकट से निकट व्यक्ति के प्रति भी दुर्भाव से भर जाते हैं जब वह हमारे मन के विपरीत कोई आचरण करता है। जबकि जैन धर्म कहता है कि **माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ अर्थात् दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।** परंतु हम तो अक्सर अपनों के प्रति भी क्षोभ से भर जाते हैं।

एक सच्चा जैन जानता है कि अगर वह छह माह से अधिक समय तक क्रोध, मान, माया अथवा लोभ का भाव बनाये रखता है तो उसका पतन सुनिश्चित है।

अगर हम किसी भी घटना के बारे में ठंडे दिमाग से उसके विभिन्न पक्षों को समझें तो हमारा

आक्रोश स्वयमेव कम हो जाता है। इसे ही जैन दर्शन अनेकांत कहता है। क्या हमने कभी विरोधी पक्ष को समझने का प्रयास किया है।

जो व्यक्ति काल स्वरूप साँप को नहीं मारने की वीरता रखता है वही अत्याचार होने पर अहिंसक सत्याग्रह कर सकता है। जरा–जरा सी बातों पर झगड़ने वाले हम लोग तो हिंसा को सहारा ही देते रहते हैं।

व्यक्ति से ही समष्टि का सुधार संभव है यह जैन धर्म की मूल अवधारणा है। आतंकवाद या अलगाववाद हिंसा की ऐसी शक्तियां हैं जिनके विरुद्ध संसार की समस्त सत्ताधारी शक्तियाँ कई गुनी शक्तिशाली हैं। परंतु हिंसा कभी किसी समस्या को मिटा नहीं सकती यह हम जितनी जल्दी समझ जायें उतनी जल्दी विश्वशांति की स्थायी व्यवस्था बनने लगेगी। दुनिया को सुधारने के लिये हमें शुरुआत स्वयं से करनी होगी।

बिन लादेन और बराक ओबामा को समझने से पहले हमें एक दूसरे के संबंधों एवं विचारों को समझना होगा। अलगाववाद को कोसने के पहले पारिवारिक सामाजिक बिखराव की विवेचना करनी होगी।

विचारों में अनेकांत होने पर वाणी में स्याद्वाद और आचरण में अहिंसा आती है और विचारों में अनेकांत अर्थात प्रतिपक्षी के प्रति माध्यस्थ भाव जैन कर्म सिद्धांत को जानने और मानने से सहजता में आ जाता है।

हिंसा का मूल क्रोध है। प्रतिपक्षी के प्रति क्रोध आना कषाय है और इसका लगातार बना रहना पाप के बंध का कारण है अतः सच्चा जैन अपनी गलती नहीं होने पर भी अपनी गलती मानकर क्षमा भाव धारण करता है और इस तरह से हिंसा से बच जाता है। क्योंकि वह जानता है कि अगर इस समय मेरी गलती नहीं भी दिख रही है तो अवश्य ही इसमें मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का दोष है और इस तरह से वह समता का भाव बनाता है।

महात्मा गांधी कहते है **'शुद्धमन से सहन किया गया सच्चा दुख, पत्थर जैसे हृदय को भी पिघला देता है। इस दुःख सहन की अथवा तपस्या की ऐसी ही ताकत है और यही सत्याग्रह का रहस्य है।'**[7]

अगर हम भी महात्मा गाँधी की भांति जैनधर्म के अनुसार आत्मा की अनंत शक्तियों को समझें और माने तो ना केवल हम अपने व्यक्तिगत जीवन को सुखी बना सकते हैं, बल्कि विश्वव्यापी समस्याओं को दूर करके विश्वशांति में अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं।

जैव विविधता एवं शाकाहार

अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता वर्ष 2010 में एक और सुन्दर संयोग बना। अक्टूबर 2010 में जापान के नगोया शहर में 170 देशों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए। दुनियाभर के वैज्ञानिक पर्यावरण विनाश, ग्लोबल वार्मिंग, प्रजाति विलुप्तीकरण इत्यादि से आज अत्यधिक चिंतित हैं।

पूरा पर्यावरण विज्ञान जैन धर्म के घोष वाक्य **परस्परोग्रहो जीवानाम्** तथा **जियो और जीने दो** के आसपास ही घूमता है। भारत सरकार के पर्यावरण मंत्री श्री जयराम रमेश कहते है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को रोकने के लिये गो मॉस (बीफ) खाना रोकना होगा (श्री रमेश शुद्ध शाकाहारी है)। वर्ष 2008 में संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन में पाया गया था कि विश्व में ग्रीन हाउस गैसों का लगभग पांचवां भाग मांस उत्पादन से होता है।[8]

वस्तुतः अहिंसक आहार शाकाहार के द्वारा विश्व की विभिन्न समस्याओं खाद्यान्न समस्या, जल समस्या, अपराध, रोगों को समूल नष्ट किया जा सकता है जिसके पक्ष में प्रचुर वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध

हैं। परंतु मैं आलेख के आरंभ की भांति समापन में भी सांप से संबंधित एक वैज्ञानिक आलेख के अंश रख रहा हूँ :-

सॉंपों की अब तक 2400 से अधिक प्रजातियाँ खोजी जा चुकी हैं जिनमें से 10 प्रतिशत सॉंप भी जहरीले नहीं हैं लेकिन उसका खौफ इतना है कि व्यक्ति दहशत के मारे ही दम तोड़ देता है। भारत में पाई जाने वाली 200 से अधिक प्रजातियों में से केवल चार प्रजातियां ही जहरीली है। .... चूहों को खाकर सर्प अनाज की रक्षा करते हैं। अधिकांश लोग सांप को अपना दुश्मन मानते हैं और उसे देखते ही मारने लगते हैं। यह जीव हत्या पाप है। उन्हें भी हमारी तरह जीने का अधिकार है सर्पों का मुँह बार-बार दूध में जबरदस्ती डूबाने से कई सांप दम घुटने से भी मर जाते हैं। दूध से सॉंप की अंतड़ियों में गहरे जख्म हो जाते हैं जिससे वह दो महीने के भीतर मर जाता है। सॉंप पालना जुर्म है और ऐसे व्यक्तियों को तीन माह की सजा व 500 रुपये जुर्माना हो सकता है।[9]

संदर्भ :-

1. गांधी मार्ग की विश्वव्यापकता, समाज विज्ञान संकाय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नईदिल्ली 49, पृ.145
2. Shrimad Raichandra's Reply to Gandhiji's Question's, Shrimad Raj Chandra Ashram Agas, Via Anand, Boria 388130 Gujarat
3. गांधी मार्ग की विश्व व्यापकता, पृ.17
4. वही, 24
5. वही, 46
6. वही, 78-79
7. वही, 36
8. AWBI, News letter Nov. 2009 13/1 Third seaward Road Valmiki Nagar Thiruvanviyur Chennai-41
9. डॉ. विनोद गुप्ता, मनुष्य का दुश्मन नहीं दोस्त है सर्प, विज्ञान प्रगति, जुलाई 2010 सी.एस.आई.आर. डॉ. के.एस.कृष्णनन मार्ग, नई दिल्ली - 110012

प्राप्त : 05.10.10

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति द्वारा वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। इससे जैन विद्याओं के शोध में रुचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय की स्थापना की गई है। गत वर्ष डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल के प्रयासों से पुस्तकालय भवन का विस्तार एवं हजारों दुर्लभ पुस्तकों का संकलन जोड़ा गया है। 31.03.2011 तक पुस्तकालय में 30000 महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं 731 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। इसके अतिरिक्त हमारी सहयोगी संस्था अमर ग्रंथालय में 1010 पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 300 पत्र – पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

आपसे अनुरोध है कि –

संस्थाओं से : **1.** अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 – 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : **2.** अपनी कृतियों की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। पुस्तकालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में भी उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर भी दिये जायेंगे।

जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी निर्माण परियोजना तथा राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन के तहत म.प्र. के जैन शास्त्र भंडारों में संग्रहीत पांडुलिपियों की जानकारी भी यहाँ उपलब्ध है।

डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

31.03.2011

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 25-30

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तत्त्वदेशना में भेद ज्ञान और उसका फल

■ अनुपम जैन *

सारांश

आचार्य देवसेन 11वी श.ई. के महान दि. जैन आचार्य है। तत्त्वसार उनकी एक प्रमुख कृति है। वर्तमान दशक के बहुश्रुत आचार्य श्री विशुद्धसागरजी द्वारा उनकी इस कृति को केन्द्र में रखकर दिये गये 49 प्रवचनों को संकलित कर प्रकाशित की गई कृति का नाम है तत्त्वदेशना। प्रस्तुत आलेख में इस कृति में आगत भेदज्ञान विषयक संदर्भों को संकलित एवं विवेचित किया गया है।

सम्पूर्ण जैन वाङ्‌मय को विषयानुसार विभाजन के क्रम में निम्नवत् चार अनुयोगों में विभाजित किया गया है।[1]

1. प्रथमानुयोग - तीर्थंकर आदि 63 शलाकापुरुषों का जीवन, पूर्व भव एवं कथा-साहित्य।
2. करणानुयोग - भूगोल, खगोल, गणित एवं कर्म-सिद्धांत।
3. चरणानुयोग - श्रावकों एवं मुनियों की जीवनचर्या, विधि-निषेध।
4. द्रव्यानुयोग - आत्मा, परमात्मा 6 द्रव्य एवं 7 तत्त्व से सम्बद्ध आध्यात्मिक साहित्य।

पूर्वाचार्यों ने अध्यात्म विषयक ग्रंथों की जटिलता एवं इन्हें सम्यक् रूप से आत्मसात करने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि के सृजन की दृष्टि से चारों अनुयोगों के स्वाध्याय का एक क्रम निर्धारित किया है, जिसके अनुसार प्रथम तीन अनुयोगों का अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरांत द्रव्यानुयोग के ग्रंथों का स्वाध्याय करने पर ग्रंथ रचनाकार के मनोगत भाव एवं आशय को हम ठीक से हृदयंगम कर पाते हैं। जिस प्रकार पूर्ववर्ती कक्षाओं के विषय का ज्ञान न होने पर छात्र उत्तरवर्ती कक्षाओं का विषय नहीं समझ पाता है, उसी प्रकार प्रथमानुयोग में वर्णित महापुरुषों के जीवनप्रसंगों, करणानुयोग में विवेचित लोक के स्वरूप, स्वर्ग–नरक की व्यवस्थाओं एवं कर्म-सिद्धांत की वैज्ञानिकता एवं सूक्ष्मता के जाने बगैर मानव-जीवन से सम्बद्ध विविध विषयों पर आस्था नहीं बनती। फलस्वरूप अध्यात्म के विवेचनों में भी हम तर्क के बजाय कुतर्क करने लगते हैं। पाप-पुण्य, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, हेय-उपादेय एवं स्व-पर के भेद विज्ञान को जानने पर ही आध्यात्मिक विषयों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। तब ही पूर्वाचार्यों के मंतव्य को हम आत्मसात कर सकते हैं।

विक्रम की प्रथम शताब्दी के महान दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्द की कृतियाँ समयसार, प्रवचनसार, नियमसार एवं पंचास्तिकाय अध्यात्म के सिरमौर ग्रंथ हैं। इनमें आत्मा को परमात्मा बनाने का श्रेष्ठ ज्ञान अपने उत्कृष्ट रूप में निहित है, किन्तु इस ज्ञान को और अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करने के लिये इन ग्रंथों पर टीकाओं तथा स्वतंत्र ग्रंथों का सृजन परवर्ती आचार्यों द्वारा किया गया। आत्मकल्याण की उत्कृष्ट भावना से अनुप्राणित होकर तिल–तुष मात्र का परिग्रह छोड़ने वाले शांतपरिणामी जैनाचार्यों की गहन अभिरुचि सदैव से अध्यात्म के ग्रंथों में रही है।

आचार्य देवसेन एवं उनकी कृतियाँ :

* प्राध्यापक – गणित, मानद सचिव – कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर– 452001

दसवीं सदी के आचार्य देवसेन (गणि) ने निम्नांकित 6 ग्रंथों का सृजन किया है :

1. दर्शनसागर 2. भावसंग्रह 3. आलाप पद्धति

4. लघु नयचक्र 5. आराधनासार 6. तत्त्वसार

डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री[2] ने विस्तृत उहा-पोह के उपरांत आपका सरस्वती आराधना काल 933-953 ई. निर्धारित किया है एवं आपको आचार्य विमलसेन गणि का शिष्य देवसेन बताया है। अन्य कृतियों से आपका नाम देवसेन गणि भी प्रतीत होता है। अपभ्रंश भाषा की कृति 'सुलोचना चरिउ' का श्रेय भी देवसेन को ही दिया जाता है, किन्तु वे देवसेन 'तत्त्वसार' के कर्ता देवसेन से भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते हैं। उनका जीवनकाल वि.सं. 1132 (1076 ई.) मानना अधिक युक्तिसंगत है।

आचार्य विशुद्ध सागरजी एवं उनकी कृति तत्त्वदेशना :

18.12.71 को रूर (भिण्ड) में जन्में श्री राजेन्द्र ही 21.11.91 को आचार्य श्री विरागसागरजी से दीक्षा लेकर मुनि विशुद्धसागर बने। आपका आचार्य पदारोहण औरंगाबाद में दिनांक 31.03.2007 को होना हम सबके लिये गौरवपूर्ण है। आपकी अब तक निम्नांकित 26 कृतियां प्रकाश में आयी है।

1. शुद्धात्म तरंगिणी
2. निजानुभव तरंगिणी
3. निजात्म तरंगिणी
4. पंचशील सिद्धांत
5. आत्म बोध
6. प्रेक्षा देशना (वारसाणुवेक्खा)
7. पुरुषार्थ देशना
8. तत्त्व देशना
9. अध्यात्म देशना
10. इष्टोपदेश भाष्य
11. बोधि संचय
12. समाधितंत्र अनुशीलन
13. स्वरूप संबोधन परिशीलन
14. सर्वोदयी देशना (इष्टोपदेश)
15. स्वानुभव तरंगिणी
16. श्रमण धर्म देशना
17. अर्हत् सूत्र
18. अमृत बिन्दु
19. शुद्धात्म काव्यांजली

20-23. समय देशना भाग 1, 2, 3, 4

24. स्वरूप देशना
25. देशना बिन्दु
26. आत्माराधना

संभव है कि विगत 1-2 वर्षों में कुछ नई कृतियां भी प्रकाशित हो गई हों ।

आचार्य श्री विशुद्धसागरजी की प्रस्तुत कृति 'तत्त्व देशना' का आधार 'तत्त्वसार' है। तत्त्वसार की 74वीं गाथा निम्नवत् है -

सोऊण तच्चसारं रइयं मुणिणाह देवसेणेण।
जो सद्दिट्ठि भावइ तो पावइ सासयं सोक्खं ॥[3]

मुनिनाथ देवसेन के द्वारा रचित 'तत्त्वसार' को सुनकर जो सम्यग्दृष्टि उनकी भावना करेगा वह शाश्वत सुख को पाएगा। इससे स्पष्ट है कि 'तत्त्वसार' आचार्य देवसेन की अध्यात्म विषयक कृति है।

आचार्य श्री विशुद्धसागरजी ने प्राकृत भाषा की 74 गाथाओं में निबद्ध आचार्य देवसेन (गणि) (10वीं ई.) की आध्यात्मिक कृति 'तत्त्वसार' पर विदिशा (म.प्र.) में सन् 2004 में सम्पन्न ग्रीष्मकालीन वाचना में 49 सारगर्भित प्रवचन दिये थे। जिसमें गूढ़ रहस्यों को अनेक इतर ग्रंथों के उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया गया। तत्त्वदेशना इन 49 प्रवचनों का ही सम्पादित रूप है।[4]

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। जैनाचार्यों ने प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश तीनों भाषाओं में विपुल परिमाण में साहित्य का सृजन किया। प्राकृत एवं अपभ्रंश तत्कालीन जन-भाषायें रहीं एवं संस्कृत अभिजात्य वर्ग की भाषा। अतः शास्त्रार्थ एवं विद्वत् समुदाय में अपने मत को समीचीन रूप में प्रस्तुत करने हेतु संस्कृत में साहित्य सृजन जरूरी था तथा जन–जन तक अपना मंतव्य प्रेषित करने हेतु प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में भी। जहाँ जैन परम्परा के मूल ग्रंथ महावीर-कालीन जनभाषा 'प्राकृत' में हैं, वहीं उत्तरवर्ती काल में राजस्थान के विद्वानों ने तत्कालीन जनभाषा 'ढुंढारी' में भी साहित्य का सृजन किया। 19वीं शताब्दी में परिष्कृत हिन्दी के प्रचार से पूजा एवं भक्ति साहित्य परिष्कृत हिन्दी में लिखा गया किन्तु आगम–ग्रंथों की टीकाएँ/व्याख्याऐं ढुंढारी भाषा में ही चलती रही। 20वीं शताब्दी में जैन साहित्य में तब क्रांति आई, जब अनेक ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय-मुंबई, माणिकचंद ग्रंथमाला-मुंबई, जैन संस्कृति संरक्षक संघ-सोलापुर एवं भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली के माध्यम से प्रकाश में आये। अन्य अनेक प्रकाशन संस्थाओं का योगदान भी सराहनीय रहा। इन कृतियों के प्रकाश में आने से हिन्दी भाषी श्रावक भी इनके विषय को ठीक से हृदयंगम कर सके। आज यदि भारत में 1200 के लगभग पिच्छीधारी दिगम्बर मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका विहार कर रहे हैं, स्वाध्याय एवं ज्ञानार्जन के माध्यम से अपने वैराग्य को वृद्धिंगत कर रहे हैं तो इसमें प्राचीन आचार्य प्रणीत ग्रंथों के उपलब्ध हिन्दी अनुवादों की भी महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

कृति के प्रारंभ में ही आचार्यश्री रेखांकित करते हैं कि -

'एक गूढ़वादी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह बहुत बड़ा विद्वान हो और न ही वर्षों तक व्याकरण तथा न्याय में सिर खपाकर वह सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किंतु मानव समाज को दुःखी देख आत्म साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिये प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों का विशेष विचार किये बिना जनता के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अतः उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को छोड़कर **समय की प्रचलित भाषा को अपनाना महत्व से खाली नहीं (अर्थात महत्त्वपूर्ण) है।'** यह कथन विषय की विवेचना में जन-भाषा के महत्व को दर्शाता है।[5]

तत्त्वदेशना में भेद ज्ञान : स्व एवं पर के भेद को समझना जितना सरल है, उतना ही कठिन भी है। वास्तव में शास्त्र की सभाओं में यह विषय जितना सरलता से बता दिया जाता है उसे समझना एवं

आत्मसात करना उतना ही कठिन है।

आचार्य देवसेन जी ने तत्त्वसार की 24वीं गाथा में कहा की -

जह कुणइ को वि भेयं पाणिय-दुद्धाण तक्कजोएणं।
णाणी वि तहा भेयं करेइ वरझाण-जोएणं ॥[6]

जैसे कोई पुरुष तर्क के योग से पानी और दूध का भेद करता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी उत्तम ध्यान के योग से चेतन और अचेतन-रूप स्व-पर का भेद करता है।

यहाँ गाथा में सम्पूर्ण वस्तु स्थिति समझना अल्पज्ञ श्रावकों के लिये अत्यन्त कठिन है। इसको समझाते हुए आचार्य श्री विशुद्धसागर जी कहते हैं कि **भो ज्ञानी ! भेद-विज्ञान यानि क्या ! मिलावट को मिलावट समझना, वास्तविक को वास्तविक समझना। मिलावट को समझ लिया, उसी का नाम भेद-विज्ञान है। आत्मा में कर्म मिल गये, (जिसने इन दोनों को एक) मान लिया, उसके भेद-विज्ञान का अभाव है। जिसने यह मान लिया कि कर्म भिन्न है, आत्मा भिन्न है-ऐसे अनुभव करता है ज्ञानी ! संसार का जो भ्रमण है, वह मिश्र-अवस्था के कारण ही है। देखों, तिल को पिलना पड़ता है, क्योंकि उसके अन्दर स्निग्धता है। तुम्हें संसार में क्यों रुलना (भटकना) पड़ रहा है। क्योंकि तुम्हारे में राग की स्निग्धता है। भो चेतन ! तेल की चिकनाई तो जल्दी दूर हो जाती है, पर राग की चिकनाई बड़ी प्रबल है।**

आचार्य भगवान् अमृतचंद्र स्वामी ने 'अध्यात्म अमृत कलश' में कहा है -

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा, बद्धा ये किल केचन ॥131॥[7]

जितने जीव आज तक सिद्ध हुए है, वे सभी भेद-विज्ञान (ज्ञान) से हुए हैं और जितने जीव आज बंध रहे हैं, वह भेद-विज्ञान (ज्ञान) के अभाव में बंध रहें हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि **पहले वीतराग विज्ञान नहीं होता था। पहले भेद-विज्ञान ही होता था।[8]**

आचार्य श्री अपनी बात को स्पष्ट करने में अपने व्यापक अध्ययन का भरपूर उपयोग करते हैं। अभी उन्होंने आचार्य अमृतचंद्र सूरि का उद्धरण दिया, अब आगे वे रत्नकरण्ड श्रावकाचार से उद्घृत करते हैं :-

यदि पाप निरोधोऽन्य सम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम् ॥27॥[9]

यदि पाप का निरोध हो गया है, तो सम्पदा का क्या प्रयोजन है। और पापास्त्रव जारी है तो सम्पदा से क्या प्रयोजन है। इसी तरह कहा गया है कि -

'पूत सपूत तो क्यों धन संचय, पूत कपूत तो क्यों धन संचय।'

अर्थात् बेटा सुपुत्र है तो धन जोड़ने से क्या फायदा, वह स्वतः कमा लेगा और यदि वह बेटा कुपुत्र है तो धन जोड़ने से क्या फायदा, वह सब धन बर्बाद कर देगा।[10]

भो ज्ञानी आत्माओं ! भेद-विज्ञान कहता है कि अपने अंदर झांककर देखो, वाणी-संयम पर दृष्टिपात करो। ऐसे वचन मत बोलों जिससे किसी के मर्म पर ठेस पहुँचे क्योंकि गोली का घाव भर सकता है किन्तु बोली का घाव बहुत गहरा होता है। इसलिये वाणी वीणा का काम करे, प्रेम की भाषा का उपयोग करो, प्रेम में आस्था होती है, श्रद्धान होता है। मुमुक्षु जीव किसी को सिर पकड़कर जबरन नहीं झुकाता, वह प्रेम भरी वाणी द्वारा प्राणी के हृदय में परिवर्तन करता है। जिनवाणी कहती है कि हृदय में परिवर्तन

करना है तो हृदय की भूमि पर तुम प्रेम के नीर को बहा दो, परंतु किसी के ऊपर पत्थर बनकर मत बरसाओं। प्रिय वाक्य सुनने से हर व्यक्ति पिघल जाता है, संतुष्ट हो जाता है। अरे भाई ! किसी से झगड़ो तो भी प्रेम की भाषा में बोलो। जोधपुर (राजस्थान) में जो लोग हैं, झगड़ते हैं तो वे कहते हैं - **'मेरी चरण-पादुका आपके सिर-माथे विराजे।'** कितनी सुन्दर भाषा में कितनी मधुर गाली दे डाली। परंतु यदि भेद-विज्ञान की दृष्टि है, तो उदासीन-वृत्ति होना जरुरी है। उदासीन का अर्थ है संसार के भोगों से विरक्ति होना।[11]

हिन्दी साहितय के किसी प्राध्यापक से कोई पूछे कि हिन्दी साहित्य में क्या प्रमुख है। तो वे कहेगें कि -

तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची खुची कबिरा कही, बाकी सब कोई झूठी॥

इसी प्रकार भेद विज्ञान का सार बताते हुए आचार्य श्री कहते हैं, **'जीव अन्य है, पुद्‌गल अन्य है, यही तत्त्व का सार है, शेष इसका विस्तार है।**[12]

आजकल लोग भेद-विज्ञान को भी ब्रान्डेड बना रहे हैं। आप लिखते है कि - **मुमुक्षु वही होता है जो संतों को, निर्ग्रन्थों को आम्नायों/पंथों/सम्प्रदायों में नहीं देखता है, वह परमेश्वर को परमेष्ठी में देखता है। इस सूत्र को ध्यान में रखना, चर्म को देखोगे तो व्यक्ति को देखना पड़ेगा और धर्म को देखोगे तो धर्मात्मा दिखेगा।**[13]

जो लोग एअरकंडीशन्ड कमरे में बैठकर स्व एवं पर के भेद ज्ञान की बात करते हैं, उनको संबोधित करते हुए आचार्य श्री कहते हैं कि भो ज्ञानी ! जब कोई खूँखार प्राणी तुम्हें भक्षण करने आये उस समय आप चिन्तन करना कि यह देह तो पुद्‌गल है मैं तो अजर-अमर हूँ, मुझे कौन खा सकता है और दूसरी ओर सुकौशल मुनि को निहारना और कहना, प्रभु ! सारी भूमि रक्त से रंग गई, पर तुम वीतरागता से रंगे बैठे थे। क्या खाया ? किसने खाया ? किसको खाया ? यह एक भेद विज्ञान है। बस, ज्ञानी और अज्ञानी की यही पहचान है। तुमने शरीर को छीला, मुझे नहीं छीला, यह है अध्यात्म विद्या। क्योंकि अध्यात्म कहता है कि तू शरीर की रक्षा नहीं कर पायेगा, परंतु अपने परिणामों की रक्षा कर सकता है। सुकमाल-सुकौशल मुनिराज अपने शरीर की रक्षा नहीं कर पाये, परंतु ज्ञान-शरीरी आत्मा के परिणामों की रक्षा उन्होंने कर ली। जो जड़ शरीर की रक्षा में लीन है, वह ज्ञान-शरीर की रक्षा नहीं कर पा रहा है। जो ज्ञान-शरीर की रक्षा में लीन है, वह कभी जड़-शरीर की रक्षा कर ही नहीं पायेगा।

भो चेतन ! यदि आत्मा का उपकार चाहता है तो आत्मा का उपकार होगा त्याग तपस्या से, पर जिससे शरीर सूखेगा, सो आप सुखाना नहीं चाहते और आत्मा-आत्मा की बात करके भगवान् बनना चाहते हो। कैसे संभव है।[14]

ज्ञान-शरीर भेद-विज्ञान या भेद-ज्ञान पर बहुत अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं। यह अनुभूति का विषय है, आचरण का विषय है। तत्त्वदेशना कृति भेद ज्ञान को अंतरंग में गहरे तक उतार देने में सक्षम है। भेद ज्ञान को समझे एवं जीवन में उतारे बिना आत्म कल्याण, एवं मुक्ति संभव नहीं है। अतः तत्त्वदेशना अपने जीवन के कल्याण हेतु जरूर पढ़े।

विलक्षण प्रतिभा एवं तर्क शक्ति के धनी आचार्य श्री के चरणों में शतशः नमन।

संदर्भ स्थल

1. रत्न करण्ड श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, सागर, 1985, 2/43-46 पृ. 87-89
2. नेमिचन्द्र शास्त्री, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-2, सागर, पृ. 365-382
3. तत्त्वसार, आचार्य देवसेन, गाथा 74
4. तत्त्वदेशना (तत्त्वसार सहित), व्याख्याकार, आचार्य विशुद्धसागर, पंचम संस्करण, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, 2008, पृ. प्रथम
5. वही, पृ. x
6. वही, पृ. 63
7. वही, पृ. 64
8. वही, पृ. 64
9. वही, पृ. 66
10. वही, पृ. 66
11. वही, पृ. 66
12. वही, पृ. 66
13. वही, पृ. 121
14. वही, पृ. 51

संशोधनोपरान्त प्राप्तः 10.01.11

अर्हत् वचन पुरस्कार वर्ष 21 (2009) घोषित

विगत वर्षों की भांति वर्ष 21 (2009) में प्रकाशित अर्हत् वचन के सभी अंकों में से 3 सर्वश्रेष्ठ आलेखों के चयन हेतु गठित त्रिसदस्यीय निर्णायक मण्डल की अनुशंसा के आधार पर निम्नवत् अर्हत् वचन पुरस्कार घोषित किये गये है।

इसके अंतर्गत प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार प्राप्त आलेख के लेखकों को क्रमशः रुपए 5000, 3000 एवं 2000 की नकद राशि शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार

Samayasāra Gāthā 3 and the Modern Science

Prof. P.M. Agrawal, Udaipur

द्वितीय पुरस्कार

Lure of Large Numbers

Dr. R.S. Shah, Pune

तृतीय पुरस्कार

Development of Mathematical Science Including Jaina Mathematics in the Periphery of Pātalīputra

Dr. Parmeshver Jha, Supaul

वर्ष 2010 के पुरस्कार शीघ्र घोषित किये जायेगे। 2011 में भी यह योजना गतिमान है। वर्ष 2009 एवं 2010 का पुरस्कार समर्पण समारोह अक्टूबर -2011 में आयोजित किया जायेगा।

डॉ. अजित कासलीवाल — *प्रकाशक*

डॉ. अनुपम जैन — *सम्पादक*

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 31-34

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अंक विद्या का गणित

■ अशोक सहजानन्द*

सारांश

अंकों के व्युत्पत्तिजनक अर्थ, महत्व, उपयोग की चर्चा के उपरांत ज्योतिषीय दृष्टि से अंक विद्या की चर्चा यहां की गई है।

संख्या, गणित, अंक जैसे शब्द मात्रा या परिमाण के सूचक हैं किंतु इनका व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ भिन्न है इसलिये ये क्रिया या विधि में अंतर्हित सूक्ष्म अंतर को प्रकट करने वाले शब्द हैं। संख्या का अर्थ होता है सम्यक प्रकार से ख्यान अर्थात् किसी भी मापक को अव्याप्ति-अतिव्याप्ति जैसे दोषों से रहित करके एक नियत निश्चित संकेत से व्यक्त करना।

अंक शब्द का अर्थ होता है चिन्ह। प्रकृति के स्वयंप्रभ विस्तार को किसी चिन्ह से व्यक्त करना ही अंक है। संस्कृत में अंक शब्द का गणितीय अथवा संख्यापरक चिन्ह के सूचक के रूप में ही प्रयोग नहीं किया गया है, चिन्ह के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। जैसे-मृगांक, व्रणांक आदि। किंतु कालान्तर में विशेषतया हिन्दी भाषा में अंक शब्द का अर्थ संकोच होता गया और 'अंक' शब्द गणित के संख्यात्मक संकेत में रूढ़ हो गया।

गणित शब्द एक प्रक्रिया का सूचक होता है। अंक और संख्या जहां घटकों की नियत अवस्था व परिणाम को सूचित करते हैं वहां गणित उन संख्याओं में हो रही क्रिया को परिभाषित करता है। गणित में गणना है और गणना में गण है। गण का अर्थ होता है-घटक। जिस तरह काल में कलन क्रिया है उसी तरह गणित में गणन क्रिया है और उस क्रिया की परिणतिस्वरूप गणित कहलाता है।

जिस तरह अर्थ शब्द से समन्वित होकर एक समग्र प्रवृत्ति परक घटक बनता है वैसे ही आकार का संख्यान, अंक बनता है। संख्याओं का विस्तार नौ तक है किंतु इनके वर्गीकरण में एक, दो, पाँच और सात के ही चार वर्ग बनते हैं। एक का विस्तार तीन, छः और नौ होता है। दो का चार, आठ होता है। छः उभयवर्गीय (अर्थात् द्वित्व और त्रित्व के वर्ग में) है। पाँच शून्य का मध्य है। मध्य और शून्य का अर्थ है कि उद्भव और विनाश की परवर्ती और पूर्ववर्ती अवस्था। पाँच वह स्थिति है जहां उद्भव अपने चरम (विकास) को प्राप्त करता है तद्न्तर विनाश का क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है।

संसार का विकास पंचीकरण विधि से होता है। इस विधि में पांच के घटकों की ही मूल भूमिका रहती है। संसार के व्यक्त उपादान पाँच तत्व इसी प्रक्रिया के मूल आधार हैं। सात तन्वतः पाँच के अधिक निकट है। उदाहरण के लिए यह समझ लिया जाय कि जिस प्रकार पाँच तत्वों में तैजस तत्व मध्यमार्गी है, उसी प्रकार सात, पाँच और दस का मध्य है। सात लोक एवं तत्प्रतीक व्याहृतियों में जहाँ पंच तत्वों के स्थूलतम विस्तार के सूचक भूलोक है वहीं सूक्ष्म लोक, महर्लोक और तपोलोक जैसे भी है।

तीन और छः का जो विस्तार है उसी में अग्रसर स्थिति नौ आती है जिसमें तीन–तीन से गुणित होता है अर्थात् गण में गुणन क्रिया होती है। संसार चक्र में गति ही प्रकृति है और गति के लिए गणित आवश्यक है। स्थिरता में एकरूपता है उसे गणित की अथवा अंकों और संख्याओं की आवश्यकता नहीं रहती।

अंक और संख्याओं की परिणति को गणित कहते हैं। गणित में अंक, बीज और रेखा ये तीन प्रकार आते हैं अर्थात गणित एक प्रक्रिया है क्रिया की सिद्ध अवस्था है। इस साधना को हम अंकों,

* प्रधान सम्पादक – 'सहज आनंद' (त्रैमासिक), मेघ प्रकाशन, 239 दरीबांकलां, चांदनी चौक, दिल्ली–110006

संख्या अथवा रेखा के माध्यम से सम्पादित कर सकते हैं। ये परस्पर विनिमेय भी होती है और अपने स्वतंत्र रूप में भी रह सकती हैं तदपि अंक का सर्वत्र प्रयोग होता है। एक ही क्रिया की तीन अवस्थाएं अनिवार्य रूप में व्यक्त होती हैं।

गणित का आश्चर्यजनक विस्तार हमें भाषा में भी देखने को मिलता है। संस्कृत में विभाजन का प्रायोगिक और सुसंगत उदाहरण है विभक्ति। हिंदी में जो कारक हैं वे ही संस्कृत में विभक्ति हो जाती हैं अर्थात् क्रिया किसी माध्यम के सहारे कारक बनकर सात रूप धारण करती है।

अंक और संख्या वैसे ही घटक हैं जैसे अक्षर और शब्द। प्रकृति की क्रमिक गति और आवर्तनशीलता को मापने के लिए संख्यापरक गणना आवश्यक होती है और यही आवृत्तिपरकता हमारे जीवन में संख्या को प्रविष्ट भी करती है और फलित भी। आधुनिक अंक शास्त्र ने हमारे जीवन में संभावित सुखद या दुखद परिस्थितियों का पूर्वानुमान करने की एक विश्वसनीय पद्धति दी है।

समष्टि तरंगों का फलित है और उसमें कोई भी तरंग निरपेक्ष नहीं है। लघु से लघु तरंग विराट से जुड़ी हुई है और तरंगों का यह व्यापार ही संसार के वैचित्र्य का कारण बनता है। इसके साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि गति केवल वृतबद्ध नहीं होती इसमें कोणिक स्थितियां भी बनती हैं। वस्तुतः कोण गति की मूल अवस्था है, वह स्वयं में गति होकर भी अपनी ही विशिष्ट भंगिमा (जो वर्तुल है) को प्रेरित करती है। गति के समीकरण में कोण भी आते हैं जो सहज रूप से बन जाते हैं और वे अप्रत्यक्ष रूप से हमारे गणित को अधिक सारवान बना देते हैं।

व्यवहार में संख्या की ऊर्ध्वाधर अथवा दक्षिण गति होती है। पहाड़ों या गिनती के क्रम में लिखने पर हम ऊपर से नीचे चलते हैं किन्तु क्रियाशीलता में हम दक्षिणावर्त गति से अर्थात दाहिने से बायें चलते हैं। अंग्रेजी भाषा की सी विचित्रता हमें गणित में भी मिलती है कि लिखते समय हम वामावर्त गति से लिखते है।

गणित में तीन तरह की गति व्यवहार में देखने में आती है ऊर्ध्वाधर। गिनती व पहाड़े लिखते हैं तो उन्हें क्रमिक युति, अंकों के विकास किंवा वृंहण की परिपाटी है। संख्या लेखन अथवा गुणा भाग में वह वामावर्त एवं दक्षिणावर्त विधि से विकसित होती है। सामान्य व्यवहार के अनुसार ऊर्ध्वाधः अथवा पूर्व पश्चिम एक गणना क्रम का विकास ही है। वह परिवर्तन से क्षुण्ण नहीं होता। हमारे यहां पृथ्वी की पूर्वाभिमुखी गति के कारण सूर्य पश्चिम गति दिखता है। इसी को हम ऊध्वार्धः मान लेते हैं , ये केवल क्रम हैं , सूचक हैं, कारक नहीं।

वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार भी पूर्व पश्चिम न्यूट्रल रहते हैं जबकि उत्तर-दक्षिण से धन-ऋण प्रकृति की धारायें प्रवाहित होती है। हमारे पिण्ड प्रथ्वी में उत्तर गोलक से घनात्मक धारा निर्गत होती है और दक्षिण से ऋणात्मक। व्यक्ति के पिण्ड में सिर घनात्मक और पैर ऋणात्मक विद्युत धारा के निर्गम स्थान माने जाते हैं। यही सोचकर हमारे ऋषिजनों ने उत्तर की तरफ सिर करके सोने का निषेध किया था क्योंकि समान प्रकृति की अलक्ष्य धाराओं में परस्पर आकर्षण होने से व्यक्ति की शक्ति में ह्रास हो सकता है और उत्तर की ओर पैर करने से दोनों धाराओं में प्रकृति वैषम्य होने से आकर्षण नहीं होगा।

व्यवहार में हम दक्षिण को निर्गम की और उत्तर को आगम की दिशा मानते हैं। यही सिद्धांत गणित के गुणन और भजन की गति में भी प्रकट होता है। ह्रास से वृद्धि की ओर बढ़ने की सूचना हम वामावर्त गति से देते हैं अर्थात् निरन्तर वृद्धि व विकास की कामना करने वाला दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ता है। ऐसी ही स्थिति गुणन क्रिया में होती है। वहां अंकों को गुणित करने का क्रम बांये से दांये

चलता है। यह क्रम जब परावर्तित होता है तो भजन क्रिया कहलाता है। किंतु तब इसका गतिक्रम भी परिवर्तित हो जाता है अर्थात् उत्तर से दक्षिण की ओर, दाहिने से बाएं।

संख्याओं का प्रारंभ शून्य से होता है। संसार का प्रारंभ भी इसी बिन्दु से होता है। वर्णमयी मातृका में तो संसार अवस्थित ही नहीं गतिशील भी है। जिसका प्रमाण आत्मा शब्द स्वयं है।आत्मा का अर्थ होता है गतिशील अत् धातु जो गत्यर्थक है उससे आत्म शब्द बनता है यही स्थिति काल शब्द की है और ऐसा ही अर्थ सरस्वती शब्द का होता है अर्थात संसार (जो व्यवस्थित क्रम से चलता है, उसे संसार कहते है) गति का परिचय है स्थिरता इसमें आकाश तत्व की तरह निगूढ़ एवं आवृत रहती है।

भाषा के आधार पर विकासकथा का परीक्षण करने पर हमें कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं जैसे शब्दावली में दो परस्पराभिमुख अवस्थाओं को अभिव्यक्त करने वाली क्रिया या संज्ञा प्राप्त होती है। अंकों में यह स्थिति चिन्हों में अभिव्यक्त होती है। ये चिन्ह विपरीत वृत्ति एवं क्रिया के बोधक बनते हैं और ये क्रियाएं भी द्वन्द्व रूप में वर्गीकृत हैं। भाषा किंवा संख्याओं को द्वन्द्वमयी अवस्था में मुक्त करने के लिए हम जिस संकेतक का प्रयोग करते हैं - वह संख्या में शून्य और भाषा में अतीत, पर, परम जैसे पदों से व्यक्त होता है।

अंकों में व्यवहित शून्य को पूर्णत्व का प्रतीक भी मानते है और यह बिंदु का ही चरित्र है कि वह गति की किसी भी क्रिया से व्याहत नहीं होती। यह स्थिति इस तथ्य की सूचक है कि द्वन्द्वात्मक अवस्था के मूल में एक ही प्रकट द्वित्व का प्रारंभिक होता है यह रेखा वलय। विस्तृत अर्थ में इसे ब्रह्माण्ड का रेखांकन भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड की ऐसी ही आकृति होती है।

रेखा का अस्तित्व उस निरपेक्ष अव्यव सत् की विशुद्ध अवस्था है और यही से गणित का विभाग होता है। शून्य की रेखायें विविध आयामों का परिमापन प्रकाशन करती हुई अनन्तता की ओर अग्रसर होती है। यही प्रस्तार क्रम रेखागणित के इस सिद्धांत का आधार है कि बिंदु का विकास त्रिकोण में होता है।

वर्ण मातृका में स्वर और व्यंजन के रूप में दो वर्ग है, उभयरूपता है। व्यंजन व्यक्त होते हैं और स्वर उन्हें विकसित करते हैं। यद्यपि वर्णमातृका का विस्तार व्यंजन से अधिक होता है पर उस विस्तार में स्वरों की अनिवार्य भूमिका रहती है। स्वर विस्फारक होते हैं इसलिए वे पुरुष प्रतीक और व्यंजन विस्फारणीय अतएव प्रकृति प्रतीक होते हैं। स्वरों में भी ह्रस्वपुरुष और दीर्घ प्रकृति सूचक होते हैं।

स्वरों का साम्य यदि संख्याओं में देखें तो ज्ञात होगा कि तीन, छः और नौ पुरुष और दो, चार, आठ प्रकृति प्रतीक है। स्वर वर्णों में ऋ और लृ को हम नपुंसक मान लें तो वे स्थिर प्रवृत्ति होते हैं अर्थात् वे समभावापन्न पुं और स्त्री की परिणिति हैं। अनुस्वार और विसर्ग का एक और पाँच में अंतर्भाव हो जाता है। अनुस्वार नदन क्रिया हैं और विसर्ग परिणाम धर्मिणी प्रकृति का स्वरूप है। तीन, छः और नौ क्रमशः अ, इ, उ में समाविष्ट होते हैं। इस परिकल्पना का व्यावहारिक उदाहरण है कि अकारान्त शब्द पुल्लिंग ही होते है, किंतु इकार अंत वाले शब्द उभयलिंगी होते हैं जिसका तात्विक अर्थ यह है कि त्रिभुज में ऊर्ध्व शीर्ष ही वह स्थल होता है जिसमें से प्रवेश अथवा निर्गम संभव हो पाता है।

दो, चार और आठ दीर्घ आ, ई, ऊ के प्रतीक बनते हैं क्योंकि जहां तीन किसी भी द्वित्व या विभक्ति के प्रभाव से मुक्त है वहीं नौ केवल अपने ही स्वरूप से गुणित हुआ करता है। $3 \times 3 = 9$ जबकि छः उभयनिष्ट होता है $3 + 3 = 6$ और $3 \times 2 = 6$ । छः का यही चरित्र इसे त्रिकोण का ऊर्ध्वशीर्ष बिंदु अतएव तीन और नौ के मध्य की स्थिति प्रदान करता है। इस प्रकृति के विपरीत ये युगल संख्याएं हैं जो मुक्त रूप में ही प्रयुक्त होती हैं।

दीर्घ अथवा संधिकृत ए और ओ छः और आठ में अन्तर्निहित होते हैं। ऋ सात और लृ दस में समाहित हो जाता है। दस का अर्थ शून्य होता है। इकाई तक के वर्ग क्रम में 1, 3, 5, 7 ही ऐसे अंक हैं जो विभक्ति वा गुणित जैसी क्रियाओं से प्रभावित नहीं होते हैं।

इसके पश्चात् व्यंजनों का वर्गक्रम आता है जो पंचीकरण पद्धति से चलता है। स्वरों का वर्तन विकास त्रिवृत क्रम से चला था, व्यंजन क्रम में पाँच का घटक प्रमुख विधायक बनता है। जो प्रकृति में पांच तत्व, पांच तन्मात्रा, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और पंचकोशमय व्यष्टिगत एवं समष्टिगत विस्तार का वितान बनता है।

आगे की स्थितियां भी इन्हीं अंकों के चिन्हों से निर्मित, अभिव्यक्त होती हैं जिनमें युति-वियुति, गुणित-विभक्त की क्रिया से इनका विस्तार होता है। वे संख्याएं जो अभाज्य है वे ऋकारादि नपुंसक स्वरों के ही विकसित वर्धित रूप हैं।

पंजीकरण के सिद्धांत का संबंध भी चतुष्कोण की तरह ही है क्योंकि पांच उस एक का क्रमिक स्थूलीकरण है। स्थूलीकरण में एक-एक करके पांच तक प्रबुद्ध होने का क्रम है। यही क्रम जब संहरित होता है तो प्रतिलोम विधि से पाँच पदक्षेपों में चलता है जिसका योग दस होता है।

शेष को मूलांक या भाग्यांक मानने की पद्धति भी है।

सुविधा के लिए वर्णांकों का चक्र दिया जा रहा है।

वर्ण	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ऋ	लृ	लृ	ए
वर्णांक	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
वर्ण	ऐ	ओ	औ	अं	अः						
वर्णांक	13	14	15	16	17						
वर्ण	क	ख	ग	घ	ङ						
वर्णांक	3	4	5	6	7						
वर्ण	च	छ	ज	झ	ञ						
वर्णांक	4	5	6	7	8						
वर्ण	ट	ठ	ड	ढ	ण						
वर्णांक	5	6	7	8	9						
वर्ण	त	थ	द	ध	न						
वर्णांक	6	7	8	9	10						
वर्ण	प	फ	ब	भ	म						
वर्णांक	7	8	9	10	11						
वर्ण	य	र	ल	व							
वर्णांक	8	9	10	11							
वर्ण	श	ष	स	ह							
वर्णांक	9	10	11	12							

अनेक बार जिज्ञासाएं आती हैं कि फलित विचार के लिए कौन–सा नाम ग्राह्य हो। एक व्यक्ति का घर नाम कुछ है और संस्थागत कोई और। मेरे अपने विचार से जिस व्यक्ति का जो नाम सर्वाधिक प्रचलित हो वही फलित के लिए विचारणीय रहना चाहिए। 'अंक-विद्या' के प्रामाणिक अध्ययन के लिए पाठकों को निम्न पुस्तकों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

1. अंकोदया/इंजी. हरीश श्रीवास्तव/मेघ प्रकाशन, दिल्ली/2001

2. अंक दर्शन/पं. गोविन्द शास्त्री/मेघ प्रकाशन, दिल्ली/1997

प्राप्त: 02.04.2010

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 35-42

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

रायसेन जिले के कतिपय जैन अवशेष

■ नरेश कुमार पाठक *

सारांश

मध्यप्रदेश के भोपाल सम्भाग में स्थित रायसेन जनपद के विभिन्न ग्रामों से प्राप्त जैन पुरावशेषों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत आलेख में प्रस्तुत किया गया है।

- सम्पादक

मध्यप्रदेश के हृदय भाग में अवस्थित रायसेन जिला भोपाल सम्भाग में 22° 47′ से 22° 33′ उत्तरी अक्षांश एवं 77° 21′ से 78° 49′ पर विस्तृत है। इसका अधिकांश भाग मालवा के पठार में है, कुछ भाग नर्मदा घाटी में पड़ता है। रायसेन जिले की सीमायें पश्चिम में सीहोर, उत्तर में विदिशा, पूर्व एवं उत्तर-पूर्व में सागर जिला एवं दक्षिण-पूर्व में नरसिंहपुर एवं दक्षिण में होशंगाबाद एवं सीहोर जिले की सीमा है। रायसेन जिले का नामकरण जिला मुख्यालय में प्रसिद्ध दुर्ग के नाम पर रखा गया, जिसकी स्थापना रायसिंह द्वारा की गयी थी। जिले के भौगोलिक विभाजन में विंध्य की श्रेणी का भाग, उत्तर का मालवा का पठार, दक्षिण का नर्मदा घाटी का भाग है। विंध्य की श्रेणियों में अधिकांशतः ऊँची श्रेणी, गढ़ी क्षेत्र की 775.4 मीटर समुद्र तल से ऊँची है। मुख्य श्रेणियों में औसत ऊँचाई 625.2 मीटर है। मालवा के पठार पर गौहरगंज, बेगमगंज, तहसीलें हैं। बरेली तहसील का उत्तर-पश्चिम भी शामिल है। नर्मदा घाटी में उदयपुरा एवं सिलवानी तहसील के भाग हैं, इस जिले से प्रागैतिहासिक काल से मराठा काल तक के अवशेष मिले हैं। इस जिले की देवरी जागीर, सिलवानी, रामगढ़, चान्दना, मडखेड़ा टप्पा, देवरी, उदडमऊ, डूगरिया, मल्हारपुरा, पाटन, भोजपुर, अमरावद, इकलावान, आंकलपुर, पिपलिया गज्जू, टिगरिया, वैजलपुर, खुकरिया, सरई, मुरारी, आनापुरी, सेमरी खोजरा, जामगढ़, नयागांव कला, जीराबाड़ा, बरेली, अमरावदकला, मोडिया, खरगोन, बाड़ी खुर्द, आदि स्थानों से जैन पुरावशेष मिले हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

भोजपुर–भोजपुर गौहरगंज तहसील में भोपाल से 30 कि.मी. दूरी पर बेतवा नदी के तट पर स्थित है। यह 23° 06′ उत्तरी अक्षांश एवं 77° 38′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। भोजपुर जैन शिल्प का केन्द्र था। यहां जैन मंदिर का बाहरी भाग कालान्तर में पुनः निर्मित किया गया था। इसके शिखर और गर्भगृह की छत के ध्वस्त होने से अब खुला अन्तराल दिखाई देता है। निश्चित ही राजा भोज के समय का है। यहां से जैन तीर्थंकर शान्तिनाथ, सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं के अतिरिक्त अन्य जैन प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं। भोजपुर के जैन मंदिर से सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की 4.5 मीटर ऊँची मूर्ति मिली है, जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है। वक्ष स्थल पर मध्य में श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। इनका लांछन हिरण पादपीठ के मध्य में उत्कीर्ण है, जिसके पार्श्व में दहाड़ते हुये सिंह पादपीठ को संभाले प्रदर्शित है। इस प्रतिमा के दोनों पार्श्व भागों में चंवरधारी अनुचर कटयावलम्बित मुद्रा में अंकित किये गये है। पूर्णतया मूर्ति शिल्प के मापदण्डों पर बनाई गई है। किन्तु इसके शारीरिक अवयवों के अंकन में अनुपात की कमी है। कुंचित केश सुरुचिपूर्ण ढंग से अंकित किये गए हैं। प्रभामण्डल सादगीपूर्ण और चौकोर है।

* संग्रहाध्यक्ष, केन्द्रीय संग्रहालय, पन्ना (म.प्र.)

विशाल और जालागुलि कद, लम्बे कर्ण आदि महापुरुषों से अनुप्रमाणित हैं। पादपीठ के मध्य में अंकित चक्र चक्रवर्ती होने का द्योतक है। जैन ग्रन्थों के अनुसार मूर्ति राजपुरुष लक्षणों से युक्त है। शान्तिनाथ की प्रतिमा के दाहिने भाग में स्थापित दो मीटर ऊंचाई की कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसके हाथ खण्डित हैं, पैरों के पार्श्व में परम्परागत चंवरधारी अनुचर उत्कीर्ण हैं। पादपीठ पर दो सिंह अंकित हैं। प्रभामण्डल के स्थान पर परिचयात्मक लक्षण सप्तफण युक्त नाग अंकित है, जिसके शीर्ष भाग पर अर्द्धवृत्ताकार अलंकरण युक्त छत्र निर्मित है, कुंचित केश, दीर्घ कर्ण और अर्धोन्मीलित नेत्र इस मूर्ति की विशेषताएँ हैं। यह मूर्ति परमार काल की है। परमार कालीन भोजपुर के जैन मंदिर में पंचफण युक्त नाग लंबित जैन तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की मूर्ति पार्श्वनाथ की मूर्ति के तुल्य है। सम्प्रति यह अनुमान है, कि यह अन्यत्र से लाई गई है। भोजपुर के जैन मंदिर के द्वार पर एक अन्य जैन तीर्थंकर की पद्मासन प्रतिमा है। इस प्रतिमा में पार्श्व के चंवरधारी अनुचर है। शीर्ष भाग में दो अन्य जैन प्रतिमाएं योगासन में अंकित हैं। सर्वोच्च भाग में छत्र है। लता बल्लरियों से परिकर अलंकृत है, किन्तु यह प्रतिमा लांछन विहीन है, जिससे इसकी पहचान कठिन है, जैन मंदिर में स्थित इस तीर्थंकर प्रतिमा पर परमार वंशीय राजा भोज के शासन काल का लेख है। यहां से प्राप्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर परमार राजा नरवर्मन के शासन काल का लेख उत्कीर्ण है।

पिपलिया गज्जू–पिपलिया गज्जू गोहरगंज तहसील में मंडीदीप पोलाहा मार्ग पर 2 कि.मी. दूरी पर मुख्य मार्ग पर स्थित है। यह 23° 05′ उत्तरी अक्षांस एवं 77° 03′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। यहां कालीबाई नामक स्थान पर लगभग 13वीं शती ईस्वी की तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। पद्मासन मुद्रा में देव प्रतिमा की भाव भंगिमा, प्रतीक चिन्ह, परिकर की प्रतिमा अस्पष्ट है। सिर पर सर्पफणों के अवशेष दृष्टिगत हैं। वितान पर दोनों ओर हस्ति का अंकन है जिसके आधार पर पार्श्वनाथ प्रतिमा निरूपित की जा सकती है।

उड़द मऊ – उड़द मऊ उदयपुरा तहसील में उदयपुरा से 7 कि.मी. दूरी पर स्थित है यह 23°07′ उत्तरी अक्षांस 78°02′ पूर्वी देशांतर पर स्थित है। गांव में माताबाई के चबूतरे पर 12वीं 13वी शती ईस्वी के जैन तीर्थंकर पादपीठ का भाग 60x15 सें.मी. जिसमें बीच में देवी प्रतिमा पादपीठ (65x25x50 सें.मी.) में बीच में गज का अंकन है।

बरेली – बरेली इसी नाम की तहसील का मुख्यालय है, जो रायसेन से 80 कि.मी. दक्षिण पूर्व में घोर नदी के तट पर स्थित है। यह 23°00′ उत्तरी अक्षांस 78°18′ पूर्वी देशांतर पर अवस्थित है। यहां विश्राम भवन के पास तीर्थंकर आदिनाथ की प्रतिमा (166x83x63सें.मी.) रखी है। यह प्रतिमा बलुआ पत्थर पर निर्मित लगभग 10वीं शती ईस्वी की है। कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित तीर्थंकर प्रतिमा का निचला भाग भग्न है। पादपीठ के नीचे दो सिंह विपरीत दिशा में मुख किए बैठे हुए है। दाहिने पार्श्व में परिचारक खड़ा है, वितान में कायोत्सर्ग जिन प्रतिमा दोनों ओर परिचारकों सहित खड़ी है। इसके अलावा दोनों ओर विद्याधर युगल, प्रभा मण्डल, अभिषेक करते गजराज, पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा, त्रिछत्र आदि प्रतिमाओं का अंकन है। तीर्थंकर के सिर के कुन्तलित केश जो कंधे तक फैले होने के कारण यह प्रतिमा प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की है।

देवरी – देवरी उदयपुरा तहसील में उदयपुरा से 19 कि.मी. उत्तर पूर्व में स्थित है। यह 23°08′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°44′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में तालाब के किनारे माताबाई के चबूतरे पर लगभग 12वीं, 13वीं शती ईस्वी की तीर्थंकर प्रतिमा (35x24x15 सें.मी.) रखी है।

अमरावद कला – अमरावद कला बरेली तहसील में बरेली से 26 कि.मी. पश्चिम में स्थित है।

यह 22°58′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°06′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में छोटे भैय्या के घर से खुदाई में चार मस्तक रहित तीर्थंकर प्रतिमायें मिली हैं, जो पद्मासन मुद्रा में हैं। पादपीठ पर अभिलेख उत्कीर्ण हैं। ये प्रतिमायें क्रमशः पद्मासन तीर्थंकर (60x52x32 सें.मी.) पद्मासन तीर्थंकर (56x35x38 सें.मी.) पद्मासन तीर्थंकर (62x58x34 सें.मी.) एवं मस्तक रहित तीर्थंकर प्रतिमा है। प्रतिमा लगभग 7वीं शती ईस्वी की है। पण्डा बाबा के चबूतरे पर तीर्थंकर प्रतिमाओं युक्त स्तम्भ (180x45x45 सें.मी.) 12वीं शती ईस्वी का है। गांव में दुर्गा माता के चबूतरे पर बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमाएं जिनमें लगभग 12वीं शती ईस्वी की प्रतिमा तीर्थंकर का ऊपरी भाग तथा दरयावसिंह ठाकुर की बाखल से लगभग 12वीं शती ईस्वी की बलुआ पत्थर पर निर्मित जैन मंदिर की द्वारशाखा (110x35 सें.मी.) ललाट बिम्ब पर तीर्थंकर पद्मासन में बैठे हैं, रखा है।

खुकरिया – खुकरिया गौहरगंज तहसील में खुकरिया उमरावगंज से 4 कि.मी. दूरी पर पूर्व में स्थित है। यह 23°11′ उत्तरी अक्षांस एवं 77°38′ पूर्वी देशांतर पर अवस्थित है। गांव के बाहर मंदिर के समीप एक पेड़ के नीचे एक तीर्थंकर की यह प्रतिमा मध्यकालीन प्रतीत होती है।

टिगरिया – टिगरिया गौहरगंज तहसील में औबेदुल्लागंज से दक्षिण पश्चिम दिशा में कच्चे मार्ग पर 3 कि.मी. दूरी पर एवं छोटी पहाड़ी पर बसा है, यह 22°57′ उत्तरी अक्षांस एवं 77°35′ पूर्वी देशांतर पर अवस्थित है। इस गांव के दक्षिण–पूर्वी ओर वान्दरावान नामक स्थान पर प्राचीन मंदिर के गर्भगृह के सामने रखी तीर्थंकर महावीर (50x45x11 सें.मी.) प्रतिमा हल्के पीले बलुआ पत्थर पर निर्मित है। देव पद्मासन में है। इसका अग्रभाग आंशिक भग्न है। देव के दोनों ओर चांवर धारिणी नीचे पीठिका पर मध्य में धर्मचक्र जिसके दोनों ओर यक्ष मातंग एवं दांयी ओर देवी यक्षी सिद्धायिका का अंकन है।

खरगोन – खरगोन बरेली तहसील में बरेली से 17 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह 23°06′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°19′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में एक मढ़िया में लगभग 10वीं 11वीं शती ईस्वी की बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा रखी है, जिसमें पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा (77x73x20 सें.मी.) तीर्थंकर के पार्श्व में चामरधारिणी, प्रभामण्डल से अलंकृत है। गांव में अमली के पेड़ से नीचे लगभग 11वीं 12वीं शती ईस्वी की बलुआ पत्थर पर निर्मित पद्मासन में बैठी तीर्थंकर प्रतिमा (210x107x38 सें.मी.) आदिनाथ की है। सिर के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल, लंबे कर्णचाप कंधे तक फैले हुए है। पादपीठ पर विपरीत दिशा में मुख किये सिंह प्रतिमा अंकित है। वितान में मालाधारी विद्याधर, त्रिछत्र अंकित है। नदी के किनारे पद्मासन में तीर्थंकर (30x24x13 सें.मी.) शंकरजी के स्थान पर पेड़ के नीचे तीर्थंकर प्रतिमा (58x56x19 सें.मी.) प्राचीन टीलों के निकट ग्वाल बाबा के नाम से ज्ञात स्थल पर तीर्थंकर के ऊपर का भाग छत्र सहित (75x37x20 सें.मी.) पद्मासन में बैठे तीर्थंकर के ऊपरी भाग में प्रभामण्डल, दोनों विद्याधर युगल का अंकन है।

चान्दना – चान्दना रायसेन तहसील में है। यह हिम्मतगढ़ के पास स्थित है। यह 23°25′ उत्तरी अक्षांस एवं 77°04′ पूर्वी देशांतर पर अवस्थित है। यहां से तीर्थंकर प्रतिमा मिली है, जो पद्मासन में बैठी तीर्थंकर प्रतिमा है, जो परमार कालीन है।

राजगढ़ – रामगढ़ सिलवानी तहसील में बम्होरी से 3 कि.मी. उत्तर की ओर स्थित है। यह 23°13′ उत्तरी अक्षांस 78°12′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव के उत्तर की ओर पहाड़ी पर 11वीं 12वीं शती ईस्वी का लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित स्तम्भ खण्ड (80x85x3 सें.मी.) में जैन तीर्थंकर के पैर का भाग एवं पादपीठ पर मानवाकार गरूड़ासीन जैन यक्षी चक्रेश्वरी का अंकन है। चक्रेश्वरी के मुख हाथ व पैर भग्न है।

भोडिया – भोडिया बरेली तहसील में बरेली से 13 कि.मी. उत्तर पूर्व में स्थित है। यह 23°04′

उत्तरी अक्षांस एवं 78°18′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में तालाब के किनारे 12वीं शती ईस्वी की पद्मासन में तीर्थंकर प्रतिमा (38x37x13 सें.मी.) तीर्थंकर पद्मासन की ध्यानस्थ मुद्रा में अंकित है। पार्श्व में दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में जिन प्रतिमा हैं पादपीठ पर विपरीत दिशा में मुख किये सिंह का अंकन है।

मडखेड़ा टप्पा – मडखेडा टप्पा बेगमगंज तहसील में सुनहरा के पास स्थित है। यह 23°30′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°24′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में परमार कालीन तीर्थंकर प्रतिमा है।

आंकलपुर – आंकलपुर गोहरगंज तहसील में होशंगाबाद-भोपाल पर औबेदुल्लागंज से 7 कि.मी. पूर्व में संडक के किनारे बसा है। गांव में स्थित प्राथमिक पाठशाला के समीप पेड़ के नीचे यक्षी पद्मावती प्रतिमा (75x50x18 सें.मी.) लगभग 16वीं शती ईस्वी की बलुआ पत्थर पर निर्मित है। स्थानक मुद्रा में चतुर्हस्था देवी के हाथों के आयुध क्रमशः तलवार, ढाल एवं दो हाथ भग्न है। जटा मुकुट के ऊपर सर्पफण भग्न रूप से दर्शित हैं। यद्यपि देवी सर्वाभूषण से शोभित रही है। इस देवी प्रतिमा के आयुध प्रतिमा शास्त्रीय ग्रंथों में दिये लक्षणों से साम्य नहीं रखते हैं, तथापि सिर पर फणों का छत्र पार्श्वनाथ की पक्षी पद्मावती होना इंगित करता है।

जामगढ़ – जामगढ़ बरेली तहसील में बरेली से 15 कि.मी. उत्तर में स्थित है। यह 23°07′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°20′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। यहां पर 12वीं 13वीं शती ईस्वी का जैन मंदिर स्थित है। यहां मात्र एक जैन मंदिर है, जो मुस्लिम काल में भी अस्तित्व में बना रहा।

अमरावद – अमरावद गोहरगंज तहसील में रायसेन से 30 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह 23°18′ उत्तरी अक्षांस एवं 77°58′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। यहां से प्राप्त तीर्थंकर आदिनाथ प्रतिमा (71x63x18 सें.मी.) नेमिनाथ प्रतिमा (71x53x27 सें.मी.) तीर्थंकर प्रतिमा (70x70x38 सें.मी.) गोमंद अम्बिका (62x48x18 सें.मी.) आदि जिला संग्रहालय विदिशा में सुरक्षित हैं।

सरई – सरई गोहरगंज तहसील में औबेदुल्लागंज गोहरगंज मार्ग में औबेदुल्लागंज से लगभग 5 कि.मी. दूरी पर तामोट से 2 कि.मी. पूर्व में स्थित है। यह 22°15′ उत्तरी अक्षांस 77°38′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव के बाह्य भाग में पहाड़ की तलहटी में एक स्थान पर लगभग 12वीं शती ईस्वी की यज्ञी अम्बिका (80x40x25 सें.मी.) सफेद बलुआ पत्थर से निर्मित यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। यह जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की शासन यज्ञी अम्बिका की प्रतिमा है। आम्र वृक्ष की शाखा के नीचे जटा मुकुट, चक्र, कुण्डल एवं आभूषणों से शोभित देवी बांये हाथ में एक शिशु एवं दांयी ओर गोद में अन्य शिशु को लिये है। ये उनके दोनों शिशु प्रियंकर एवं शुभंकर का अंकन है। प्रतिमा आशिंक भग्न है।

पाटन – पाटन गैरतगंज तहसील में हरदोर से 2 कि.मी. पश्चिम में स्थित है। यह 23°31′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°15′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में पीपल के पेड़ के नीचे यक्षी अम्बिका की प्रतिमा रखी है। अम्बिका प्रतिमा (73x45x15 सें.मी.) द्विभुजी देवी के दाहिने हाथ में आम्र गुच्छ, बांये हाथ में बालक को पकड़े हुए है। नीचे सिंह एवं दोनों ओर एक-एक पुरुष प्रतिमा रखी है। प्रभामण्डल के दोनों ओर जिन पद्मासन में बैठे है। बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा 12वीं शती ईस्वी की है। यहां से तीर्थंकर प्रतिमा (36x25x12 सें.मी.) तीर्थंकर शांतिनाथ (52x25x24 सें.मी.) तीर्थंकर मस्तक (34x30x15 सें.मी.) तीर्थंकर प्रतिमा (24x22x21 सें.मी.) तीर्थंकर प्रतिमा सिर विहीन (29x28x15 सें.मी.) तीर्थंकर कायोत्सर्ग प्रतिमा (64x26x20 सें.मी.) है।

इकलावान – इकलावान मोहरगंज तहसील में औबेदुल्लागंज से 3 कि.मी. पूर्व में सड़क से लगभग 3 कि.मी. दक्षिण दिशा में स्थित है। यह 22°58′ उत्तरी अक्षांस एवं 77°37′ पूर्वी देशान्तर पर

अवस्थित है। गांव में मनोहर नागर के खेत में अम्बिका प्रतिमा (84x40x12 सें.मी.) लगभग 13वीं शती ईस्वी की है। स्थानक आसन में द्विभंग मुद्रा में देवी आम्रवृक्ष के नीचे बांये हाथ से बड़े बालक प्रियंकर का हाथ पकड़े हैं, दांयी गोद में अन्य शिशु शुभंकर दृष्टिगत है। दांयी ओर नीचे एक उपासक है। देवी आभूषणों से शोभित है। मुख घिसा हुआ है।

बैजलपुर – बैजलपुर गोहरगंज तहसील गोहरगंज- जबलपुर मार्ग पर गोहरगंज से 2 कि.मी. पश्चिम में स्थित है। यह 23°02′ उत्तरी अक्षांस एवं 74°41′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में देव स्थान पर लगभग 12वीं 13वीं शती ईस्वी की तीर्थंकर प्रतिमा (60x35 सें.मी.) बलुआ पत्थर पर निर्मित पद्मासन में तीर्थंकर का ऊपरी परिकर का भाग भग्न है। नीचे पीठिका पर लांछन अस्पष्ट है। परिकर एवं पीठिका पर लघु प्रतिमाएं जिसमें देव के यक्ष-यक्षी रहे हैं। पूर्णतः अस्पष्ट है।

डूगरिया – डूगरिया उदयपुरा तहसील में देवरी से 11 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह 23°10′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°44 पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। यहां गांव से 27 कि.मी. दूर उत्तर में ऊँचे पठार पर लगभग 11वीं 12वीं शती ईस्वी की प्रतिमा रखी है, जिनमें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा जिसके अलंकृत वितान है। दोनों भुजा भग्न अवस्था में है, ऊपर वितान पर चारों ओर छोटे–छोटे जैन तीर्थकर दिखाये गये है। सुपार्श्वनाथ के सिर के ऊपर त्रिछत्र है। प्रतिमा दांये-बांये परिचारिकाओं का अंकन है। प्रतिमा लाल बलुआ पत्थर पर निर्मित है।

नया गांव कला – नया गांव कला बरेली तहसील में बरेली के निकट 3 कि.मी. पूर्व दिशा में स्थित है। यह 22°60′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°16′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में पूर्व दिशा की ओर खंडापति की मढ़िया स्थित है, जिसमें 17वीं शती ईस्वी की बलुआ पत्थर पर निर्मित है। स्थापत्य खण्ड का निचला देव कोष्ठका स्तम्भ है जिसमें दो कायोत्सर्ग मुडा जैन प्रतिमा (25x16x8 सें.मी.) है।

सेमरी खोजरा – सेमरी खोजरा बरेली तहसील में बरेली से 28 कि.मी. पश्चिम में स्थित है। यह 22°56′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°05′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में 14वीं शती ईस्वी की तीर्थंकर की पद्मासन प्रतिमा (18x10 सें.मी.) है। श्री मनबोध सिंह के खेत में बलुआ पत्थर पर निर्मित लगभग 14वीं शती ईस्वी की प्रतिमाएं रखी हैं जिनमें प्रथम कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा (78x47x11 सें.मी.) तीर्थंकर का सादा पादपीठ है, जिस पर मूर्ति लेख उत्कीर्ण है। दोनों पार्श्व में पद्मासन में तीर्थंकर बैठे हैं। बितान में सात तीर्थंकर प्रतिमायें उत्कीर्ण है।

जीराबाडा – जीराबाडा बरेली तहसील में नया गांव खुर्द के पास स्थित है। यह 23°05′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°20′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। गांव में 10वीं शती ईस्वी की बलुआ पत्थर पर निर्मित जैन मस्तक (30x20 सें.मी.) है।

बाडी खुर्द – बाडी खुर्द बरेली तहसील में बरेली से 18 कि.मी. पूर्व में स्थित है। यह 23°02′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°05′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। यहां आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर बाडी ग्राम के किले के निकट प्राचीन जैन मंदिर है, इसे जैन अतिशय क्षेत्र माना जाता है। यद्यपि मंदिर का पीछे का भाग भग्न है, जो द्वितलीय था, मंदिर मूलतः 12वीं 13वीं शती ईस्वी का रहा है। यहां पर स्थित कलाकृतियां इसी काल की है। मुख्य कक्ष में स्थापित जैन तीर्थंकर प्रतिमा विक्रम संवत् 1281 (ईस्वी सन् 1224) का लेख है, जिसमें विक्रमादित्य की पत्नी आकलय देवी द्वारा प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। यहां पर स्थित प्रतिमाओं में प्रथम कायोत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमा है, जिसका आकार (115x35x22 सें.मी.) है। प्रतिमा 12वीं शती ईस्वी की है। कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर के पार्श्वचरों में चाकर धारी सेविका यक्ष-यक्षी विद्याधर आदि का परिकर पीठिका एवं वितान पर आलेखन है। वितान

पर व्यालाकृतियां भी अंकित हैं। छत्रावली के ऊपर बनी राधिकाओं में ध्यानस्थ जिनाकृतियां अंकित है। मालाधारी गंधर्व गजारोही भी शिल्पांकित हैं। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित यह प्रतिमा परमारकला की महत्वपूर्ण देन है। द्वितीय प्रतिमा भी कायोत्सर्ग तीर्थंकर की है, जिसका आकार 106x71x12 सें.मी. है। बलुआ पत्थर पर निर्मित त्रितीर्थी कायोत्सर्ग प्रतिमा का काल शैलीगत आधार पर 12वीं शती ईस्वी की है। कायोत्सर्ग प्रतिमा में तीन तीर्थंकर अंकित हैं। मध्य के तीर्थंकर के दोनों ओर नीचे चांवरधारी एवं छत्रावली के दोनों ओर मालाधारी एवं वितान पर पद्मासनस्थ तीर्थंकर के दोनों ओर गजारोही अंकित हैं। गजों के नीचे मृदंगवादक का आलेखन है।

इसके अतिरिक्त तीन सिरविहीन पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमाएं लगभग 12वीं शती ईस्वी की है, इसका आकार क्रमशः 50x55x28 सें.मी. 56x52x34 सें.मी. 54x50x27 सें.मी. है। प्रतिमाएं बलुआ पत्थर पर निर्मित है, अन्य कलाकृतियों में मुख्य द्वार शाखा का पार्श्व भाग (50x46x34 सें.मी.) पद्मासन पार्श्वनाथ (45x44x48 सें.मी.) चौकोर स्तम्भ में उत्कीर्ण (75x30x25 सें.मी.) एवं शिला लेख है। मुख्य मंदिर के कक्ष में जैन तीर्थंकर की निम्न प्रतिमाएं स्थापित हैं। पद्मासन तीर्थंकर अभिलिखित, पार्श्वनाथ, कायोत्सर्ग एवं छोटी दो तीर्थंकर की प्रतिमायें लगभग 17वीं 18वीं शती ईस्वी की हैं।

मल्हारपुरा – मल्हारपुरा गैरतगंज तहसील में गैरतगंज से दक्षिण-पश्चिम में 30 कि.मी. की दूरी पर रायसेन से पूर्व में 14 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह $23^{0}17'$ उत्तरी अक्षांस एवं $77^{0}16'$ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित हैं। यह विशाल जैन प्रतिमा ग्राम के पास जंगल में स्थित है। संभवतः यह जैन प्रतिमा जो आज भग्नप्राय है एक समय अलंकृत एवं सुन्दर प्रतिमा रही है।

देवरी जागीर – देवरी जागीर सिलवानी तहसील में मनकापुर से लगभग एक कि.मी. पूर्व की ओर कच्चे मार्ग पर स्थित है। यह $23^{0}15'$ उत्तरी अक्षांस एवं $78^{0}32'$ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। यहां से किसी जैन मंदिर के वितान का भग्न शिल्प खण्ड मिला है, जिसमें पद्मासन मुद्रा में महावीर तथा उनके पार्श्व में दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर प्रतिष्ठित है। प्रतिमा के नीचे कलाकृतियों का अंकन है। महावीर की मुखाकृति के पीछे प्रभामण्डल का आलेखन है। हल्के लाल बलुआ पत्थर खण्ड पर 36x19x13 सें.मी. आकार में निर्मित होकर यह प्रतिमा लगभग 11वीं 12वी शती ईस्वी की प्रतीत होती है।

यहीं से ललितासन मुद्रा में अंकित देवी यक्षी अम्बिका अपने दाहिने हाथ में पद्म तथा बांये हाथ से बांयी जंघा पर बैठे हुए पुत्र प्रियंकर को सम्हाले हुये है। प्रियंकर देवी के उरोज को स्पर्श कर रहा है, जिससे पुत्र के वात्सल्य भाव व्यक्त होते हैं। देवी के मस्तक के ऊपर तथा पार्श्व में आम्र लुम्बी का आलेखन है। देवी की केश राशि कुन्तलित होकर जूड़े में व्यवस्थित है। आभूषणों में देवी ने कुण्डल, हारावली, स्तनसूत्र दोनों उरोज के मध्य में लटकता हुआ तरल सूत्र, कटिसूत्र तथा पायजेब इत्यादि धारण किये है। प्रतिमा वितान पर दोनों ओर मालाधारी एवं तीर्थंकर की प्रतिमाये शिल्पांकित है। पाठपीठ पर परिचारिका तथा बायी ओर व्याल तथा मध्य में महावीर स्वामी का चित्रण है। बलुआ पत्थर खण्ड पर 73x55x17 सें.मी. आकार में निर्मित यह प्रतिमा लगभग 11वीं 12वीं शती ईस्वी की प्रतीत होती है। प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से यह प्रतिमा उच्च स्तरीय है। देवी का सौम्य भाव तथा पुत्र की वात्सल्य को प्रदर्शित करने के लिये शिल्पी ने बड़ी तन्मयता तथा निपुणता से तराशा है।

मुरारी – मुरारी गोहरगंज तहसील में गोहरगंज-भोजपुर मार्ग पर आशापुरी से 2कि.मी. दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित है। यह $23^{0}05$ उत्तरी अक्षांस एवं $77^{0}39'$ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। गांव में माताबाई नामक स्थान से प्राप्त तीर्थंकर (70x65x35 सें.मी.) पद्मासन में है। अलंकृत

प्रभामण्डल है, दांये बांये चांवरधारी हैं। पीठिका का चिन्ह स्पष्ट है एवं अन्य तीर्थंकर (70x40x15 सें.मी.) प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। वितान पर तीर्थंकर के ऊपर छत्र जिसके दोनों ओर मालाधारी युग्म हैं। नीचे चंवरधारी हैं।

आशापुरी – आशापुरी गोहरगंज तहसील में गोहरगंज से उत्तर-पश्चिम में करीब 7 कि.मी. दूरी पर हे। यह 22°05′ उत्तरी अक्षांस एवं 77°40′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। आशापुरी से जैन मंदिर के अवशेष सतमसिया से मिले है। परमार कालीन मंदिर स्थापत्य की यह एक-एक अनुपम कृति रही होगी। इसके गर्भगृह के चारों ओर बाह्य दीवारों पर स्तम्भों पर जैन शासन देवताओं यक्षिणियों की प्रतिमाएं बनी थी। इनमें चक्रेश्वरी, गोमेघ-अम्बिका की प्रतिमा महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त जैन प्रतिमाएं जैन चतुष्टिका आदि भी प्राप्त हुई हैं। इस मंदिर के प्रांगण में महाकाथिक तीर्थंकर प्रतिमा स्थापित रही होगी, जिसे सम्प्रति मंदिर के अवशेषों के समीप ही देखा जा सकता है। आशापुरी से तीर्थंकर आदिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में पांच प्रतिमाएं एक आदिनाथ की पद्मासन प्रतिमा चतुष्टिका जिसके चारों ओर पद्मासन में तीर्थंकर पार्श्वनाथ अंकित है। यक्षी चक्रेश्वरी प्रतिमा, यक्ष-यक्षी गोमेद-अम्बिका, यक्षी अम्बिका प्रतिमा आदि उल्लेखनीय हैं।

सिलवानी – सिलवानी इसी नाम की तहसील का मुख्यालय है। जो रायसेन से 100 कि.मी. उत्तर पूर्व में स्थित है। यह 23°18′ उत्तरी अक्षांस एवं 78°29′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। इस गांव के मध्य में लगभग 15वीं शती ईस्वी में निर्मित जैन मंदिर है। इसमें पार्श्वनाथ, बाहुबली एवं महावीर स्वामी की प्रतिमायें स्थापित हैं। यहां स्थित जैन मंदिर एक जगति पर बना है जो अर्द्ध पत्तीनुमा कंगूरों से अलंकृत है। दरवाजे के सामने दालान है जो दोनों ओर चार-चार स्तम्भों पर आधारित है। ऊपर गजपृष्ठाकृत शिखर है, जिसके तीन दरवाजे मेहरावदार हैं, मंदिर में दो गर्भगृह है, जो जंघा गुम्बदाकार शिखर आमलक एवं कलश से अलंकृत हैं। मंदिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित हैं, तीर्थंकर के सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्ण चाप, वक्ष पर श्रीवत्स सिर के ऊपर ग्यारह फण की नाग मौलि है। पार्श्व में परिचारक खड़े हैं। लगभग 15वीं शती ईस्वी की प्रतिमा काले पत्थर पर निर्मित है। सामान्यतः ग्यारह फण नाग मौलि युक्त प्रतिमा नहीं मिलती है इस कारण यह प्रतिमा प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से दुर्लभ है। ग्यारह नागफण युक्त प्रतिमा का उल्लेख डॉ. मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी ने जैन प्रतिमा विज्ञान में एवं बी.सी. भट्टाचार्य ने दि. जैन आईकनोग्राफी में वर्णन किया है। अतः यह प्रतिमा विशेष महत्वपूर्ण है। यहां से प्राप्त तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र बाहुबली की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है, सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्णचाप हैं। हाथ एवं जंघाओं पर बेल (द्राक्षा बल्लरी) उनके चरणों ओर भुजाओं का आलिंगन कर रही हैं। बाहुबली में दांये बांये कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर प्रतिमायें हैं। सफेद बलुआ पत्थर पर निर्मित प्रतिमा लगभग मध्यकालीन प्रतीत होती है। मंदिर की एक वेदी पर सफेद पत्थर पर निर्मित तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। पद्मासन की ध्यानस्थ मुद्रा में तीर्थंकर के सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्णचाप वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है, नीचे पादपीठ पर ध्वज लाछन सिंह का अंकन है। प्रतिमा मध्यकालीन प्रतीत होती है।

रायसेन जिले के उपरोक्त पुरातत्वीय एवं ऐतिहासिक स्थलों से प्राप्त जैन पुरावशेष स्थापत्य एवं मूर्ति कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, प्रस्तुत आलेख में जैन पुरावशेषों का सूचना मात्र विवरण है। उक्त स्थलों का विस्तार से अध्ययन किया जाय तो जैन पुरातत्व पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है।

प्राप्तः 31.12.09

भगवान महावीर सहित तीर्थंकर पट्ट, देवरी जागीर,
तह. सिलवानी जिला रायसेन

अम्बिका, देवरी जागीर, सिलवानी
जिला रायसेन

बाहुबली जैन मन्दिर, सिलवानी जिला रायसेन

पार्श्वनाथ जैन मन्दिर, सिलवानी, जिला रायसेन

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 43-47

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

नैनागिरी की प्राचीन जैन प्रतिमाएँ

■ जिनेन्द्र जैन *

सारांश

मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित नैनागिरी (रेशंदीगिरि) दिगम्बर जैन परम्परा का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। इस तीर्थ से प्राप्त कतिपय प्राचीन प्रतिमाओं का विवरण यहां प्रस्तुत है।

नैनागिरी छतरपुर जिले (म.प्र.) का महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र है। नैनागिरी सिद्ध क्षेत्र के साथ ही अतिशय क्षेत्र भी है। यह बिजावर तहसील में स्थित है। सागर जिला मुख्यालय से 40 कि.मी. दूर राष्ट्रीय राजमार्ग 86 पर स्थित दलपतपुर से 13 कि.मी. की दूरी पर नैनागिरी है। नैनागिरी को ही रेशंदीगिरी माना गया है। रेशंदीगिरी को साहित्यिक आधार पर लगभग 2900 वर्ष प्राचीन माना गया है। प्राकृत ग्रंथ निर्वाण कांड गाथा में वर्णन है कि तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का समवशरण रेशंदीगिरी आया था। निर्वाण कांड में वर्णन है कि रेशंदीगिरी से वरदत्त आदि पाँच मुनिराज ने मोक्ष को प्राप्त किया था।[1] वह पाँच मुनिराज श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में और उनके मुनिसंघ में थे। 18वीं शती ईसवीं के बाद रेशंदीगिरी का नाम नैनागिरी भी हो गया। 17वीं शताब्दी के मराठी साहित्यकार चिमड़ा पंडित ने तीर्थ वंदना लिखी जिसमें उन्होंने भी गुरुदत्त और वरदत्त मुनियों का मुक्ति स्थान रेशंदीगिरी माना है। बाद के विद्वानों ने निर्वाणकांड के भाषानुवाद में रेशंदीगिरी नैनानंद लिखा है।[2] कालान्तर में रेशंदीगिरी ही नैनागिरी नाम से प्रसिद्ध हो गया। तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के बाद रेशंदीगिरी में जैन संस्कृति की निरन्तरता के प्रमाण प्राप्त नहीं होते है। एक लम्बे अंध युग के पश्चात संभवतः प्राचीन भारत के स्वर्ण युग गुप्तकाल के पश्चात नैनागिरी का विकास पुनः होने लगा। 10-11वीं शती ईसवी तक यह क्षेत्र जैन संस्कृति का महत्पपूर्ण स्थल बन गया। 10-12वीं शती ईसवी के काल में नैनागिरी के साथ ही इस क्षेत्र के चारों ओर जैन संस्कृति का समृद्ध विकास हो रहा था। प्राचीन व्यापारिक मार्गों में संभवतः एक व्यापारिक मार्ग नैनागिरी से अवश्य जाता होगा। इस भौगोलिक क्षेत्र में पाणाशाह का श्रेष्ठी संगठन व्यापार किया करता था। पाणाशाह के अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं।

मध्यप्रदेश से होकर अनेक बड़े राजमार्ग विभिन्न दिशाओं को जाते थे। ये मार्ग मुख्यतः व्यापारिक सुविधा हेतु बने थे। धर्म प्रचार तथा साधारण आवागमन के लिये भी इनका उपयोग होता था। एक बड़ा मार्ग इलाहाबाद जिले के कोशाम्बी नगर से भारहुत, एरण, गयारसपुर तथा विदिशा होते हुए उज्जैन को जाता था। उज्जैन से प्रतिष्ठान (ग्वालियर), कांतिपुरी (मुरैना), तुम्बवन (तुमैन) देवगढ़ होता हुआ विदिशा को जाता था।[3] सागर संभाग का क्षेत्र भी इन व्यापारिक मार्गों से जुड़ा हुआ था। नैनागिरी एक ओर पजनारी, पाटन, पिड़रूआ, ईशरवारा, एरण, ग्यारसपुर होते हुए विदिशा व उज्जैन से जुड़ा हुआ था, वहीं दूसरी ओर द्रोणगिरी, अहार, पपौरा, खजुराहो, सतना होते हुए कोशाम्बी से जुड़ा होगा। इन तीर्थ क्षेत्रों का जैन शिल्प 10-11वीं शती ईसवी से बहुतायत में प्राप्त होता है। 10वीं से 14वीं शती ईसवी तक व्यापारिक संगठनों द्वारा इन जैन तीर्थ क्षेत्रों के विकास में पर्याप्त योगदान किया गया। अनेक स्थलों जैसे ईशरवारा, पजनारी, चंदेरी, अहार, खजुराहो आदि से तद्विषयक अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। स्पष्ट है कि यह क्षेत्र इन व्यापारियों के अपने व्यापारिक मार्गों

* संविदा व्याख्याता, प्रा.भा. इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर (म.प्र.)

से जुड़े थे, जहाँ वह विश्राम व धर्माचरण किया करते थे। नैनागिरी की जैन कला का विकास भी 10-11वीं शती ईसवी का एक मंदिर यहाँ पर है। इस मंदिर का निर्माण 1109 संवत् में हुआ था। इसी मंदिर में 11वीं शताब्दी की 13 प्रतिमाएँ भी हैं।[4] नैनागिरी में कुल 53 मंदिर हैं जिनमें 38 मंदिर पहाड़ी पर 13 तलहटी में एवं 2 मंदिर पारस सरोवर में स्थित हैं। नैनागिरी क्षेत्र से अन्य प्राचीन जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। जो एक अस्थाई संग्रहालय में संग्रहीत हैं। नैनागिरी क्षेत्र ट्रस्ट कमेटी एवं श्री सुरेश जैन (पूर्व आई.ए.एस.) संग्रहालय निर्माण के लिये प्रयासरत हैं। संग्रहीत महत्वपूर्ण प्रतिमाओं का विवरण निम्नानुसार है –

प्रतिमा क्रमांक – 1

नैनागिरी से यह एक विलक्षण प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा में दो अलग–अलग आकृतियों का समान स्तर पर साथ–साथ मूर्तांकन किया गया है बाँयी प्रतिमा स्पष्टतः तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हैं। कुँचित केश एवं सिर पर सप्त सर्पफण हैं। सर्पफण के ऊपर त्रिछत्र हैं। त्रिछत्र के दोनों ओर गजराज कलश लिये अभिषेक कर रहें हैं पार्श्व में चामरधारी है दायीं ओर दूसरी आकृति त्रिभंग मुद्रा में एक पुरुष की आकृति है। जो छोटे से प्रभामंडल के साथ सिंहासन पर ही है। पुरूष आकृति की पहचान स्पष्ट नहीं है। पुरूष विभिन्न आभूषण जैसे कर्ण–कुंडल, कंठहार, कंगन, वनमाला, वाजूबंध एवं कटिसूत्र आदि से अलंकृत हैं। पुरूष आकृति की दोनों हथेलियों में क्या था ? स्पष्ट नहीं है, टूट गया है। ऐसी ही दो विलक्षण प्रतिमाएँ शिवपुरी जिले की खनियाँधाना तहसील के गुडार ग्राम के निकट गोलाकोट नामक स्थल से प्राप्त हुईं हैं। इन प्रतिमाओं को डॉ. नवनीत जैन ने सूर्यप्रभा नामक स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित किया है।[5] गोलाकोट एवं नैनागिरी से प्राप्त इन प्रतिमाओं में कुछ अंतर भी है। नवनीत जैन द्वारा प्रकाशित प्रतिमा में पार्श्वनाथ सिंहासन पर एवं पुरुष आकृति सादी पीठिका पर है। जबकि नैनागिरी की इस प्रतिमा में दोनों (पार्श्वनाथ एवं पुरुष आकृति) सिंहासन पर हैं। गोलाकोट की प्रतिमा में दोनों के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है जबकि नैनागिरी की प्रतिमा में केवल पार्श्वनाथ के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है। गोलाकोट की पुरुष आकृति दायें हाथ में कमंडल लिये है। नैनागिरी की पुरुष आकृति की हथेली टूटी है। नवनीत जैन ने गोलाकोट की प्रतिमा को मुनि पार्श्वनाथ एवं तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा माना है। नैनागिरी से प्राप्त यह प्रतिमा राजकुमार पार्श्व एवं तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है नैनागिरी की प्रतिमा में पुरुष आकृति के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह एवं कमंडलु नहीं है अतः वह मुनि अवस्था के पार्श्वनाथ नहीं है। लेकिन सिंहासनासीन एवं प्रभामंडल युक्त है अतः राजकुमार पार्श्वनाथ हो सकते है।

प्रतिमा क्रमांक – 2

इस प्रतिमा में देवी बालक को गोद में लिये खड़ी हैं। देवी के मुख पर ध्यान एवं आध्यात्मिक शांति है। नेत्र अर्द्धउन्मीलित हैं। देवी गले, बाजू, कलाई, एवं कमर पर सादा आभूषण धारण किए हैं। सिर पर पंच सर्पफण हैं बालक के कुंचित केश हैं। यह प्रतिमा 120 से.मी. ऊँची है। लगभग 160 से.मी. ऊँची ऐसी ही प्रतिमा पापेट (बंडा सागर) से प्राप्त सागर विश्वविद्यालय के संग्रहालय में भी

(क्र. 553) संग्रहीत है। उसे नागी माता का नाम दिया गया है। इस देवी की मैं पहचान नहीं कर सका। संभवतः यह देवी वामा देवी हैं जो बालक पार्श्वनाथ को गोद लिये हैं। बीना बाराह में बामा देवी को लेटी हुई प्रदर्शित किया गया है और उनके सिर पर भी सर्पफण हैं।[6] उन्हें गर्भावस्था की स्थिति में माना गया है।[7] बीना–बारहा की प्रतिमा पार्श्वनाथ के गर्भावस्था की है तो यह बाल्यावस्था की हो सकती है। नैनागिरी पार्श्वनाथ से संबंधित क्षेत्र रहा है। यहाँ पर अधिकांशतः उन्हीं की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। संभव है कि पार्श्वनाथ की सभी अवस्थाओं की प्रतिमाएँ यहाँ स्थापित कराई गई होगीं। यदि यह देवी वामादेवी नहीं है तो संभवतः यह देवी यक्षी अंबिका हो सकती हैं। अंबिका को सर्पफण के साथ भी प्रदर्शित किया जाता रहा है। कुम्भरिया एवं जालौर (राजस्थान) से सर्पफण युक्त अंबिका की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है।[8]

प्रतिमा क्रमांक – 3

यह प्रतिमा तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है। सप्तसर्पफणों से युक्त पार्श्वनाथ को पद्मासन मुद्रा में सिंहासनासीन दिखाया गया है। प्रतिमा त्रिछत्र एवं आभामंडल युक्त है। गजारूढ़ देव पुष्प वर्षा या अभिषेक कर रहें हैं, ऊपर गंधर्व हैं, पार्श्व में दांये धरणेन्द्र एवं बांई ओर सर्पफण युक्त पद्मावती है। यह प्रतिमा लगभग 4 फीट ऊँची है।

प्रतिमा क्रमांक – 4

यह प्रतिमा तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है। सप्तफणों से युक्त पद्मासन मुद्रा में ध्यानासीन हैं। सर्पफण के ऊपर त्रिछत्र है। पार्श्व में चामरधारी हैं। सिर के दोनों ओर मालाधार गंधर्व युग्म हैं। परिकर में सिर के ऊपर दोनों ओर तीन–तीन कायोत्सर्ग मुद्रा में जिन आकृतियाँ हैं।

प्रतिमा क्रमांक – 5

यह भव्य प्रतिमा भी श्री पार्श्वनाथ की है सिर पर कुँचित केश राशि है तीर्थंकर वृषभदेव की भाँति इनके कंधों पर भी केश लट हैं। पार्श्वनाथ सप्तफणों से युक्त पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ हैं। सर्पफणों के ऊपर त्रिछत्र है छत्र के दोनों ओर मालाधारी गंधर्व युग्म हैं। दोनों गंधर्वों के बांयीं ओर दो–दो जिन प्रतिमाएँ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। प्रतिमा के सिरोभाग में गज कलश लिये अभिषेक कर रहें हैं। प्रतिमा के पार्श्व में चामरधारी हैं। प्रतिमा की ऊँचाई 4 फीट है।

प्रतिमा क्रमांक – 6

प्रतिमा क्रमांक 5 की तरह लाक्षणिक विशेषताएँ लिये श्रीपार्श्वनाथ पद्मासनास्थ हैं। इस प्रतिमा का बायाँ ऊपरी भाग एवं पैर टूट गया है प्रतिमा का आकार 4 फीट के लगभग है।

प्रतिमा क्रमांक – 7

यह प्रतिमा भी क्रमांक 5 की तरह है इस प्रतिमा का आकार अपेक्षाकृत कम है लगभग 100 से.मी. ऊँचाई है।

प्रतिमा क्रमांक – 8

तीर्थंकर पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा क्षतिग्रस्त है। नीले ग्रेनाईट पत्थर पर बनी यह प्रतिमा लगभग 100 से.मी. ऊँची है। इसका परिकर टूट गया है। लेकिन शेष भाग से स्पष्ट होता है कि परिकर उत्कृष्ट कलाकृति युक्त होगा संपूर्ण परिकर में कायोत्सर्ग एवं पद्मासनास्थ जिन आकृतियाँ थीं। 10 जिन आकृतियाँ अभी भी शेष हैं प्रतिमा की ऊँचाई लगभग 110 से.मी. है।

प्रतिमा क्रमांक – 9

यह प्रतिमा गोमेध यक्ष एवं अम्बिका यक्षी की है यह देशी पाषाण एवं भूरे वर्ण की प्रतिमा है। द्विभुजी यक्ष–यक्षी ललितासन मुद्रा में आसीन है। यक्ष–यक्षी दोनों ही अलंकारों से सज्जित हैं। दोनों के किरीट अत्यंत कलात्मक हैं। दोनों के ऊपर आम्रमस्तवक हैं उसकी कला भी असाधारण हैं। गोमेध के दाहिने हाथ में श्रीफल एवं बायें हाथ में सनाल पद्म है। अम्बिका के दायें हाथ में श्रीफल एवं बायें हाथ में पुत्र प्रियंकर है। सिरो भाग में पद्मासनस्थ नेमिनाथ की प्रतिमा है। प्रतिमा की ऊँचाई लगभग 100 से.मी. है।

प्रतिमा क्रमांक – 10

यह प्रतिमा पहाड़ी के मंदिर के बाहर रखी है। यह भव्य प्रतिमा मुनिसुब्रतनाथ की है प्रतिमा की दोनों हथेलियाँ टूट गयीं है। पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ मुनिसुब्रत सिंहासन पर आसीन है। सिर पर कुँचित केश राशि एवं केश लट कंधों पर लटकी है। सिर के पीछे प्रभामंडल एवं ऊपर त्रिछत्र है। त्रिछत्र के दोनों ओर गजकलश अभिषेक कर रहें हैं। बांयी ओर का गज टूट गया है ऊपर से गंधर्व देव पुष्पवर्षा कर रहें हैं। प्रतिमा के पार्श्व में चामरधारी हैं। पादपीठ पर कछुओं का चिन्ह बना है प्रतिमा लगभग 120 से.मी. ऊँची है।

संदर्भ :–

1. निर्वाण कांड, गाथा -19
2. बलभद्र जैन, भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (तृतीय भाग), बम्बई, 1976, पृ. 162
3. मधूलिका बाजपेयी, म.प्र. में जैन धर्म का विकास, नई दिल्ली, 1989, पृ. 7
4. बलभद्र जैन : पूर्वोक्त, पृ. 162-163
5. नवनीत जैन, उत्तरी मध्यप्रदेश से विदित कुछ विलक्षण जैन प्रतिमाएँ, सूर्यप्रभा (स्मृतिग्रंथ), सं. - हम्पा नागराजैय्या, 2010, पृ. 107–108
6. मधूलिका बाजपेयी, मध्यप्रदेश में जैन धर्म का विकास, नईदिल्ली, 1989 पृ. 32
7. बलभद्र जैन : पूर्वोक्त, पृ. 174
8. एम.एन.पी. तिवारी, जैन प्रतिमा विज्ञान, बनारस, 1981, पृ.2

प्राप्त : 20.06.10

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा स्थापित

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 1992 में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार की स्थापना की गई है। इसके अन्तर्गत विगत 5 वर्षों में प्रकाशित/अप्रकाशित चयनित कृतियों के लेखक को रू. 25,000/- की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र से सम्मानित किया जाता है। हिन्दी / अंग्रेजी में लिखित कृति का चयन त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल द्वारा किया जाता है।

गत वर्षों में पुरस्कृत विद्वानों एवं उनकी कृतियों का विवरण निम्नवत् है –

1993 **संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर,** *'प्रतिष्ठा प्रदीप'*

1994 **प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन, जबलपुर,** ***'The Tao of Jaina Sciences'***

1995 **प्रो. भागचन्द्र जैन ëभास्करí, नागपुर,** *'जैन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व'*

1996 **डॉ. उदयचन्द्र जैन, उदयपुर**
'जैन धर्म स्वरूप विश्लेषण एवं पर्यावरण संरक्षण **(अप्रकाशित)** एवं
आचार्य गोपीलाल ëअमरí, दिल्ली
'Jaina Solution to the Pollution of Environment (Unpublished)í

1997 **अप्रदत्त**

1998 **प्रो. राधाचरण गुप्त, झांसी,** *'जैन गणित* **(अप्रकाशित)'**

1999 **डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर,** *'हिन्दी के जैन विलास काव्यों का उद्भव और विकास*
(वि.सं. 1520–1999 तक) (अप्रकाशित)'

2000 **डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन, रुद्रपुर,** ***'Jaina & Hindu Logic'***

2001 **डॉ. संगीता मेहता, इन्दौर**
'जैन संस्कृत साहित्य के आलोक में वर्द्धमान महावीर – एक अध्ययन **(अप्रकाशित)'**

2002 **डॉ. अनिलकुमार जैन, अहमदाबाद,** *'जीवन क्या है ?'*

2003 **प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद,** *समय के शिलालेख एवं चिन्तन प्रवाह*

2004 **डॉ. अनेकान्त कुमार जैन, दिल्ली,** *दार्शनिक समन्वय की दृष्टिः जैन नयवाद एवं*
डॉ. सुशीला सालगिया, इन्दौर
'जैन विषयवस्तु से सम्बद्ध आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में सामाजिक चेतना'

2005 **प्रो. महावीर राज गेलड़ा, जयपुर,** ***'Science in Jainism'***

2006 **प्रो. नलिन के. शास्त्री, दिल्ली,** *'नमामि का सम्पादन'*

2007 **अप्रदत्त**

2008 **डॉ. सविता जैन, उज्जैन,** *'जैन साहित्य लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन के क्षेत्र में समग्र योगदान'*

2009 **प्रो. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर,** *'प्राकृत भाषा, साहित्य के अध्ययन, अनुसंधान एवं प्रचार हेतु'*

2010 एवं 2011 के पुरस्कारों की घोषणा शीघ्र की जायेगी।

डॉ. अजित कासलीवाल	**प्रो. ए.ए. अब्बासी**	**डॉ. अनुपम जैन**
अध्यक्ष	मानद निदेशक	मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

31.03.11

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 49-58

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

गुप्तकालीन जैन मूर्तिकला*

■ अभिषेक जैन**

_सारांश_

4थी-6ठी श.ई. के मध्य भारत में राज करने वाले गुप्तवंशी शासक मूलतः ब्राह्मण थे किन्तु धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु थे। उनके शासन के पूर्व से ही उनके राज्य क्षेत्र में जैन धर्म समुन्नत था फलतः उनके राज्यकाल में भी वह संवर्द्धित होता रहा। प्रस्तुत आलेख में गुप्तकालीन मूर्तिकला का विवेचन किया गया।

कला, अभीष्ट दिव्यता की प्राप्ति का और उसके साथ एकाकार हो जाने का पवित्रतम साधन है। इसी कारण जैनों ने सदैव ललित कलाओं के विभिन्न रूपों और शैलियों को प्रोत्साहन दिया। कलाओं ने धर्म की कठोरता को मृदुल बनाने में सहायता की। जैन धर्म की आत्मा उसकी कला में स्पष्ट प्रतिबिम्बित हुई हैं। यह विविधता पूर्ण व वैभवशाली तो है ही, साथ ही आत्मोसर्ग, शांति एवं समत्व की भावनाओं को भी प्रोत्साहन देती है। एकांत एवं शांत क्षेत्रों में स्थित तीर्थस्थलों पर मूर्तिमान तीर्थंकर, प्रतिमाएँ अपनी-अपनी अनंत शांति, वीतरागता और एकाग्रता से भक्त/ तीर्थयात्री को परमात्म तत्व के समीप्य का अनुभव करा देती है।

प्रारंभ से ही जैन धर्म मूर्ति पूजा से सम्बद्ध रहा है। तीर्थंकर आध्यात्मिक आदर्श रहे हैं। उनके महान गुणों को मूर्तरूप देने तथा उनके गुणों को अपने में विकसित करने के लिए तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनाना आवश्यक था। जैन मूर्तियों में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ ही सर्वाधिक हैं। आरंभ में तीर्थंकर प्रतिमा निर्माण सादगी पूर्ण रहा, किन्तु कालांतर में कला के विकास के साथ तीर्थंकर के चारों ओर अनेक अलंकरण एवं उनके परिकरों आदि का अंकन किया जाने लगा। जैन मूर्तिकला में तीर्थंकरों की मूर्तियों के अतिरिक्त इन्द्र-इन्द्राणी आदि देवगण, तीर्थंकरों के अनुचर, यक्ष-यक्षिणी, नाग-नागिन, देवी सरस्वती, नवग्रह आदि की प्रतिमाएँ मिली है।

गुप्काल – चौथी शती ई. के प्रारंभ से छठी शती ई. के मध्य तक गुप्तों के शासन काल में संस्कृति एवं कला का सर्वपक्षीय विकास हुआ। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं स्कंदगुप्त जैसे पराक्रमी शासकों ने उत्तर भारत को एकसूत्र में बांधे रखा। शांतिपूर्ण वातावरण में व्यवसायों एवं देशव्यापी व्यापार का पुनरुत्थान हुआ और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई। गुप्त युग में भड़ौच, उज्जैनी, विदिशा, वाराणसी, पाटलिपुत्र, कोशाम्बी, मथुरा आदि व्यापारिक महत्व के प्रमुख नगर स्थल मार्ग से एक दूसरे से सम्बद्ध थे।

गुप्त शासक मुख्यतः ब्राह्मण धर्मावलम्बी होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति उदार थे। अभिलेखिय एवं साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस युग में जैन धर्म की अधिक उन्नति नहीं हुई। इस काल में जैनधर्म समुन्नत दशा में था। फाह्यान के यात्रा विवरण में भी जैन धर्म का अनुल्लेख है। रामगुप्त के अतिरिक्त अन्य किसी भी गुप्त शासक द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख नहीं मिलता है। गुप्त संवत् तिथियों वाली कुछ मूर्तियाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कंदगुप्त के समय की है।[1]

* Indian Ciceilisation Through Millenia (ICTM) - 2009, 27-28 फरवरी 2009, मेरठ

** शोध छात्र, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज, इंदौर, निवास : C/o श्री सुरेशचन्द्र जैन, डॉ. छाया शर्मा की गली, दुबे कॉलोनी, गुना (म.प्र.)

गुप्तकालीन जैन मूर्तिकला –

गुप्तकाल में जैन मूर्तियों की प्राप्ति का क्षेत्र विस्तृत हो गया। कुषाणकालीन कलावशेष जहाँ केवल मथुरा एवं चौसा से मिले हैं, वहीं गुप्तकाल में जैन मूर्तियाँ मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, पन्ना, उदयगिरि, कहौम, वाराणसी एवं अकोटा (गुजरात) में भी मिली हैं, इसके अलावा बेसनगर, बूढ़ी चंदेरी तथा देवगढ़ में भी गुप्तयुगीन मूर्तिकला के दर्शन होते है। जिनों के साथ लांछनों एवं यक्ष–यक्षी युगलों के निरूपण की परम्परा भी गुप्तयुग में ही प्रारंभ हुई। तीर्थंकर मूर्तियों में ऋषभनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर का निरूपण हुआ।[2] साथ ही अष्टग्रहों, गंधर्वों तथा नेमिनाथ के साथ वासुदेव, बलराम आदि की मूर्तियाँ भी प्राप्त होती है।[3] श्री वासुदेव उपाध्याय ने लिखा है 'गुप्त लेखों में ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस समय जैन धर्मावलम्बी भी पर्याप्त संख्या में थे। गुप्तकलाकारों ने जैन मूर्तियों को उसी सुंदरता के साथ तैयार किया है।[4]

इस काल की तीर्थंकर प्रतिमाओं में सामान्य विशेषताएँ तो वही हैं जो कुषाणकाल में विकसित थीं, किंतु उनके परिकरों में इस समय कुछ वैशिष्ट्य दिखाई देता है। प्रतिमाओं का उष्णीष कुछ अधिक सौंदर्य व घुंघरालेपन को लिए हुए पाया जाता है। प्रभावल में विशेष सजावट दिखाई देती है।[5] आसन में अलंकारिता और साजसज्जा, धर्मचक्र के आधार में अल्पता, परमेष्ठियों का चित्रण, गंधर्व युगल का अंकन नवग्रह तथा भामण्डल का प्रतिरूपण इस काल की मूर्तियों की विशेषता है। प्रतिमाओं की हथेली पर चक्र चिन्ह तथा पैरों के तलुओं में चक्र और त्रिरत्न उकेरा जाता था। छत्रत्रय और छत्रवली तथा लांछन का अभाव इस समय की मूर्तियों में स्पष्ट दिखाई देता है।[6]

राजगिर, कुमाराहार, वैशाली, चौसा, पहाड़पुर आदि से प्राप्त कांस्य, प्रस्तर तथा मृण्मूर्तियों को देखने से यह पता चलता है कि कलाकारों में सौंदर्य–बोध बढ़ चुका था। मूर्तियों के भावों में सरलता, सामंजस्य और आध्यात्मिकता का अंकन और अधिक स्पष्ट हो गया था। प्रतिमाओं पर कुछ चिन्ह भी बनने लगे थे।

मथुरा – गुप्त युग की 38 प्रतिमाओं का परिचय उक्त **मथुरा संग्रहालय** की सूची में कराया गया है। मथुरा से प्राप्त सामग्री के रूप में ध्यानस्थ मुद्रा में आसीन तीर्थंकरों की पच्चीस मूर्तियाँ, खडगासन मुद्रा में तीर्थंकरों की छह मूर्तियाँ, तीर्थकर मूर्तियों के तेईस वियुक्त सिर और कुछ खण्डित कृतियाँ मिलती है। आयागपटों और सरस्वती, बलभद्र, धरणेन्द्र जैसे जैन देवताओं या अन्य शासन देवों या शासन देवियों की पृथक मूर्तियों का तो स्पष्ट रूप से अभाव है। यहां तक की सर्वतोभद्र मूतियाँ तो लगभग न मिलने के समान है।[7] मथुरा में गुप्तकाल में भगवान पार्श्वनाथ की अपेक्षा भगवान ऋषभनाथ की अधिक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुई। ऋषभनाथ एवं पार्श्वनाथ की पहचान पहले ही की तरह लटकती जटाओं एवं सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर की गई है। मथुरा संग्रहालय में संरक्षित गुप्तकालीन जैन तीर्थंकर की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा के सिंहासन पर एक तरफ अपनी थैली सहित धनपति कुबेर और दूसरी तरफ एक बालक को अपनी बांयी जांघ पर बैठाये हुए मातृदेवी (अम्बिका) की आकृति उत्कीर्ण है। इनके ऊपर दोनों ओर चार–चार कमलासीन प्रतिमाएं दिखाई गई हैं, जो सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु इन आठ ग्रहों की प्रतीक मानी गयी है। इस अलंकरण के आधार पर यह प्रतिमा गुप्त युग से मध्य युग के बीच स्वीकार की जाती है, क्योंकि यह प्रतिमा शैली उस काल में अधिक विकसित हुई थी।[8]

इसी संग्रहालय में सुरक्षित संधिकाल की अन्य मूर्ति का उल्लेख डॉ. हीरालाल जैन ने किया

है, जिसमें सिंहासन पर पार्श्वनाथ सिंहों के मध्य मीन युगल दिखाया गया है। जिनके मुख खुले हुए हैं और उनसे सूत्र लटक रहा है। आगे चलकर मीन अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का चिन्ह पाया जाता है। अतः यह प्रतिमा अरनाथ की है।[9] एक खण्डित मूर्ति में दाहिनी ओर की वनमाला तथा सर्पफणों एवं हल से युक्त बलराम की मूर्ति के आधार पर जिन की पहचान नेमिनाथ से की गई है। एक दूसरी नेमि मूर्ति में भी बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित हैं।[10]

राजगिर – राजगिर (बिहार) के पर्वत पर ध्वस्त जैन मंदिरों के अवशेष मिले हैं , जिसमें लगभग चौथी शती ई. की चार जिन मूर्तियाँ मिली है। जिनमें एक **वैभार पहाड़ी** के ध्वस्त मंदिर से प्राप्त बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा है। काले पत्थर की इस प्रतिमा पर एक अस्पष्ट शिलालेख पाया गया है जिसमें गुप्त लिपि में (महाराजाधिराज) श्री चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमा दित्य) के नाम का उल्लेख है। इस तीर्थंकर प्रतिमा का शीर्ष टूट गया है अन्यथा यह प्रतिमा गुप्त कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। तीर्थंकर मूर्ति को सिंहासन पर ध्यानमुद्रा में अंकित किया गया है। सिंहासन के अंतिम सिरों पर उग्र सिंहों का अंकन किया गया है और एक अण्डाकार आरे युक्त चक्र की परिधि में एक राजपुरुष को खड़ा हुआ दिखाया गया है उसके दोनों ओर दो केशहीन तीर्थंकर मूतियाँ ध्यान मुद्रा में उत्कीर्ण हैं। एक अन्य राजगिर के तृतीय पर्वत पर एक फण युक्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा का सिंहासन एवं मुख निर्माण सर्वथा गुप्त कला के अनुरूप है।

इन मूर्तियों की शैलीगत विशेषताएँ उन शैलियों को प्रदर्शित करती हैं जो सारनाथ तथा देवगढ़ में साकार हुई और जिन्होंने पूर्वी –भारत में मूर्ति निर्माण गतिविधि को प्रभावित किया। राजगिर की जैन कला में कम से कम दो पृथक शैलीगत वर्ग स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं। पहले वर्ग का प्रतिनिधित्व वैभारगिरि के ध्वस्त मंदिर से प्राप्त नेमिनाथ की प्रतिमा और पूर्वी सोनभण्डार गुफा की छह अन्य तीर्थंकर शिल्पाकृतियाँ करती हैं। इनमें दूसरे वर्ग की अपेक्षा इनमें अधिक लालित्य है एवं शरीर रचना में अंगों का पारस्परिक संबंध अधिक अच्छी तरह दिखाया जा सका है। दूसरे वर्ग में तीन प्रतिमाएँ आती हैं जो ध्वस्त मंदिर की उसी कोठरी में नेमिनाथ की प्रतिमा के साथ ही प्राप्त हुई थी। इस वर्ग की प्रतिमाओं की विशेषताएं हैं – अपेक्षाकृत सुगठित धड़, स्तंभ-जैसे पैर और नाभि के नीचे सुस्पष्ट मांस-पिण्ड जिसके नीचे एक गहरी उत्कीर्ण रेखा है जो आकृति को स्पष्ट काटती है। यह बात गर्दन में भी देखने को मिलती है। दोनों ही वर्गों की तीर्थकर प्रतिमाओं के हाथों का अंकन भी इस दृष्टि से असंगत है कि सामने की भुजाएँ पार्श्व हाथों से जोड़ी गयी हैं, साथ ही दोनों वर्गों में स्तंभ जैसे पैर हैं तथा टांगों के अंकन में शीघ्रता से काम किया गया है। इस प्रकार ये प्रतिमाएं एक नयी शैली की सूचना देती हैं जो उस समय अपना स्थान बनाती जा रही थी। मिश्रित अंकन के अतिरिक्त इन प्रतिमाओं पर तीर्थकरों के वे परिचय चिन्ह भी अंकित हैं जो प्रतिमा विज्ञान में स्वीकार किए जा रहे थे तथा जिनसे विभिन्न तीर्थंकरों की पहचान करने में सहायता मिलती है।[11]

विदिशा – मध्यप्रदेश के विदिशा जिले में **'हेलियोडोरस'** के प्रसिद्ध अभिलेख वाला **'गरुड़–स्तम्भ'** जहाँ से प्राप्त हुआ, उस बेसनगर के केवल तीन किलोमीटर की दूरी पर, **'दुर्जनपुर'** गाँव में, खेती के लिये बुलडोजर से जमीन तोड़ते समय तीन मूर्तियां प्राप्त हुई थी। बुलडोजर के कठोर आघातों से इन तीनों मूर्तियों को विशेषकर उनके मुख भागों को तथा पार्श्व भागों को, भारी हानि पहुंची है। इन तीनों मूर्तियों पर उकेरे हुए तीनों अभिलेख बहुत संतोषजनक स्थिति में नहीं थे, परंतु गहन परीक्षण पर वे **गुप्त राजवंश** के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले अत्यधिक महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में सामने

आये है । [12]

इन उत्कीर्ण लेखों में **महाराजाधिराज रामगुप्त** का उल्लेख है । लेखों की लिपि प्रारंभिक गुप्तकालीन है। **श्री कृष्णदत्त बाजपेयी** का भी कहना है कि प्रतिमा लेख चौथी शती ई. के हैं, क्योंकि उनकी लिपि चन्द्रगुप्त द्वितीय के साँची और उदयगिरि के गुहालेखों से मिलती है । प्रतिमाओं की कला शैली के संबंध में उनके विचार है कि इन प्रतिमाओं में कुषाण कालीन तथा पाँचवी शती ई. की गुप्तकालीन मूर्ति कला के बीच के लक्षण दृष्टिगत होते है ।[13] लिपि, मूर्तियों की निर्माण शैली तथा **'महाराजाधिराज'** उपाधि के साथ रामगुप्त के नामोल्लेख से मूर्तियों का चौथी शती ई. के अंतिम चतुर्थांश में निर्मित होना प्रमाणित हुआ । दो पीठिका लेखों में तीर्थकरों का नाम चन्द्रप्रभ तथा तीसरे में पुष्पदंत दिया है ।[14]

अभिलेख पद्मासनस्थ ध्यानमुद्रा में तीर्थकर प्रतिमाओं के पादपीठ पर अंकित है । पादपीठों के दोनों ओर पंखधारी सिंह तथा मध्य में धर्मचक्र उत्कीर्ण है, जिसकी परिधि का अंकन सामने की ओर है । इनमें से दो प्रतिमाओं की मुखाकृतियाँ विखण्डित हो चुकी है, किंतु उनके पीछे भामण्डल तथा पार्श्व में दोनों ओर चमरधारी पुरुष खड़े हैं। इन भामण्डलों की बाहरी परिधि नखाकार किनारी से अलंकृत है तथा केंद्र में एक सुंदर खिला हुआ बहुदल कमल है । तीसरी मूर्ति का प्रभामण्डल अधिकांशतः नष्ट हो गया है और यह भी निश्चित नहीं है कि इस मूर्ति के पार्श्व में खड़े हुए सेवक अंकित थे या नहीं। किंतु तीर्थंकर की मुस्कानयुक्त मुखाकृति का एक अंश मात्र शेष है । नासिका, नेत्र और ललाट भाग खण्डित हो चुके है । शीर्ष के शेष भाग में कानों के लम्बे छिद्रयुक्त पिण्ड दिखाई देते है । इन तीनों प्रतिमाओं के वक्षस्थलों पर **'श्रीवत्स'** चिन्ह स्पष्टः परिलक्षित है । प्रत्येक तीर्थंकर का धड़ एक पूर्ण विकसित एवं सुस्पष्ट वक्ष स्थलयुक्त है जो गुप्तकालीन मूर्तिकला की अपनी विशेषता है । धड़ दोनों ओर निकली हुई कोहनी और भुजाओं की स्थिति विशेष प्रकार की है, जो समूची प्रतिमा को एक त्रिकोणाकार रूप प्रदान करती है, जिसके सिर त्रिकोण का शीर्षभाग और दोनों भुजाएँ त्रिकोण की दो भुजाओं का रूप ग्रहण करती प्रतीत होती है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में और कम से कम जैन ध्यानावस्थित प्रतिमाओं में पद्मासन मुद्रा का अंकन योगासन की एक आदर्श मुद्रा के रूप में मान्य रहा होगा । ये मूर्तियाँ मात्र जैन धर्म के इतिहास तथा मूर्तिकला की दृष्टि से ही नहीं अपितु गुप्तकालीन कला के इतिहास की दृष्टि से भी विशेष महत्वपूर्ण है ।[15]

विदिशा के निकट **उदयगिरि** की एक गुफा (गुफा-20) में गुप्त संवत् 106 (425-26 शती ई.) **कुमारगुप्त-प्रथम** का शासनकाल का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें **पार्श्वनाथ** की एक प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख है जो उनके सिर पर भयंकर नाग-फण के कारण भयमिश्रित पूज्य भाव को प्रेरित करती है । उक्त शिल्पांकित मूर्ति अब नष्टप्राय समझी जाती है । जो मूर्ति इस समय गुफा में स्थित है, वह बहुत परवर्ती काल की है । तथापि, इस शिलालेख से यह पर्याप्त स्पष्ट नहीं है कि पार्श्वनाथ की प्रतिमा इस गुफा में एक पृथक प्रतिमा थी, क्योंकि शिलालेख में **'अचीकरत्'** शब्द का उपयोग हुआ है । जिसका अर्थ है 'निर्माण करवाया गया' उत्कीर्ण करने या मूर्ति को प्रतिष्ठापित करने का भाव इसमें नहीं है । संभव है शिलालेख के आंशिक रूप से खंडित हो चुकी पार्श्वनाथ की उस वर्तमान प्रतिमा का संदर्भ हो जो गुफा की भित्ति पर उत्कीर्ण है ।[16]

विदिशा के निकट **बेसनगर** से भी तीर्थंकर की उत्तर गुप्तकालीन प्रतिमा प्राप्त हुई है । यह गुप्तकाल की उत्कृष्ट कलाकृति है । इसकी अवगाहना साढ़े छह फुट है । यह ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित है।[17]

तीर्थंकर की घुटनों तक लम्बी भुजाएँ हैं, गोलाकार चौड़े कंधे है। धड़ की संरचना से प्रतिमा का रचनाकाल लगभग छठी शती का उत्तरार्ध प्रतीत होता है।[18] इस तथ्य की पुष्टि प्रतिमा की विशिष्ट शिरोभूषा तथा सिर के दोनों ओर प्रभामण्डल के सम्मुख अंकित उड़ती हुई मालाधारी मानव आकृतियों से होती है। सिर के पीछे वृताकार प्रभामण्डल है जिसके केन्द्र में कमल है तथा उसकी परिधि का बाहरी किनारा गुलाब के छोटे-छोटे फूलों से अलंकृत है। पैरों के समीप दो सेवकों की आंकृतियां अर्धतिष्ठ मुद्रा में अंकित हैं। इनके सिर खण्डित हैं।[19]

पन्ना – मध्यप्रदेश के पन्ना जिले में गुप्तकालीन शिवमंदिर के लिये प्रसिद्ध **नचना** नामक स्थान के समीप **सीरा पहाड़ी** से गुप्तकालीन जैन प्रतिमाओं का एक समूह प्राप्त हुआ है, जिनमें से कुछ परवर्तीकाल की भी है। तीर्थंकर पद्मासन मुद्रा में अंकित हैं। उनके सिर के पीछे एक विस्तृत प्रभामण्डल है जिसके शीर्ष के निकट दोनों ओर उड़ते हुए गंधर्व युगल अंकित है। तीर्थंकर के पार्श्व में दोनों ओर चमर–धर यक्ष खड़े हुए हैं जो मुकुट पहने हैं और जिसके सामने का अलंकरण कुषाणों के विशेष शिरोभूषण के समान है जिससे इस प्रकार के मुकुटों का विकास हुआ है इन दोनों यक्षों के शरीर विन्यास का अंकन यक्षों और गंधर्वों के गले का आभूषण-एकावली, गंधर्वों का सजीव चित्रण तथा सौंडनी, एहोले आदि से उनकी समानता के कारण इस प्रतिमा का रचना काल लगभग चौथी शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा पाँचवी शताब्दी का पूर्वार्ध प्रतीत होता है जो गुप्त शासन का प्रारंभिक काल था। मुकुट पर इसी प्रकार के कला प्रतीक का अंकन उदयगिरि की एक गुफा के विख्यात वराह फलक पर अंकित नाग तथा दो या तीन खड़ी हुई छोटी आकृतियों के शिरोभूषणों में पाया गया है। तीर्थकरों के शीर्ष तथा शरीर के अंकन की मथुरा की लगभग चौथी शताब्दी की प्रतिमाओं से समानता भी तिथि की पुष्टि करती है। पादपीठ के मध्य में धर्मचक्र और उसके दोनों ओर दो छोटे–छोटे सिंह अंकित किए गए हैं। इसी स्थान से प्राप्त आगे वर्णित **ऋषभनाथ** की खडगासन प्रतिमा के पादपीठ की सादृश्यता के आधार पर कहा जा सकता है कि तीर्थंकर की वह पद्मासन मूर्ति **महावीर** की है जिस पर उनका परिचय चिन्ह **सिंह** अंकित है।[20]

सीरा पहाड़ी से प्राप्त **ऋषभनाथ** की खडगासन प्रतिमा के पादपीठ पर धर्मचक्र तथा उसके दोनों ओर दो भक्त अंकित हैं। पुनीत चक्र की परिधि के सामने की ओर से उसी प्रकार अंकित किया गया है, जैसे मथुरा की कुषाणकालीन प्रतिमाओं के पादपीठ पर। साथ ही, इस प्रतिमा के पादपीठ के दोनों सिरों पर विशिष्ट भारतीय वृषभ अंकित है जो ऋषभनाथ का परिचय चिन्ह है। परवर्ती जैन मूर्तियों में सिंह को पादपीठ के दोनों पार्श्वों में अंकित किया गया है जो सिंहासन का सूचक है, जबकि बौद्ध मूर्तियों के समान धर्मचक्र के पार्श्व में दोनों ओर दो हरिणों का अंकन है। किन्तु इस प्रतिमा में वृषभ चिन्ह तो इसी प्रकार दर्शाया गया है, किन्तु धर्मचक्र के पार्श्व में हरिण अंकित नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यह प्रतिमा उस प्रारंभिक काल की है, जब प्रतिमाओं में परिचय चिन्हों के अंकन का आरंभ ही हुआ था और जब तीर्थंकरों के परिचय हेतु चिन्हों की परिपाटी पूर्णरूपेण निर्धारित नहीं हो पायी थी। इस सादृश्यता के आधार पर तीर्थंकर प्रतिमा को **महावीर** की प्रतिमा माना जा सकता है।[21]

इन दोनों मूर्तियों की शैली शास्त्रीय गुप्त शैली के विशिष्ट कुषाण-प्रकारों से पलायन की सूचक है किन्तु तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा एक सुंदर कलाकृति है, जिसमें विशेष रूप से मुखाकृति का अंकन अत्यंत उत्कृष्टता के साथ किया गया है। इसी स्थान से उपलब्ध और इसी काल की, संभवतः इससे कुछ पहले की एक अन्य कार्योत्सर्ग प्रतिमा है **पार्श्वनाथ** की। वस्त्र, विन्यास रहित इस प्रतिमा में तीर्थंकर

की सम्पूर्ण आकृति के पीछे कुण्डली मारे हुए एक विशाल नाग को दर्शाया गया है, जिसने तीर्थंकर के शीर्ष पर अपने फण से एक छत्र बनाया हुआ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में नचना के ब्राह्मण धर्म केन्द्र के निकट ही सीरा पहाड़ी पर जैन धर्म का केन्द्र था। इस क्षेत्र में यदि पुनः उत्खनन किया जाये तो और अधिक जैन अवशेष, मात्र इसी स्थान से ही नहीं अपितु इसके समीपवर्ती क्षेत्रों से भी, उपलब्ध हो सकते है।

जोन विलियम्स द्वारा गुप्तकालीन दो सुंदर तीर्थंकर प्रतिमाओं को प्रकाश में लाया गया है, जो **जिला पुरातत्व संग्रहालय पन्ना** में सुरक्षित हैं। बताया जाता है कि ये प्रतिमाएँ **नचना** से उपलब्ध हुई हैं। तीर्थंकर को पादपीठ स्थित आसन पर पद्मासन मुद्रा में दर्शाया गया है। धर्मचक्र और उसके पार्श्व में दोनों किनारों के निकट सिंह अंकित है। धर्मचक्र के प्रत्येक छोर पर घुटनों के बल बैठा हुआ एक भक्त है, जो संभवतः तीर्थंकर का गणधर (प्रथम अनुयायी) या फिर कोई साधु है। दूसरी प्रतिमा में पादपीठ के मुखभाग पर चार भक्त अंकित हैं। प्रतिमा की मुखाकृति और सिर पूर्णरूपेण सुरक्षित हैं तथा कंधे और धड़ की संरचना में उत्कृष्ट गुप्तकाल की कला परम्परा का निर्वाह हुआ। जहां तक मुखाकृति की भावाभिव्यक्ति का संबंध है, इसे गुप्तकालीन श्रेष्ठ तीर्थंकर मूर्तियों की श्रेणी में रखा जा सकता है।[22]

कहौम – कहौम (देवरिया, उ.प्र.) के 461 ई. के एक स्तम्भ लेख में पाँच जिन मूर्तियों के स्थापित किए जाने का उल्लेख है। स्तम्भ की पाँच कायोत्सर्ग एवं दिगम्बर जिन मूर्तियों की पहचान **ऋषभनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी** से की गई है। सीतापुर (उ.प्र.) से भी एक जिन मूर्ति मिली है।[23]

वाराणसी– वाराणसी से मिली लगभग छठी शती ई. की एक ध्यानस्थ **महावीर** मूर्ति **भारत कला भवन**, वाराणसी से संग्रहित है। राजगिर की नेमि मूर्ति के समान ही इसमें भी धर्मचक्र के दोनों ओर महावीर के सिंह लांछन उत्कीर्ण हैं। वाराणसी से मिली और **राज्य संग्रहालय, लखनऊ** में सुरक्षित लगभग छठी-सातवीं शती ई. की एक **अजितनाथ** की मूर्ति में भी पीठिका पर गज लांछन की दो आकृतियाँ उत्कीर्ण है।[24]

अकोटा – अकोटा (बड़ौदा, गुजरात) से चार गुप्तकालीन कांस्य मूर्तियां मिली हैं। पांचवी-छठी शती ई. की इन श्वेताम्बर मूर्तियों में दो **ऋषभनाथ** की और दो **जीवन्तस्वामी महावीर** की हैं। सभी मूलनायक कायोत्सर्ग में खड़े हैं। एक ऋषभ मूर्ति में धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृग और पीठिका छोरों पर यक्ष–यक्षी निरुपित हैं। यक्ष–यक्षी के निरूपण का यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। द्विभुज यक्ष–यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।

इन मूर्तियों में एक **तीर्थंकर ऋषभनाथ** की धोती धारण किए हुए खडगासन कांस्य प्रतिमा है, पर दुर्भाग्य से यह आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त है तथा इसका पादपीठ नष्ट हो चुका है। फिर भी इसकी रचना सुंदर है तथा विशुद्ध गुप्तकालीन शैली में है, जिसकी तुलना **सुलतानगंज** से प्राप्त उत्कृष्टता पूर्वक ढाली हुई **बुद्ध** की ताम्र प्रतिमा से की जा सकती है। अत्यधिक क्षतिग्रस्त होने पर भी यह मूर्ति उत्तर भारत में प्राप्त सुंदरतम कांस्य प्रतिमाओं में से एक है। रजतमण्डित अर्धनिमीलित नेत्र तीर्थंकर की आनंदमय मुद्रा का संकेत देते है। निचला अधर, जो महापुरुष लक्षण के अनुसार अरुणाभ होना चाहिए, ताम्र मण्डित है तीन धारियों से युक्त अत्यधिक क्षतिग्रस्त ग्रीवा शंखाकार (कंबु-ग्रीव) है, जिसे गुप्तकाल में शरीर सौंदर्य का प्रतीक माना जाता था, सुघड़ता से रचित धड़ के विशाल तथा सुड़ौल स्कंध तथा क्षीण कटि (तनुवृत-मध्य) भी गुप्तशैली के अनुरूप है। स्कंधों तक लटकती केशराशि की सहायता

से प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के रूप में इसकी पहचान संभव हुई है ।[25]

अकोटा समूह की एक अन्य प्रतिमा, जो कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रथम **तीर्थंकर ऋषभनाथ** की है, विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । इसमें तीर्थकर आयताकार पादपीठ के मध्य में खड़े हैं। पादपीठ के दोनों सिरों पर दो कमलपुष्प अंकित हैं, जिन पर प्रत्येक में एक यक्ष तथा यक्षी की मूतियाँ हैं । पृष्ठभाग में अन्य तीर्थंकरों के लिए पट्टिका अथवा प्रभामण्डल के लिए आधार पेटिका या दोनों मूलतः उन छिद्रों में स्थित थे, जो पादपीठ के ऊपरी तल पर दृष्टिगोचर होते है । वृत में अंकित ऋषभनाथ की मूर्ति पृथक ढाली गयी है और केन्द्र में धर्मचक्र के ऊपर संयुक्त कर दी गयी । धर्मचक्र के दोनों ओर सुंदर हरिण है । ऋषभनाथ के रूप में तीर्थंकर की पहचान उनके स्कंधों पर लटकती हुई केशराशि से हुई है । इसमें संवारे हुए कुंचित केश और उष्णष दृष्टव्य हैं । बड़े नेत्र, विस्तृत ललाट, थोड़ी नुकीली नाक, सुडौल मुख तथा बौने धड़ पर छोटी ग्रीवा ऐसी विशेषताएँ हैं, जो प्रारंभ में गुजरात तथा पश्चिम भारत के अन्य स्थानों में प्रकट हुई हैं तीर्थंकर के शरीर पर पारदर्शी धोती है, जिसमें से जनेन्द्रिय का स्वरूप स्पष्ट झलकता है । धोती सुंदर रंगों में छापी गयी है, जिसमें समानांतर पंक्तियों के मध्य पुष्प अंकित हैं । पुष्पों का अंकन एक आद्य कला प्रतीक है । स्कंध चौड़े और सुदृढ़ हैं, कटि पतली, हाथ और टाँगें, सुनिर्मित हैं तथा वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह है । ये सभी विशिष्टताएँ उत्तर गुप्त युग, लगभग 540-50 शती ई. की बोधक है ।[26]

अकोटा समूह में उपलब्ध कुछ और कांस्य मूर्तियों को उनकी शैली तथा कहीं-कहीं उनके अभिलेखों की पुरालिपि के साक्ष्य के आधार पर इस युग के अंतिम भाग की माना जा सकता है । जैन कला तथा प्रतिमा विज्ञान के इतिहास में जीवंतस्वामी की दो कांस्य मूर्तियां (एक अभिलेखांकित पादपीठ सहित तथा दूसरी पादपीठ रहित) अत्यंत महत्वपूर्ण हैं ।

जीवंतस्वामी की पहली कांस्य प्रतिमा का पादपीठ नष्ट हो गया और जो आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त है । फिर भी, मुकुट सहित शीर्ष पूर्णतः सुरक्षित है । यह ऊँचा मुकुट मथुरा के कुषाणयुगीन विष्णु के बेलनाकार मुकट के समान निर्मित है । यह चौकोर है, जिसमें सामने की ओर चैत्य वातायन के समान अलंकरण तथा पार्श्व शीर्ष और पृष्ठभाग में कमल प्रतीक अंकित है । बालों की कुण्डलित लटें कंधों पर तीन पंक्तियों में गिरती हैं और सुंदर शैली में संवारे हुए केश पट्टे के नीचे दिखाई देते हैं, जो संभवतः मुकुट का ही भाग है । मूर्ति का निचला अधर ताम्र जड़ित है, जो अंधेरों के अरुणाभ होने का संकेत देता है । रजत मण्डित अर्धनिमीलित नयन ध्यान की गहनता का आभास देते हैं। उनके विशाल मस्तक पर वृताकार तिलक का चिन्ह है । आध्यात्मिक ध्यान एवं आनंद तथा पूर्ण यौवन की आभा से प्रदीप्त मुखमण्डल युक्त महावीर की यह प्रतिमा कदाचित अब तक प्राप्त मूर्तियों में श्रेष्ठतम है । मेखला (करधनी) से कसी हुई घुटनों से नीचे तक लटकी हुई है । मेखला के मध्य में बनी कुण्डलपाश से बांधा हुआ पर्यसत्क पार्श्व में नीचे की ओर लटक रहा है । धोती के मध्य भाग में एक अलंकृत लघुवस्त्र (पर्यसत्क) बँधा है, जिसके एक छोर की चुन्नटें नीचे की ओर लटक रही हैं तथा दूसरा छोर जो बायीं जाँघ को ढँकता है, विलक्षण अर्धवृत्ताकार चुन्नट में वल्ली जैसा प्रतीत होता है । इस प्रकार की धोती निःसंदेह पश्चिम भारतीय मूर्तिकला की आरंभिक शैली की विशेषता है । तीन धारियों युक्त ग्रीवा, चौड़े स्कंध, लम्बी भुजाएँ, साधारण रूप में उभरा वक्ष और क्षीण कटि में गुप्तकला की सभी विशषताएँ हैं ।[27]

अकोटा से प्राप्त जीवंतस्वामी की दूसरी प्रतिमा में उन्हें एक ऊँचे अभिलेखांकित पादपीठ पर खडगासन ध्यानमुद्रा में दिखाया गया है । पादपीठ का अभिलेख लगभग 550 ई. की लिपि में उत्कीर्ण

है कायोत्सर्ग मुद्रा में यह प्रतिमा मुकुट, कुण्डल, भुजबंध, कंगन और धोती से युक्त है। धोती के दो छोर मध्य में बँधे हुए लहरा रहे हैं। भुजबँध मणिमय स्वर्णमाल युक्त है, दायें कान में मोती का कुण्डल लटक रहा है और बायें में मकर कुण्डल प्रतीत होता है। त्रिकुट (त्रिकोणात्मक) मुकुट मध्य में बड़ी और दुहरे चूड़ामणि युक्त पर्त तथा दोनों ओर दो छोटी पर्तों से निर्मित है। ग्रीवा में मनोहर एकावली है।

नयनों में रंजित रजत, जो धूमिल पड़ चुकी है, विस्तृत स्कंधों युक्त देह, सुविकसित वक्षस्थल, कुछ–कुछ क्षीण कटि-प्रदेश, सुंदर मुख, किनारी पर मणिकाओं युक्त अण्डाकार प्रभामण्डल तथा अभिलेख की पुरालिपि के आधार पर हम इस कांस्य मूर्ति को लगभग छठी शती के मध्यकाल का मान सकते है।[28]

चौसा – बिहार में आरा के समीप चौसा नामक स्थान से 6 गुप्तकालीन जिन मूर्तियाँ मिली हैं, जो सम्प्रति **पटना संग्रहालय** में हैं।[29] ये सहज आकर्षण और अभिव्यक्ति की उपयुक्तता दर्शाती हैं। इनमें से दो आठवें **तीर्थंकर चन्द्रप्रभ** की हैं जैसा कि उनके परिचय चिन्ह (अर्धचंद्र) से स्पष्ट है, जो शिरश्चक्र के ऊपर मध्य में दिखाया गया है। अन्य दो प्रतिमाएँ प्रथम **तीर्थंकर ऋषभदेव** की हैं, जिनकी पहचान उनके कंधों तक आये बालों के कारण हो सकी है। शेष दो क्षीण हो जाने और इस कारण विवरणों का पता नहीं लग पाने से पहचानी नहीं जा सकी हैं। सभी तीर्थंकरों को पादपीठ पर ध्यान मुद्रा में आसीन अंकित किया गया है और सभी के वक्ष के मध्य में श्रीवत्स चिन्ह तथा पीछे की ओर शिरश्चक्र हैं। जिस मूर्ति का शिरश्चक्र अब लुप्त हो गया है, उसके पीछे की चूल से ज्ञात होता है कि वहाँ पहले शिरश्चक्र था।[30] तीर्थंकर ऋषभदेव की दो प्रतिमाओं में से एक खडगासन मुद्रा में है। **डॉ.बी.पी.सिंह** ने इस प्रतिमा को बिहार से प्राप्त पाल कालीन प्रतिमाओं की कोटि में रखा है, किंतु अंगों की संरचना, केशविन्यास एवं प्रभामण्डल की शोभा के आधार पर यह प्रतिमा गुप्तकालीन प्रतीत होती है।[31]

देवगढ़ – देवगढ़ में मूर्तियों का निर्माण प्रचुरता से हुआ। उनकी संख्या और विविधता से प्रतीत होता है कि यहाँ बहुत बड़ा मूर्ति निर्माण केन्द्र था, गुप्तकाल की अनेक मूर्तियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। मूर्तिकला की दृष्टि से देवगढ़ की अपनी स्वतंत्र शैली थी, जो गुप्तकाल में स्पष्टतर हो उठी।

देवगढ़ में अन्य मूर्तियों की अपेक्षा तीर्थंकरों की मूर्तियाँ कई गुना अधिक है। मुख्य रूप से आदिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर और शांतिनाथ की मूर्तियां है। बहुसंख्यक मूर्तियों पर लांछन नहीं मिलता है। प्रायः सभी शिलपट्टों पर उत्कीर्ण की गई है। द्वि-मूर्तिकायें, त्रिमूर्तिकायें, सर्वतोभाद्रिकायें और चतुर्विंशतिपट्ट प्रचुरता से उपलब्ध है। द्वारों पर भी तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन हुआ है। प्रायः सभी मूर्तियों के साथ भिन्न–भिन्न रूप से कुछ परम्पराओं का निर्वाह किया गया है। गुप्तकाल तक आते–आते देवगढ़ का कलाकार मूर्तियों में सजीवता और भावना का संचार करने में पूर्ण सफल हो जाता है। यद्यपि अलंकरण की सादगी बनी रही, यूनानी प्रभाव लुप्त होकर भारतीय आकृति पूर्ण रूप से सामने आ जाती है।

गुप्तों का कलाप्रेम और उत्कृष्ट रुचि उनके युग की प्रत्येक कृति से टपकती है। गुप्तकालीन कला का उत्कर्ष गुप्त-साम्राज्य के निःशेष हो जाने पर भी लगभग सौ वर्ष तक बना रहा। अर्थात् जहाँ तक कला का संबंध है, 320 ई. से 600 ई. तक गुप्तकाल गिना जाता है। यद्यपि गुप्त मूर्तिकला वाकाटक मूर्तिकला की ही परम्परा है, किंतु गुप्त इतने सुसंस्कृत थे और उनकी कलाभिरुचि इतनी सक्रिय थी कि उस काल की समूचि कला कृति पर चाहे वह गुप्त-साम्राज्य में रही हो चाहे वाकाटक-साम्राज्य में,

गुप्त साम्राज्य मानना पड़ता है और इसी कारण उस काल की, भारत ही नहीं द्वीपस्थ भारत तक की, मूर्तिकला गुप्तकला कही जाती है ।[32]

मथुरा, राजगिर, विदिशा, नचना (सीरा पहाड़ी), उदयगिरि, कहौम, वाराणसी, अकोटा, चौसा तथा देवगढ़ आदि स्थानों से प्राप्त तीर्थंकर मूर्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में तीर्थंकर प्रतिमाओं के कई निर्माण केन्द्र थे । इसी काल की अनेक जैन प्रतिमायें ग्वालियर के पास किले, बूढ़ी चंदेरी आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं ।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि गुप्तकाल में जैन मूर्तियों को उत्कीर्ण करने तथा उन्हें प्रतिष्ठापित करने का कार्य प्रचलित रहा ।

पटना संग्रहालय में संग्रहीत चौसा नामक स्थान से मिली तीर्थंकर ऋषभनाथ की गुप्तकालीन, कांस्यमूर्ति[33]

संदर्भ सूची :-

1. तिवारी, मारुतिनंदन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1981, पृ. 19,20
2. तिवारी, मारुतिनंदन प्रसाद, वही
3. जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, 'मथुरा', जैन कला एवं स्थापत्य (खण्ड-1), भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली, 1957, पृ. 107-117
4. गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ. 290
5. जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 1962, पृ. 346

6. भास्कर, भागचंद्र, जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास, नागपुर विद्यापीठ प्रकाशन, 1977, पृ. 343-44
7. जोशी, नीलकण्ठ, पुरुषोत्तम, वही, पृ. 112
8. जैन, हीरालाल, वही, पृ. 347
9. वही
10. तिवारी, मारुतिनंदन प्रसाद, वही, पृ. 50
11. मिश्र, रामनाथ, 'पूर्व भारत', जैन कला एवं स्थापत्य, (खण्ड-1), पृ. 128
12. जैन, नीरज, 'मगध नरेश महाराजाधिराज रामगुप्त', अर्हत् वचन, (इंदौर), वर्ष 20, अंक-1, पृ. 37-44
13. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, समाचार पत्र, 30 मार्च, 1969, पृ. 10
14. बाजपेयी, कृष्णदत्त, इण्डियन न्यूमस्मैटिक स्टडीज, पं. 169
15. शाह, उमाकांत, 'मध्य भारत', जैन कला एवं स्थापत्य (खण्ड-1), पृ. 133
16. बायजेयी, मधूलिका, मध्यप्रदेश में जैन धर्म का विकास, रामानंद विद्याभवन, नईदिल्ली, 1989, पृ. 123
17. वही, पृ. 123-124
18. शाह, उमाकांत, वही, पृ. 135
19. जैन, नीरज 'तुलसी संग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', अनेकांत, वीरसेवा मंदिर, नईदिल्ली, वर्ष 16, अंक-6, पृ. 279
20. पाठक, नरेश, मध्यप्रदेश का जैन शिल्प, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर, 2001, पृ. 250
21. वही
22. वही, पृ. 250-51
23. तिवारी, मारुतिनंदन प्रसाद, वही, पृ. 51
24. वही
25. शाह, उमाकांत, वही, पृ. 140
26. वही
27. वही, पृ. 143
28. वही, पृ. 143-44
29. Simith, V.A., A History of fine Art in India & Ceylon, PI-40A
30. मिश्र, रामनाथ, वही, पृ. 130-31
31. सिंह, वी.पी., भारतीय कला को बिहार की देन, पृ. 136
32. जैन, भागचंद्र, देवगढ़ की जैन कला, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नईदिल्ली, 1974, पृ. 68
33. अमलानन्द घोष, जैन कला एवं स्थापत्य

प्राप्तः 31.12.2009

वर्ष - 23, अंक - 1-2, जनवरी-जून 2011, 59-64

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

दंसणकहरयणकरंडु पाण्डुलिपि : एक परिचय

■ धर्मेन्द्र जैन *

Ikjk'k

प्राकृत भाषा का ही विकसित सरल रूप अपभ्रंश भाषा है। इसका साक्षात् सम्बन्ध हिन्दी भाषा से है तथा पश्चिमोत्तर भारत की अन्य भाषाओं का स्रोत भी यही अपभ्रंश भाषा मानी जाती है। 7वीं शताब्दी के बाद अपभ्रंश भाषा में विपुल साहित्य लिखा जाने लगा था। 10वीं से 17वीं शताब्दी तक तो साहित्य की अनेक विधाओं में अपभ्रंश भाषा के साहित्य का सृजन हुआ। पिछले 200 वर्षों में अपभ्रंश साहित्य के लेखन, पठन–पाठन की परम्परा लुप्तप्राय हो गई थी। तब डॉ. हर्मन जैकोबी, रिचर्ड पिशेल, पिटर्सन, डॉ. आल्सडॉर्फ एवं डॉ. गुणे, पी.एल. वैद्य, डॉ. हरिवल्लभ भायाणी, डॉ. हीरालाल जैन आदि देशीय एवं वैदेशिक विद्वानों ने वर्तमान में अपभ्रंश जगत् में अध्ययन/अनुसंधान/सम्पादन की क्रान्ति उत्पन्न की थी। इस क्रान्ति–सूर्य की कुछ किरणें विकीर्ण हुई किन्तु, आज भी प्राकृत–अपभ्रंश के कई प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन/अनुसन्धान/सम्पादन शेष है। यह कार्य अनेक शताब्दियों की अपेक्षा रखता है।

प्राकृत–अपभ्रंश की हजारों पाण्डुलिपियाँ अभी ग्रन्थ भण्डारों में हैं, जिनका सम्पादन/अनुवाद शेष है। सम्पादन/अनुवाद तो बहुत दूर की बात है, किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश पाण्डुलिपियों की अद्यावधि एक व्यवस्थित अनुक्रमणिका भी तैयार नहीं है। गुजरात और राजस्थान में प्राकृत–अपभ्रंश भाषा की सर्वाधिक पाण्डुलिपियाँ हैं। राजस्थान के जयपुर शहर में भी प्राकृत–अपभ्रंश की सैंकड़ों असम्पादित दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ विद्यमान हैं। पाण्डुलिपियों की खोज में एक दंसणकहरयणकरंडु नामक पाण्डुलिपि की अनेक प्रतियाँ जयपुर के अनेक भण्डारों में विद्यमान हैं। यह ग्रन्थ जैनपरम्परानुसार श्रावक की आचार संहिता का विस्तार से वर्णन करता है। आचार संहिता परक ग्रन्थ होने पर भी इसमें काव्यात्मक गुणवत्ता है। अतः इसे काव्य कोटि का ग्रन्थ कहा जा सकता है।

दंसणकहरयणकरंडु ग्रन्थ दर्शनशास्त्र, आचार शास्त्र एवं भारतीय जीवनमूल्यों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्राकृत भाषा का ही विकसित सरल रूप अपभ्रंश भाषा है। इसका साक्षात् संबंध हिन्दी भाषा से है तथा पश्चिमोत्तर भारत की अन्य भाषाओं का स्रोत भी यही अपभ्रंश भाषा मानी जाती है। 7वीं शताब्दी के बाद अपभ्रंश भाषा में विपुल साहित्य लिखा जाने लगा था। 10वीं से 17वीं शताब्दी तक तो अपभ्रंश साहित्य की अनेक विधाओं में

* विकास प्राधिकारी (प्राकृत) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जयपुर – परिसर, त्रिवेणी नगर, जयपुर–302018

अपभ्रंश भाषा का साहित्य सृजन हुआ। पिछले 200 वर्षों में अपभ्रंश साहित्य के लेखन, पठन–पाठन की परम्परा लुप्त प्रायः हो गई थी। तब डॉ. हर्मन जैकोबी, रिचर्ड पिशेल, पिटर्सन, डॉ. आल्सडॉर्फ एवं डॉ. गुणे, पी.एल. वैद्य, डॉ. हरिवल्लभ भायाणी, डॉ. हीरालाल जैन आदि देशीय एवं वैदेशिक विद्वानों ने वर्तमान में अपभ्रंश जगत् में अध्ययन/अनुसंधान/सम्पादन की क्रान्ति उत्पन्न की थी। इस क्रान्ति–सूर्य की कुछ किरणें विकीर्ण हुई किन्तु, आज भी प्राकृत–अपभ्रंश के कई प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन/अनुसन्धान/सम्पादन शेष है। यह कार्य अनेक शताब्दियों की अपेक्षा रखता है।

प्राकृत–अपभ्रंश की हजारों पाण्डुलिपियाँ अभी ग्रन्थ भण्डारों में हैं, जिनका सम्पादन/अनुवाद शेष है। सम्पादन/अनुवाद तो बहुत दूर की बात है, किन्तु प्राकृत अपभ्रंश पाण्डुलिपियों की अद्यावधि एक व्यवस्थित अनुक्रमणिका भी तैयार नहीं है। गुजरात और राजस्थान में प्राकृत–अपभ्रंश भाषा की सर्वाधिक पाण्डुलिपियाँ हैं। राजस्थान के जयपुर शहर में भी प्राकृत–अपभ्रंश की सैंकड़ों असम्पादित दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ विद्यमान हैं। पाण्डुलिपियों की खोज में एक दंसणकहरयणकरंडु नामक एक पाण्डुलिपि की अनेक प्रतियाँ जयपुर के अनेक भण्डारों में विद्यमान हैं। जिनका परिचय क्रमशः इस प्रकार हैं–

(1) आमेर शास्त्र–भण्डार, अपभ्रंश साहित्य–अकादमी, नारायण सिंह सर्किल, सवाईमानसिंह रोड, जयपुर, इसमें दंसणकहरयणकरंडु की 5 प्रतियाँ विद्यमान हैं। ये सभी प्रतियाँ अलग–अलग समय की है। 1. वेष्ठन सं. 878 – यह पाण्डुलिपि वि.सं. 1582 की है। इसकी प्रशस्ति में ऐसा उल्लेख है। 159 पत्रों वाली यह पाण्डुलिपि है और सुस्पष्ट अक्षरों वाली है, घंटियालीपुर स्थान में यह लिखी गई थी। 2. दूसरी पाण्डुलिपि भी आमेर शास्त्र भण्डार में है। इसका वेष्ठन सं. 879 है। लिपिकाल सं. 1589 है। पत्र संख्या 123 है। यह पाण्डुलिपि पूर्ण है। यह पूर्णतः भीग गई थी। इसका जीर्णोद्धार कराया गया है। राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन की पाण्डुलिपि संरक्षणशाला में चिपके पत्रों को अलग कराकर इस पाण्डुलिपि को सुरक्षित किया गया है। इसका लेखन स्थान चम्पावती है, ऐसा प्रशस्ति में उल्लेख है। 3. तीसरा वेष्ठन सं. 880 है। पत्र सं. .157 है। इस पाण्डुलिपि का लिपि काल संवत् 1563 है। इसके पत्र भी चिपक गये थे। राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन की संरक्षणशाला में इसका उपचार कराकर इसे सुरक्षित किया है। इसकी प्रशस्ति अपूर्ण हे। 4. वेष्ठन सं. 881 है। पत्र सं. 145 है। यह प्रति भी भीग गई थी। इसको राष्ट्रीय मिशन की पाण्डुलिपि संरक्षणशाला में उपचार कराकर सुरक्षित किया है। इस पाण्डुलिपि का लिपिकाल सं. 1614 है। यह भी स्पष्ट अक्षरों वाली है। 5. वेष्टन सं. 882 है। पत्र संख्या 189 है। लिपिकाल 1582 है। इसकी प्रशस्ति अपूर्ण है।

दिगम्बर जैन महासंघ, तेरापंथी बड़ा मन्दिर में भी दंसणकहरयणकरंडु नामक ग्रन्थ की 3 प्रतियाँ उपलब्ध हैं। प्रथम पाण्डुलिपि की वेष्टन संख्या 1490 है। क्रमांक 1691 है। इसमें 142 पत्र है। यह अत्यन्त जीर्ण और अस्पष्ट है। पत्र संख्या 1 फटा है। पत्र संख्या 137 नहीं है। दूसरी प्रति का वेष्टन संख्या 1491 है। इसका क्रमांक 1692 है। यह प्रति अपूर्ण तथा प्रशस्ति रहित है। इसमें पत्र संख्या 6 से 122 तक (117) है। प्रति अत्यन्त जीर्ण है। इसको राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन की संरक्षणशाला में उपचार कराकर सुरक्षित किया है। दिगम्बर जैन तेरापंथी मन्दिर में एक प्रति और है जिसका वेष्टन संख्या

2378 है किन्तु वह प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाई है। (2) नागौर के विशाल ग्रन्थ भण्डार में भी इस पाण्डुलिपि की 2 प्रतियाँ हैं। ऐसी सूचना राजस्थान विश्वविद्यालय, जैन अनुशीलन केन्द्र से प्रकाशित केटलॉग द्वारा प्राप्त हुई है[1,2]।

jpukdÙkk ,o jpukdky&

दंसणकहरयणकरंडु की रचना विक्रम सम्वत् 1123 (ईस्वी सन् 1066) में श्रीचंद कवि ने की थी। रचनाकर्ता श्रीचंद कवि जब श्रावक थे, तभी उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की थी। ग्रन्थकार के लिए दंसणकहरयणकरंडु की 16 संधि के बाद की प्रत्येक संधि के अन्त में पुष्पिका वाक्यों में मुनि उपाधि उल्लिखित है। इससे लगता है कि वे जीवन के उत्तरार्ध में त्याग, वैराग्य, संयम की मूर्तिरूप मुनि हो गये थे। 1 से 16 तक संधियों में कवि तथा पण्डित उपाधि लिखित है, इससे यह भी प्रतीत होता हैं कि श्रीचंद कवि इस संधि के लिखे जाने तक श्रावक अर्थात् सद्गृहस्थ ही थे। कवि और पण्डित उपाधि से सिद्ध होता है कि श्रीचंद कवि, साहित्य, दर्शन एवं अध्यात्म के उद्भट विद्वान् थे। मुनि उपाधि से उनके वैराग्य, त्याग एवं संयम का ज्ञान होता है[3]।

श्रीचंद कवि की अद्यावधि मात्र दो रचनाएँ प्राप्त हैं– 1. दंसणकहरयणकरंडु 2. कहाकोसु। कहाकोसु का सम्पादन तो हो चुका है किन्तु उसका हिन्दी अनुवाद अद्यावधि नहीं हुआ है।[4] दंसणकहरयणकरंडु का आज तक सम्पादन भी नहीं हुआ है। इसका प्रकाशन प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, स्वाध्याय मण्डल, जैननगर, पालडी, अहमदाबाद (गुजरात) से हुआ है।

दंसणकहरयणकरंडु नामक ग्रन्थ तत्कालीन कर्णनरेश के राज्य में श्रीमालपुर में लिखा गया था। कर्ण सोलंकी नरेश भीमदेव के प्रथम उत्तराधिकारी थे और उन्होंने ईस्वी सन् 1064 से 1094 तक राज्य किया था। श्रीमाल अपरनाम भीनमाल दक्षिण मारवाड़ की राजधानी थी। सोलंकी नरेश भीमदेव ने सन् 1060 में वहाँ के परमारवंशी राजा कृष्णराज को पराजित कर बन्दीगृह में डाल दिया था और भीनमाल पर अपना अधिकार जमा लिया था जो उनके उत्तराधिकारी राजा कर्ण तक स्थिर रहा प्रतीत होता है।

xUFk dk ifrik| fo"k;&

दंसणकहरयणकरंडु ग्रन्थ प्राकृत–अपभ्रंश साहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें सन्दर्भ श्लोकों के रूप में संस्कृत भी है। इसमें जैन परम्परा के अनुसार श्रावक की आचार–संहिता का विस्तार से वर्णन है। भारतीय परम्परा में गृहस्थ कैसा होना चाहिए, इसका उत्तर इस ग्रन्थ में सहजरूप से प्राप्त होता है। जैन परम्परा में सप्त परम स्थान माने गये हैं। उनमें सद्गृहस्थ को भी इन सप्त परमस्थानों में गिना है। उक्त ग्रन्थ सद्गृहस्थाचार/श्रावकाचार का विस्तार से वर्णन करता है।

दंसणकहरयणकरंडु ग्रन्थ में 21 सन्धियाँ हैं। प्रथम सन्धि में देव, गुरु और धर्म तथा गुणदोषों का वर्णन हैं। इसमें 39 कड़वक हैं। उत्तमक्षमादि दशधर्म, 22 परीषह, पंचाचार, 12 तप आदि का कथन किया है। पंचास्तिकाय और षड्द्रव्यका वर्णन भी इसी सन्धि में आया है। समस्त कर्मों के भेद–प्रभेद का कथन भी प्राप्त होता है। कवि ने नामकर्म की 42 प्रकृतियों का विस्तार से वर्णन किया है।

द्वितीय सन्धि में सुभौम चक्रवर्ती की उत्पत्ति और परशुराम के मरण का वर्णन किया गया है। तृतीय सन्धि में पद्मरथ राजा का उपसर्ग सहन, आकाशगमन, विद्यासाधन और अंजनचोरका निर्वाण–गमन वर्णित है। चतुर्थ सन्धि में अनन्तमतीकी कथा आया है। पंचम सन्धि में निर्विचिकित्सा गुण का वर्णन आया है। षष्ठ सन्धि में अमूढ़दृष्टि गुण का वर्णन है। सप्तम सन्धि में उपगूहन और स्थितिकरण के कथानक आये हैं। अष्टम सन्धि में वात्सल्यगुण की कथा वर्णित है। नवम सन्धि में प्रभावना अंग की कथा आयी है। दशम सन्धि में कौमुदी–यात्रा का वर्णन है। ग्यारहवीं सन्धि में उदितोदय सहित उपदेशदान वर्णित है। बारहवीं सन्धि में परिवारसहित उदितोदयका तपश्चरण–ग्रहण आया है। 13वीं सन्धि में सोमश्री की कथा वर्णित है। 16वीं सन्धि में काशीदेश, वाराणसी नगरी के वर्णन के पश्चात् भक्ति और नियमों का वर्णन है। 17वीं सन्धि में अनस्तमित करने वालों की कथा वर्णित है। 19वीं सन्धि में नरकगति के दुःखों का वर्णन किया गया है। 20वीं सन्धि में बिना जाने हुए फल–भक्षण के त्याग की कथा वर्णित है। 21वीं सन्धि में उदितोदय राजाओं की परिव्रज्या और उनका स्वर्गगमन आया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन के आठ अंग, व्रतनियम, रात्रिभोजनत्याग आदि के कथानक वर्णित है। कथाओं के द्वारा कवि ने धर्म–तत्त्व को हृदयंगम कराने का प्रयास किया है।[5]

इस प्रकार विशालकाय यह दंसणकहरयणकरंडु काव्य कोटि का ग्रन्थ है। इसमें रस, छन्द तथा अलंकारों का भूरिशः प्रयोग है। ग्रन्थ के नामानुसार विषय की प्रमुखता होने पर भी अन्यान्य अनेक विषयों का वर्णन प्रसंगोपात्त किया गया है।

mi;kfxrk ,o egÙo &

दंसणकहरयणकरंडु ग्रन्थ दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र एवं भारतीय जीवनमूल्यों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें जैनदर्शन मान्य दार्शनिक विचारों का वर्णन भी विस्तार से उपलब्ध होता है। कर्मसिद्धान्त का विवेचन भी उक्त ग्रन्थ का प्रमुख प्रतिपाद्य है। बीच–बीच में कथाओं का उल्लेख होने से जैन इतिहास की परम्परा का ज्ञान भी होता है। इसमें कथाओं के माध्यम से भारतीय जीवनमूल्यों का प्रतिपादन किया गया है। जैनपरम्परा में भक्ति का क्या महत्त्व है? भक्ति का क्या स्वरूप है? आदि तथ्य भी उपर्युक्त ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं। व्रत, नियम, त्याग, तपस्या का स्वरूप भी इस ग्रन्थ में विस्तार से मिलता है। सदाचार पालन मानव जीवन में अत्यावश्यक है, इसके तो कदम–कदम पर सूत्ररूप में उल्लेख मिलते हैं। सद्गृहस्थ को क्या सेवनीय है? तथा क्या असेवनीय है? इसका वर्णन भी प्रकृतग्रन्थ में है। जैन परम्परा मान्य दीक्षा (प्रव्रज्या) का स्वरूप, कथाओं के माध्यम से दंसणकहरयणकरंडु में प्रतिपादित किया गया है।

विषय वर्णन के साथ इस ग्रन्थ में साहित्यिक सम्पदा भी बहुशः उपलब्ध होती है। यह ग्रन्थ काव्यशास्त्रीय गुणों से अलंकृत है। अतः दंसणकहरयणकरंडु ग्रन्थ अनेक विद्याओं का कोशग्रन्थ बन गया है।

दंसणकहरयणकरंडु ग्रन्थ भारतीय वाङ्मय में दार्शनिक, नैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। साहित्यिक कोटि का ग्रन्थ होने से भी यह अत्यन्त उपयोगी है। इसके सम्पादन से भारतीय विद्या के अनेक पक्षों पर प्रकाश प्रसरित होगा। साथ ही साथ प्राकृत– अपभ्रंश भाषा के साहित्यिक संसार में एक नई उपलब्धि अर्जित होगी।

I UnHk&

1. साक्षात् उन–उन भण्डारों का अवलोकन एवं फोटोस्टेट तथा डिजिटल फोटा द्वारा पाण्डुलिपियों की प्राप्ति।
2. क्रमशः 7 पाण्डुलिपियाँ प्रथम तथा अन्तिम पृष्ट (दंसणकहरयणकरंडु दर्शनकथारत्नकरण्ड)।
3. शास्त्री नेमिचन्द्र, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृष्ठ– 134
4. उपाध्ये ए.एन., प्राकृतग्रन्थ परिषद्, स्वाध्याय मण्डल, जैननगर, पालड़ी, अहमदाबाद (गुजरात)
5. शास्त्री नेमिचन्द्र, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृष्ठ – 135

I 'kk/kukijkUr ikIr % 15-01-11

परिशिष्ट

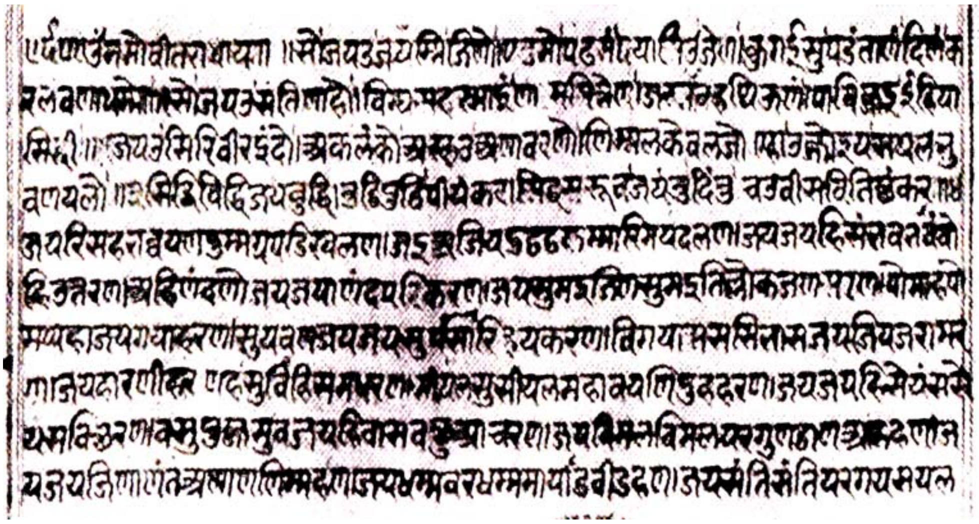

जैन विद्या संस्थान, जयपुर में संग्रहीत दंसणकहरयणकरंडु की पांडुलिपि (वे.सं.–878) का प्रथम पृष्ठ

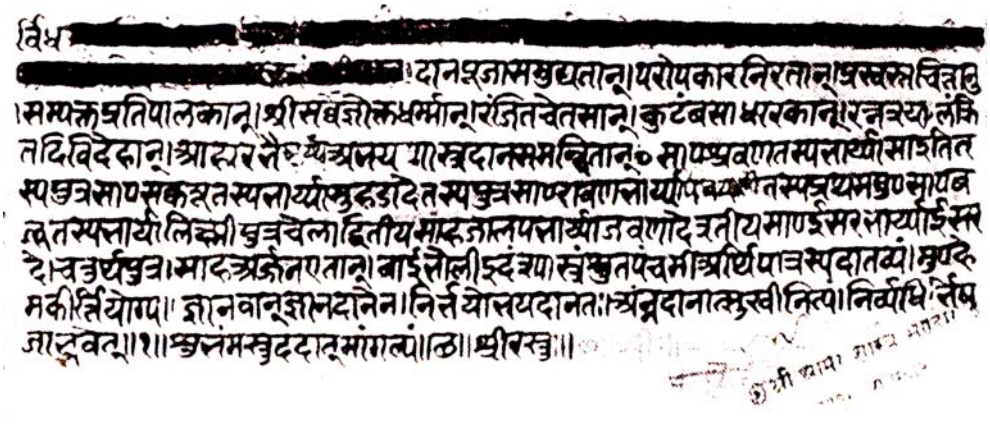

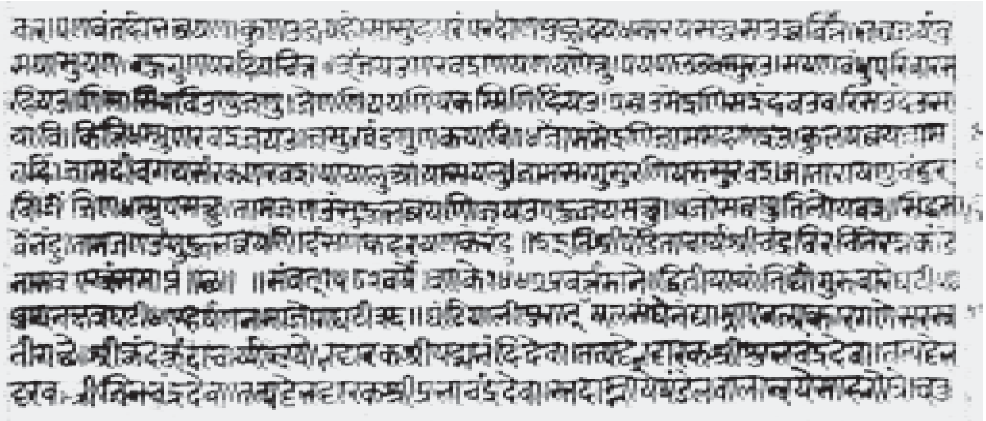

जैन विद्या संस्थान, जयपुर में संग्रहीत पांडुलिपि (वे.सं.–878) के 2 पृष्ठ

Vol. - 23, Issue 1-2, January - June 2011, 65-71

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

Spirituality and Health

■ Saroj Kothari*

ABSTRACT

Spirituality is considered as something abstract which is concerned with the higher aspects of life, eternal joy and bliss beyond the precinct of sense pleasures. The spiritual means to be in touch with some larger, deeper, richer whole that puts our present limited situation into a new perspective. It is to have a sense of 'something beyond' of 'something more' that confers added meaning and value on where we are now. Spiritual inspirations are considered as a rare blessing and it is believed that through the path of spiritualism a man attains perfection, immortality and ultimate fulfillment. It carries different meaning from one part of the globe to the other part. But every one seems to agree that the spiritual aspect of one's life is intimately related to the mental processes i.e. mind : and affects the psychic functions of an individual. It is identified with something super conscious, supernatural and towards divinity. Spirituality is the basic feeling of being connected with one's complete self, others and the entire universe.

Health is a state of Physical, Mental, Social and Spiritual well being and not just the absence of disease or infirmity, Health is perceived as a multidimensional process involving the well-being of the whole person in the context of the environment, Religious involvement and spirituality are associated with better health outcomes, including greater longevity, coping skills and health related quality of life and less anxiety.

Spirituality :

One of the most profound new insights of twentieth century science is that wholes can be greater than the sum of their parts. The whole contains a richness, a perspective, a dimensionality not possessed by the parts. Here science helps us to understand the spiritual. The 'Spiritual' means to be in touch with some larger, deeper, richer whole that puts our present limited situation into a new perspective. It is to have a sense of 'something beyond' or ' something more' that confers added meaning and value on where we are now. Danah Zohar and Ian marshal (2000) claim that 'SQ' is our ultimate intelligence. SQ (Spiritual

* Prof. and Head, Department of Psychology, Govt. M.L.B. P.G. Girls College, Fort, Indore - 452006

Quotient) is the necessary foundation for the effective functioning of both IQ (Intelligence Quotient) and EQ (Emotional Quotient). IQ and EQ cleverness and empathy, are not enough. So many clever, empathetic people feel there's an emptiness in the centre of their lives. Spirituality or spiritualism is considered as something abstract which is concerned with the higher aspects of life. It carries different meaning from one part of the globe to the other part. But every one seems to agree that the spiritual aspect of one's life is intimately related to the mental processes i.e. mind; and affects the psychic functions of an individual. The spiritualism in India and many eastern countries is recognized as a way of life with eternal joy and bliss beyond the precinct of sense pleasures. It is identified with something **super conscious,** supernatural and towards divinity. Spiritual inspirations are considered as a rare blessing and it is believed that through the path of spiritualism a man attains perfection, immortality and ultimate fulfillment. The spiritual experiences not only brings the knowledge of super consciousness but also solves the problem of unconscious mind. The spiritual joy is considered more super than the intellectual joy which, in turn, is higher than the sense pleasures; as it does not lead to frustration and disappointment but provide ultimate satisfaction(yatiswarananda, 1979). Classical Indian thought is a treasure grove of psychological thought waiting to be harvested. It is comprehensive and holistic. The Indian vedanta philosophy describes four approaches for making advance in the spiritual life namely Karma yoga, Raja Yoga, Bhakti Yoga and Jnana Yoga.

Webster's dictionary defines spirit as 'the animating or vital principle', that which gives life to the physical organism in contrast to its material elements, the breath of life. Human beings are essentially spiritual creatures because we are driven by a need to ask 'fundamental' or 'ultimate' questions. SQ allows human beings to be creative, to change the rules and to alter situations. It allows us to play with the boundaries, to play an' infinite game. (carse, 1986).

The major issue on people's minds today is meaning. SQ has no necessary connection to religion. For some people, SQ may find a mode of expression through formal religion, but being religious doesn't guarantee high SQ. Spiritually Intelligent people is not the same as being religious, neurologists have identified a 'God Spot' in our brain that triggers our need to search for meaning in life. People with spiritual intelligence have the ability to assess whether one course of action or life path is more meaningful than another and plan their future and solve problem that adds value to their lives. First in the early 1990s research was carried out by neurophysiologist Michael **Persinger** (1996) and in 1998, by neurologist V.S. Ramchandran at the university of California, on the existence of a 'God Spot' in the human brain. This built in spiritual centre is located among neural connections in the temporal lobe of the brain.

The science of spirituality is a study or human possibilities. It is a result of the search for an integral vision of life and consciousness. It strives to take a total look at nature, man and the future potential of humanity (Kaw, 2000).

Sharma's (1999) says that Himalayan gurus along the way give simple advice, such as, 'What lies behind you and what lies before you is nothing compared to what lies within you'.

Spiritual Dimensions of Health and wellness

Health is a state of Physical, Mental, Social and Spiritual well being and not just the absence of disease or infirmity. According to Bisht (1985), the need for a new definition of health as a state beyond the mere absence of disease has been recognized by health professionals in the last few decades. It has been increasingly realized that the maintenance of health encompasses in addition to treatment of physical diseases, coping mechanisms to deal with psychological stress, prevention through changes in the environment, promotion of healthy lifestyles and general well-being. Illness is now considered to be physiologically and chemically based, but socially and culturally conditioned. Health is perceived as a multidimensional process involving the well-being of the whole person in the context of the environment. The 'perfect' functioning approach to health conceptualizes health: biologically as a state in which every cell and every organ is functioning at optimum capacity and in perfect harmony with the rest of the body; Psychologically as a state in which the individual feels a sense of subjective well-being and of mastery over his environment ; and socially as a state in which the individuals capacities for participation in the social system are optimal. another milestone towards a new definition of health was created in 1978, when on the initiative of the Indian representatives on the executive board of WHO, it was proposed that the definition of health be enlarged to cover spiritual well-being in addition to the physical, mental and social well-being.

Modern culture is spiritually dumb, no only in the West but also, increasingly, in those Asian countries influenced by the West, By spiritually dumb mean we have lost our sense of fundamental values. Despite our material richness and technological expertise, our lives lack something fundamental. Collective SQ is low in modern society. We live in a spiritually dumb culture characterised by materialism, expediency, narrowed self centeredness, lack of meaning and dearth of commitment.

Some doctors and healthcare professionals, are starting to see disease differently. They regard it is a crying out of the body and its parts for attention to something in our lives which, if left unattended, will lead to irrevocable damage or lasting physical, emotional and or spiritual distress and even death, It may be our attitudes or life styles that are causing the problem, rather than

any chemical inbalances. In the words of doctors, patients, scientists and policy makers. who in June,1999 attended an international meeting in Britain to explore these ideas, much of the suffering consists of 'diseases of meaning'. The search for meaning is evident in so many aspects of our lives, What is my life all about? What does my job mean? This relationship? What does it mean that I am going to die some day? People living in earlier societies would not even have asked such questions. Their lives were culturally embedded in a set framework. They had living traditions, living gods, living communities, functioning moral codes, problems that had known boundaries and fixed goals. But in modern times we have lost what some philosophers call the **'taken for-granted ness'** of life, We are left with existential or spiritual problems and with the need to cultivate a kind of intelligence' spiritual intelligence' that can deal with them.

Effect of religious and spiritual beliefs and practices on health and wellness:

The Spiritualism is identified with something super conscious, super natural and towards divinity. Spiritual inspirations are considered as a rare blessing and it is believed that through the path of spiritualism a man attains perfection, immortality and ultimate fulfillment. Yogas had been a subject of great research. It is found that to attain super conscious state one is required to pass though various stages of yoga. Vahia 1973, Selvamurthy 1983 & De'Souza 1984 report that yoga has a positive influence in stress management and relief of anxiety and mental tension. Orme Johnson (1973) found that meditation stabilizes the autonomic nervous system and make a person withstand environmental stresses better. As per Bhamgara (1990), spiritual dimension of health pervades all other dimensions of health i.e. physical, mental and social. The Vipasana meditation may also help in deaddiction. Naidu and Pande (1988) presented an interim research report on non- attachment and health. The results indicated that those who were non-attached, though they experienced as many events as their attached counterparts, did not get as distressed by these events. Non-attached persons, compared to less non-attached subjects, perceived lesser degree of stress, exhibit fewer symptoms of strain and show a smaller correlation between stress and strain. To that extent this data supports the assertions of the various commentaries on the Gita regarding the health endowing capacity of non-attachment.

Along with psychical research are the recent investigations in the area of epidemiology of religion and clinical studies of the effect of religious and spiritual beliefs and practices on health and wellness. There are now many researchers actively engaged researching in this area.

Religion of one kind or another has existed in all societies; and it has had profound effects on the lives of those who practice it. prayer is central to all

religious practices. It is universal and ubiquitous, crossing cultural and geographical boundaries. According to a survey published in 1996 by Princeton Religion Research Center, 96% of US population believed in God or a supernormal power. There are several significant studies that explored the relationship between religiosity and a variety of health conditions. In about 150 studies most of the studies suggest less substance abuse and more successful rehabilitation among the more religious (Koenig, McCllough & Larson, 2001) Also numerous studies investigated the effect of religion on mental health, delinquency, depression, heart disease, immune system dysfunction, cancer and physical disability. Townsend, Kladder, Ayele and Mulligan (2002) assessed the impact of religion on health outcomes, The systematic and comprehensive review revealed that 'religious involvement and spirituality are associated with better health outcomes, including greater longevity, coping skills and health related quality of life and less anxiety'. McCllough eg al.,(2000) report that religious involvement has a strong positive influence on increased survival. As Koenig, Larson and Larson (2001) surmise, when people become physically ill, many rely heavily on religious beliefs and practices to relieve stress, retain a sense of control, and maintain hope and sense of meaning and purpose in life. It is suggested that religion (a) acts as a social support system, (b) reduces the sense of loss of control and helplessness, (c) provides a cognitive framework that reduces suffering and enhances self-esteem, (d) gives confidence that one, with the help of God, could influence the health condition, and (e) creates a mind set that enables the patient to relax and allow the body to heal itself. Again, the values engendered by religious involvement such as love, compassion, charity, benevolence and altruism may help to successfully cope with debilitating anxiety, stress and depression.

A number of studies provide positive evidence linking intercessory prayer with beneficial health outcomes. Intercessory prayer involves praying for other's benefit. Michael Miovic (2004) reported that the condition of brain tumor patient improved by intercessory prayer.

Randolph Byrd (1988) and Mueller, Plevak, Rummans (2001) found that a significant positive effect between intercessory prayer and recovery from coronary disease. They observed that addressing the spiritual needs of the patient may enhance recovery from illness.

There has been a great deal of scientific research on the effects of meditation on the states of mind and body. A number of studies consider meditation as a self-regulation strategy that has relevance for managing stress, hypertension and drug addiction (Goleman & Schwartz, 1976; Patel, 1993). Davidson, Goleman and Schwartz (1984) report results that showed reliable decrement in

trait anxiety across groups as a function of length of meditation'. John Astin (1997) reported the beneficial effects of meditation on stress reduction.

On the basis of research evidence it is clear that the religious involvement and spirituality are associated with better health outcomes and wellness.

REFERENCES

* Astin, J.A. (1997) Stress reduction through mindfulness meditaion: Effects on psychological symptomatology, sense of control, and spiritual experiences, Psychotherapy and Psychosomatics, 66, 97-106.
* Bhamgara, M.M. (1990) Spiritual dimension of health-the neglected dimension ' proceedings of intermational seminar on vipasana meditation and health, vipasana research institute, Dhammagiri, Igatpuri.'
* Bisht, D.B. (1985) The spiritual dimension of health. Delhi. Directorate general of Health Services, Government of India.
* Byrd, R.C. (1988) positive therapeutic effects of intercessory prayer in a coronary care unit population. Southern Medical Journal, 81, 826-829.
* Carse, James (1986) finite and infinite games, Ballantine Books, NewYork.
* Davidson, R.J. Goleman, D.J.&Schwartz, E. (1984) Attentional and affective concomitants of meditation : A cross-sectional study. In D.H. shapiro, Jr. & R.N. walsh (eds) meditation classical and contemporary perspectives (pp 227-231) New York: Aldine.
* Desouza (1984) Yoga meditation and Mysticism, Psychiatry in India, Bombay 21-52.
* Goleman, D. & Schwartz, G. (1976) meditation as an intervention in stress reactivity. Journal of counselling and clinical psychology, 44, 456-466.
* Kaw, M.K. (2000) Meditations Beyoud science, The Hindustan Times, 4th sept.
* Koenig, H.G. Larson, D.B. & Larson, S.S. (2001) Religion and coping with serious medical illness, Ann pharmacother, 35,352-359.
* Koenig, H.G., McCllough, M.& Larson, D.B. (2001) Handbook of religion and health : a century of reseach reviewed. New York : Oxford University Press.
* McCllough, M.E. Hoyt, W.T. Larson, D.B., Koenig, H.G., & Thoresen, C.E. (2000) Religious involvement and mortality : A meta-analytic review. Health Psychology, 19,211-222.
* Miovic, M (2004) Spirituality, human health and wellness : overview of the field. Paper presented at the conference, spirituality, human health and wellness, Institute for human science and service, 26th January, 2004, visakhapatnam.
* Mueller, P.S. Plevak, D.J., & Rummans, T.A. (2001) religious involvement, spirituality and medicine : Implications for clinical practice, mayo clinic proceedings, 76, 1189-91.
* Naidu, R.K. & Pande, N. (1988) On quantifying a spiritual concept : An interim reserch report about non-attachment and health, paper presented at national seminar on mental health and stress, Bhopal.
* Orme, Johnson, D.W. (1973) Autonomic Stability and transcendental mediation : Psychosomatic Medicine, 35, 341.
* Patel, C.H. (1993) Yoga based therapy, In P.M. Lehrer and R.L. Woolfolk (Eds.) principles and practice of stress management, 2nd ed. (pp. 89-138) New York, Guilford press.

* Persinger, M.A. (1996) Feelings of past lives as expected puturbations within the neurocognitive processes that generate the sense of self" contributions from limbic lability and vectorial hemisphericity, perceptual and motor skills, 83 (3pt.2) pp. 1107-21, December, 1996.
* Ramchandran, V.S. (1998) Phantoms in the Brain, Fourth Estate, London.
* Selvamurthy, M. (1983) physiological affects of yogis practice, NIMHANS Journal, 1, 77-80.
* Sharma, S. (1999) The monk who sold his Ferrari : A fable about fulfilling your dreams and reaching your destiny, Zen and the art of business managemen, The economic times, Mumbai,12 December, 1999.
* Townsend, M. Kladder,V. Ayele, H. & Mulligan, T. (2002) Systematic review of clinical trials examining the effects of religion on health. South Medical Journal, 95, (12) 1429-34.
* Vahia N.S. (1973) Further experience with therapy based on concepts of patanjali in the treatment of psychiatric disorders, Indian Journal of psychiatey, 13, 32.
* Yatiswarananada (1979) Meditation and spiritual life, Sh. Ramkrishna Ashram, Bangalore.
* Zohar Danah & Ian Marshal (2000) connecting with our spiritual intlligence, Bloomsbury, New York & London.

Received : 31.12.09

ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा स्थापित ज्ञानोदय फाउण्डेशन के सौजन्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000 /-की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जाता है।

अद्यतन पुरस्कृत विद्वानों एवं उनकी कृतियों का विवरण निम्नवत् है–

1998 डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, लखनऊ (उ.प्र.) (सम्प्रति स्वर्गस्थ)
'जैन धर्म, कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'

1999 प्रो. हम्पा नागराजैय्या, बैंगलोर (कर्नाटक)
'A History of the Rāṣtrakūtas of Malkhed and Jainism'

2000 डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर (म.प्र.) (सम्प्रति स्वर्गस्थ)
'जैन स्तूप परम्परा'

2001 श्री सदानन्द अग्रवाल, मेण्डा रोड़ (उड़ीसा)
'खारवेल'

2002 डॉ. जी. जवाहरलाल, तिरुपति (आ.प्र.)
'Jainism in Andhra (As depicted in inscriptions)'

2003 श्री रामजीत जैन एडवोकेट, ग्वालियर (म.प्र.)
'गिरनार माहात्म्य'

2004 प्रो. ए. इकम्बरानाथन, चेन्नई (तमिलनाडु)
'Jaina Iconography in Tamilnadu'

2005 श्री सूरजमल खासगीवाला, *भिवन्डी (महाराष्ट्र)*
'जैन इतिहास'

2006 ब्र. संदीप जैन 'सरल', *बीना*
'पांडुलिपि संरक्षण एवं संकलन कार्य हेतु'

वर्ष 2007, 2008 एवं 2009 हेतु कोई प्रविष्टि उपयुक्त नहीं पाई गई।

कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव (सामग्री सहित) प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी। साथ ही चयनित कृति के प्रस्तावक (कृति सहित प्रस्ताव भेजने वाले) को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। 2010 एवं 2011 के पुरस्कारों की चयन की प्रक्रिया जारी है।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/ समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोधकार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं शोधकों को सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

प्रो. ए.ए. अब्बासी	**सूरजमल बोबरा**	**डॉ. अनुपम जैन**
मानद निदेशक	पुरस्कार प्रायोजक	मानद सचिव

Vol. - 23, Issue 1-2, January - June 2011, 73-81

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

Jainism, Social Consciousness and Contemporary Issues

■ Rajjan Kumar*

Abstract

Modern societies are increasingly becoming socially unstable. There is no love between ethnic communities, religious groups, socially advanced and socially backward groups, husband and wife, parents and children. Groups and individuals are guided by narrow self-interests. Due to these modern social evils communities as well as families are affected. Peace, love, harmony, joy and mutual concerns are almost disappear or at the verge of vanishing. These are exciting times for Jainism to project them as a true religionist with having ample amount of social conscience. 'Jaina way of life was prone to ascetic' is gone. Today, it can provide a very positive, meaningful and practical solution for contemporary issues.

Introduction

Religion has always been a matter of discussion and dispute. To keep social consciousness is the key factor of every religion. Because the basic purpose of all religions to ensure peace and happiness for the individual and to establish harmony within human society. Jainism, one of the prominent religion of world by mistaken has been projected as an ascetic based religion, and is quite difficult to justify its relevancy and practicability for modern society.

Jainism, Tīrthaṃkaras & Social Consciousness

The word '*Tīrthaṁkara*' of Jainism is ancient and technical. There are 24 *Tīrthaṁkaras*. *Tīrthaṁkaras* of Jainas have the same place as God in other religion, however they are neither considered an incarnation of God nor regarded as a strange fellow in the divine creation. But *Tīrthaṁkaras* are emancipated soul and that is why considered like a God[1]. *Tīrthaṁkara* did excellent penance and religiously followed the path of self-control. With the utter purity of feeling he pursued with diligence and rigorous exercise known as *Tīrthaṁkara-nāma karma anubhāgabandha* and only then did he became a *Tīrthaṁkara*[2].

Tīrthaṁkaras are known as the establisher of *Dharm-tīrtha*, which is called as way way of religion. In Jainism concept of *tīrtha* may be explained as shore beyond the ocean.In Jainism non-violence (*ahiṁs*ā), truth (*satya*), non-stealing (*asteya*), chastity (*brahmcarya*) and non-possession (*aparigraha*) are *dharma* and fourfold collectivity (*caturvidhasaṁgha*)- *Śramaṇa-Śramaṇī* and *Śrāvaka-*

* Reader & Head, Department of Applied Philosophy, M.J.P. Rohilkhand University, Bareilly-243006 UP

Śrāvikā (male-female householders) who uphold these *dharmas* is known as *dharmatīrtha*[3].*Tīrthaṁkaras* having renounced the worldly attachment achieve spiritual excellence by engaging themselves in uninterrupted spiritual exercise, and thereby obtain unveiled omniscience and then having compassion on all the sufferings living being (*jīvas*) teach them *dharma* for their benefit.

In Jainism *mokṣamārga* itself is known as *tīrtha* and *Tīrthaṁkaras* are the torchbearer of this path. According to Jainism *satya* itself is *tīrtha; kṣamā* (foregiveness) and *indriyanigraha* (sense-control) are also *tīrtha*. Compassion for all livings, simplicity, donation, containment, chastity, loving speaking, knowledge, patience and good work- all these are acclaimed as *tīrtha*[4]. Further to Jainas *krodha* (anger), *māna* (prestige), *māyā* (delusion), *lobha* (greed) are considered passions they are nothing but ignorance and those who have completely discarded all of these passions are called *tīrtha.Caturvidha saṁgha* is the aspirant of *mokṣamārga* and itself is considered *tīrtha*; establisher of this *saṁgha* is called as *Tīrthaṁkara. Tīrthaṁkaras* obtain omniscience and then having compassion they start preaching dharma for all sufferers for their benefit. Samantabhadra admiring *Tīrthaṁkara Mahāvīra* and said- 'O Lord! Your's this *tīrtha* is *sarvodaya* or welfare to all[5].

Everything concerned with *Tīrthaṁkaras* is more or less in its first instance is look more spiritual rather than intend to obtain material welfare that is essential for societal growth in practical. Further it also looks like to foster self-centered attitude and would be charged that the concept of *Tīrthaṁkaras* of Jainism does not concerned with the society and it lacks of social element and cannot be relevant for modern society to maintain the sense of social consciousness for contemporary issues. Irrespective of this, it is very much established that all the *Tīrthaṁkaras* did lead a social life and did attain salvation at the end and the path shown by the *Tīrthaṁkaras* has enough potency to take pains to provide for the welfare of both the society and the individual and is always relevant irrespective of time and space.

Jainism, Ethics & Social Consciousness

Ethics is part and parcel of social life. Ethical elements of Jainism are quite humanistic and have much amount of social consciousness for contemporary issues. Inspite of that a charge is generally laid against the system of Jaina ethics to the effect that it fosters the self-centered attitude, and does not care of the society and therefore social element in Jaina ethics is not strong[6]. It is true that the main aim of Jainism is to attain freedom from the transmigration of soul and the whole Jaina ethics has been based on this foundation. All rules of conduct are so designed as to secure the aim as early as possible. As there is no outside agency to help the individual in his efforts to secure salvation, it is natural that

more importance was given to the individual but this does not mean that ethics was confined to individual alone. On the contrary, the ethical code was evolved for the whole society[7].

Jaina ethics took pains to provide for the welfare of both the society and the individual. It recognized the need for taking care of the society, and also aspired to bring the highest conceivable form of good within the individual reach[8].The social aspect of individual's life was never ignored. An individual was never conceived as separated from the society and social life. He was enjoined to achieve his goal while leading the worldly life, which necessarily involves relations with other members of the society. All the *Tīrthaṃkaras*, whom the Jainas adorned, did lead a social life and did attain salvation at the end. It is very much cleared for Jainas that social life was never considered as an impediment to one's spiritual progress if necessary precautions are taken.

Vows are the special feature of Jaina ethics and are separate for monks and householders. Monks of course are the symbol of spirituality but householders are not like that especially for explaining the social consciousness. Householders are lay votary and the numbers of vows of householders are twelve- 5 *aṇuvṛatas (ahiṃsā, satya, asteya, brahmcarya* and *aparigraha; 4sikṣāvṛata (sāmāyiks, proṣadhopavāsa, upabhogapribhogaparimāṇa* and *atithisaṃvibhāga)* and *3 guṇavṛatas (digvṛata, deśavṛata* and *anarthadaṇda vṛata). Aṇuvṛatas* are the basic vows and the rest other seven *vratas* collectively called as supplementary vows or *śīlavṛatas. Sikṣāvṛatas* are disciplinary vows, because they are preparatory for the discipline of ascetic. *Guṇavṛatas* are multiplicative and they raise the value of the five main vows. These vows play a good part in the life of a single Jaina as well as that of the whole community.

Jaina ethical rules are meant for men of all positions- for kings, warriors, traders, artisans, agriculturists, and indeed for men and women in every walk of life. Do your duty and do it as humanely as you can- this, in brief, is the primary principle of Jainism[9].It is evident that social element in Jaina ethics is not neglected.. Further, Jaina ethics includes the negative as well as positive rules of conduct. These prescribed rules of conduct limited for practicing within the members of Jaina community. Jaina ethics embraces not only followers of Jainism but in a true sense all living beings. It is obvious that Jaina ethics tries to regulate the mutual relations of human beings and for that purpose vows and other activities are laid down. Among them the five main vows are more important from the point of social relations. Jaina ethics solves the individual problem of attaining spiritual merit and at the same time shows the way of solving all outstanding social and world problems[10].

Religion is the greatest of all means for the establishing order and bringing peace in the world. It sums up the moral attitude, the peace inducing aspect, found in different religions, irrespective of place or time of their origin. It also signifies an aspect of unity, which is essential virtue of mankind. We know all religious, legal, political and economic theories are solely designed to save humanity as a whole. Inspite of that today many of people are concerned about the future of religion[11]. This happens with having requisite reasoning and logics. With the down of modernism and its critical questioning of everything, traditional religions become less and less appealing. Truly "our age has largely ceased to understand the meaning of religion"[12] Accepting of traditional religious beliefs was seen as succumbing to blind faith, which would lead to fundamentalism, and this in turn would generate religious intolerance and even religious terrorism. This is actually happening in many parts of the world today.

To Jainas blind faith is the principal cause of fanaticism and intolerance. It results from passionate attachment and hence uncritical outlook. Indeed, in Jaina literature, blind faith (*Darśanamoha/driṣṭirāga*) has been enumerated as one type of passionate attachment (*mūrcchā*). Passionate attachment is caused by delusion. It results in perverse attitude and karmic bondage. Blind faith leads one to inculcate the attitude of strong bias toward one's own religion and intolerance of other religions. The difference in the religious ideologies should be critically evaluated through the faculty of reasoning and is considered as *sāmyak darśana* (right/rational perception), one of the three jewels of Jainism, which is commonly referred to, as right faith is not blind faith. It is accompanied by rational knowledge, knowledge acquired through critical reasoning. According to Jaina thinkers, reason and faith are contemporary and there is no contention between them. They hold that religious codes and rituals should be critically analyzed.

If one maintains that religion is solely based on faith and there is no place for reason in it, then e will invariably develop an outlook that only his prophet, religion and scripture are true and others' religions, prophets and scriptures are false. He will also believe that his prophet is the only savior of mankind; his mode of worship is the only way of experiencing the bliss and the laws of his scripture are the only right ones. Thus he remains incompetent in making a critical estimate of his religious prescriptions. One, who maintains that reason plays an important role in the religious life, will critically evaluate the pros and cons of religious prescriptions, rituals and dogmas. An 'attached' or biased person believes in the dictum 'mine is true' while the 'detached' or unbiased person believes in the dictum 'truth is mine'.[13]

Jaina thinkers hold the view that reality is complex. It has many facets, various attributes and various modes. It can be viewed and understood from different angles and thus various judgments may be made about it. Even two contradictory statements about an object may hold true. Since we have finite capability, we can know or experience only a few facets of reality at a time. We cannot grasp the reality in its totality. We can have only a partial and relative view of reality. On the basis of partial and relative view of reality, how can we claim the right to discard the view of our opponents as totally false? Dogmatism and fanaticism are the born children of absolutism. Non-absolutism of Jainas prevents the individual from being dogmatic and one-sided approach. In the *Sūtrakṛtānga* it is stated that those who praise their own faith, dispraise their opponents, and possess malice against them will remain confined to the cycle of birth and death[14].

In the history of world religion Jainism has had been considered the most tolerate, amenable and regardful of other faiths and ideologies. This is very important to discard the present trend of religious terrorism. We must believe in the unity of all religions, but unity, according to us, does not imply omnivorous unity in which all religions lose their entity and identity. We should believe in the unity in which all religions will join with each other to form an organic whole without losing their own independent existence. In other words, we should believe in a harmonious coexistence or a liberal synthesis in which all components maintain their intrinsic features and work for the common goal of peace of mankind and, Jainas very much hold the same sense of social consciousness.

Jainism, Social Engineering & Social Consciousness

In any society individuals get different kinds of status and honors and accordingly it originate different kinds of strata, and this is called social stratification. Those who always and continuously attain honor and status become symbol of prestige group, and it may be ascribed and achieved. Caste (*jāti*) and class (*varṇa*) are the two principal components of social stratification. Caste system is an important social institution, which is deeply concerned with religion. Caste system is a kind of hierarchy, which may be hereditary, endogamous, and groups of occupation where social status of different caste of course is fixed but among the castes there is clear-cut differences based on their religion[15]. Social engineering is a modular concept of social stratification where each and every component of a society get due importance irrespective of caste and class.

The most significant contribution of Jainism in the social field has had been the establishment of social equality among the four classes (*brāhamaṇa, kṣatriya, vaiśya* and *śūdra*), prevalent in the society. They were (is) said to have

come from the mouth, arms, thighs and the feet of the Creator Brahmā. The particular limbs ascribed as the origins of these divisions and orders in which they are mentioned probably indicate their status in the society. The fact that indicate the four classes are described as of divine origin and could be taken as a sufficient indication that they were of long duration and very well defined. Not only the four classes were distinct and separate, but the spirit of rivalry among themselves also affected them[16].

Even in the early *Ṛgvedic* times the *Brahmanical* profession had begun to set up claims of superiority or sacredness for itself and accordingly we find that different rules were prescribed for different classes. The *kṣatriyas* were assigned a position next to *Brāhmin* and *Śūdras* were comparatively neglected. Thus the Vedic society was completely class ridden in the sense that unusual importance was given to the *Brāhmin* class to the detriment of other classes. Against these glaring practices based on the acceptance of social inequality and on the wide observance of social discrimination, *Tīrthaṁkaras* and other Jaina *Ācāryas* launched their attacks. They recognized the division of society into four classes but based them on the nature of activities carried out by the people and not on the basis of their birth[17].

They gave full freedom to one and all, including downtrodden and depressed, to observe common religious practices prescribed for all and admitted them into their religious order. In this order those who followed (follows) religion as householders, were (are) known as *Śrāvakas* and *Śrāvikās* and those who observed the religion fully by leaving their houses and becoming ascetics were (are) called as *Śramaṇa* (Muni) and *Śramaṇī (Āryikā).* The principle of social equality among the classes has been firmly established by Jainas. This has been a very wholesome effect on the conditions of the *Śūdras (dalitas*), which were very deplorable. Formerly, the *Dalitas* were completely disregarded in religious matters and several binding restrictions were placed on their movements and ways of living. Teachings of Jaina masters proved a great solace to the *Dalitas* as the practices of social discriminations against them were (are) fully banned. This resulted in the rise of social status of the downtrodden people[18].

Jainism, Women Empowerment & Social Consciousness

Another contribution of distinctive nature attempted by Jaina thinkers in enhancing the social consciousness in the direction of raising the status of women. Recently women empowerment is catching word, which deeply involved not only raising the status of women but also provide them equal status in male dominating society in every walk of life viz. religious, social, political, economic, legal and many more. Perhaps this was not so easy in ancient times. Like *Śūdras*, women were debarred from the right of initiation and investment with the sacred

thread. They were considered to have no business with the sacred religious texts. Almost in all patriarchal societies the birth of a girl was an unwelcome event and this gave rise to practices like the female infanticide and neglect of female children. To political status, women were never thought fit for any other sphere than the household life and the intricate questions of administration and government were held to be beyond their comprehension[19]. In Hindu law books, son has been treated great favor than female descendant.

Irrespective of this, Jainas have had respect for woman and all attempts are made to equate them with male. Ofcourse we find so many instances of Jainas that directly disgrace women but we also find the examples of superiority of women. In Jaina church complete freedom was given to enter the ascetic order. Female sex was no bar to the practice of asceticism. We have four categories of religious practicers- *sādhus, sādhvīs, śrāvakās, and śrāvikas*. Equality of opportunity accorded to women in the religious sphere was manifest in several social spheres of action. They enjoined many legal right of inheritance and possession of property and had ample opportunity of managing their domestic business independently[20]. So far concern about political status of women in Jaina texts we find that woman appeared in the public without any restriction and held important position in the political sphere[21]. Under the Jaina Law not only men but women also have always had their maintenance and property rights[22]. With these ideas about women we can inculcate the Jaina concept regarding the women empowerment.

Jainism, Professional Ethics & Social Consciousness

Profession, progress and prosperity have distinct meaning in a newly synthetic man made world. Attitude to life leads consumerism based on maximum utilization and utmost consumption of available resources- material, physical, geo-biological, etc. It is a state of temperament of temperament and mental inclination. It is based on man's having impulses. Have more and more everything; money, fun, material pleasure, luxry and comforts. Consumption of things and commodities is not done simply to satisfy the need; it can be said to be the culture of late capitalism. It is a beginning of neurotic restlessness for new things, new fashions, and new images. This is a specific form of insecurity and has been increasing more and more because it separates man from history, from all culture linkages/ memories. There is nothing rely on except immediate instant achievement. This is depthlessness[23].

Due to this consumerist approach today, in the field of business and trading humanitarian approach has been disappearing. They have low opinion as ruthless, heartless, crass, deceitful, etc. But it may also reflect that the ethics of business or profession are and should be minimal. Physical force, outright fraud, theft,

breach of contract, and perhaps, violations of the law are and should be prohibited. Otherwise anything goes. In short, many familiar moral standards may be completely ignored; and principles central to our moral and religious tradition may be violated without a second thought. The strong may bully the weak, the cunning may exploit the innocence and goodwill of their trusting neighbors, the environment may be fouled and the fabulously wealthy may further enrich them at the expense of the desperately poor. More generally, people may treat others only as means in various ways and everyone is entitled to cause great misery in others for the sake of small personal gain[24].

Business is the prime resource of earnings of Jainas. Besides business and trading Jainas have taken to professions also. They are found mainly in legal, engineering, medical and teaching professions. Nowadays many Jainas are holding important positions in various departments of the Governments. In the consumerist society Jainas ofcourse have adopt ed and accepted many new and non-traditional life style but at the same time they think and try to follow their moral ideal and professional code as prescribed. The very first rule of the thirty-five rules of conduct for laymen lays down that a person should follow some kind of business or profession in a just and honest way for the maintenance of his family. The only restriction he has to observe in the choice of his avocation is that it must not be of an ignoble or degrading nature in the sense that it should not involve wholesale destruction of life[25].

The prohibited businesses are those of butchers, fishermen, brewers, wine-merchants, gun-makers and the like[26]. The Jaina scriptures mention fifteen varieties of business enterprises[27], which involve great enjury to living beings, and hence the Jaina laymen are required to avoid them. They are such as those involving great use of fire, cutting of trees or plants, castrating bullocks, clearing of jungles by employment of fire, drying up lakes, rivers, etc[28].

References :

1. Jaini, J.L., *Outlines of Jainism*, pp.4-5; Glasenapp, *Jainism*, pp.218-226
2. *Sacred Book of Jainas*, Vol-IIIpp5, 17, 158, 159
3. *Bhagavatīsūtra*, 2.8.682; *Sthānāngasūtra*, 4.3
4. Satyam tīrthah kṣama tīrtham——dānam…santosa…brahmacaryam….ca priyavadita!! *Sabdakalpdruma*- tīrtha, p.626
5. Sarvapāda…..sarvodayam…tirthamidam…quoted from *Mahavira ka Sarvodaya Tīrtha*, p.12
6. Latthe, A.B., *An Introduction to Jainism,* pp.65-69; Jain C.R., *Jaina Culture*, p.28; .
7. Sanghavi,Sukhlal., *Jaina Saṃskriti kā Hṛdaya*, p.15; .
8. Jain C.R., *Jaina Culture*, p.5

9. Smith, V.A., History of India, p.53 ; Sangve, V.A. *Jain Religion and Community*, p.49.
10. Beniprasad, World Problems and Jaina Ethics, pp.2-17; Mehta, M.l., Jaina Acara, pp.83-132;
11. D'Souza, L "The Relevance of Religion in Contemporary Society" Third Millenium, 5/1 (Jan-March, 2002), pp.70-81
12. S.Radhkrishanana, Recovery of Faith, p.204
13. Jain, Sagarmal, "The Philosophical Foundation of Religious Tolerance in Jainism" Studies in Jainism edt. D.C.Jain, p.159
14. Sūtrkṛtānga, 1/1/2/23
15. M.Haralambos with R.M.Heald, Sociology,Themes and Perspectives, pp.24-25
16. Sangve, V.A. *Jain Religion and Community*, p.59; Ghurye, G.S, Caste and Race in India, pp 40-41
17. Padmapurāṇa, XI/200, 203, 205
18. Sangve, V.A. *Jain Religion and Community*, p.59 ; Bool Chand, *Lord Mahavir* pp. 4-5
19. Indra, M.A., *Status of women in Ancient India*, p.178
20. Altekar, A.s., *Position of Women in Hindu Civilization,* p.190
21. Ibid, pp. 218-229
22. Sangve, V.A. *Jain Religion and Community*, p.243
23. Pathak, Abhijit "Thought on Cultural Invasion", *Mainstream*, vol32, No12, Feb, 11, 1995, p.234
24. Philips, Michael, "How to think systematically about Business Ethics", Earl. R.Winkler &Jerrold R.Coombs, *Applied Ethics: A Reader*, pp. 185-186
25. Sangve, V.A. *Jain Religion and Community*, p.165
26. Waren H; *Jainism*, p.76
27. *Upāsakadasānga*, (Edt. Madhukaramuni), 1/147
28. Rampuria, S.C., *Cult of Ahiṁsā*, p.22

Received : 5.10.10

लेखकों हेतु संदेश

1. अर्हत् वचन में जैन धर्म/दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष तथा जैन इतिहास एवं पुरातत्व से सम्बन्धित मौलिक, शोधपूर्ण एवं सर्वेक्षणात्मक आलेखों को प्रकाशित किया जाता है।
2. शोध की गुणात्मकता एवं मौलिकता के संरक्षण हेतु दो प्राध्यापकों अथवा पारम्परिक विषय विशेषज्ञों से परीक्षित करा लेने के उपरान्त ही आलेख अर्हत् वचन में प्रकाशित किये जाते हैं।
3. शोध आलेखों के अतिरिक्त संक्षिप्त टिप्पणियाँ, अकादमिक संगोष्ठियों/सम्मेलनों की सूचनाएँ/आख्याएँ, आलेख एवं पुस्तक समीक्षाएँ भी प्रकाशित की जाती हैं।
4. अर्हत् वचन में प्रकाशित किये जाने वाले समस्त लेख इस अपेक्षा से प्रकाशित किये जाते हैं कि वे न तो पूर्व प्रकाशित हैं एवं न अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित हैं। यदि पूर्व प्रेषित कोई लेख अन्यत्र प्रकाशित हो चुका है तो माननीय लेखकों को इसकी सूचना हमें तत्काल अवश्य भेजनी चाहिये।
5. लेखकगण यदि पुस्तक या लेख से सन्दर्भ ग्रहण करते हैं तो उन्हें सम्बद्ध लेख/पुस्तक का पूर्ण सन्दर्भ देना चाहिये । यथा लेख का शीर्षक, प्रकाशित करने वाली पत्रिका का नाम प्रकाशन स्थल, वर्ष, अंक, पृष्ठ संख्या अथवा पुस्तक का नाम, लेखक, प्रकाशक, संस्करण, प्रकाशन वर्ष, आवश्यकतानुसार अध्याय, गाथा, पृष्ठ संख्या आदि। उदाहरणार्थ :-
   समान सन्दर्भ की पुनरावृत्ति होने पर बाद में संक्षिप्त नाम प्रयोग में लाया जा सकता हैं।
6. लेखकगण अपने आलेख की दो प्रतियाँ टंकित एक पृष्ठीय सारांश सहित भेजने का कष्ट करें। प्रथम पृष्ठ पर लेख का शीर्षक, लेखक/लेखकों के नाम एवं पत्राचार के पूर्ण पते होने चाहिये। अन्दर के पृष्ठों पर लेखक/लेखकों के नाम न दें। **कृपया हिन्दी के आलेख एम.एस वर्ड में देवलिश फोन्ट में टाइप करके फोन्ट सहित सी.डी. में भी भेजेंगे तो प्रकाशन में सुविधा रहेगी एवं प्रकाशन शीघ्र होगा। कृपया लेख की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें वापस भेजना संभव नहीं है।**
7. लेख के साथ लेख के मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र अवश्य संलग्न करें एवं अर्हत् वचन में प्रकाशन के निर्णय होने तक अन्यत्र प्रकाशनार्थ न भेजें।

डॉ. अनुपम जैन

मानद् सचिव-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,

584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,

इन्दौर - 452001

फोन : 0731-2545421, 2797790

E-mail: anupamjain3@rediffmail.com

अर्हत् वचन में समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकों को पुस्तकालय में रखा जाता है। जिन पुस्तकों की 2 प्रतियाँ प्राप्त होती है उनमें से चयन करके 01 प्रति समीक्षक को भेजी जाती है। पत्रिका की विषय परिधि के अनुरुप होने पर एवं समीक्षक से समीक्षा प्राप्त होने पर समीक्षा प्रकाशित की जाती है। सभी की समीक्षा प्रकाशित करना संभव नहीं है।

Vol. - 23, No. 1-2, January-June 2011, 83-97

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

III-Second Series of Experiments on Water - Aura

■ Jeoraj Jain*

In the previous 2 articles (Ref. 1 & 2), it was established that water does exist as a living-being (Ref. 3, 4, 5). After developing a scientific model of the structure of living water-cell, certain **"Tests"** were applied to prove the validity of the hypothesis (Ref. 2, 5). Both the basic criteria of a living-being were applied to certain types of water and found it to be fulfilling them! Subsequently **"aura"** photography was resorted to re-establish the criteria of living water. Tests were conducted to **differentiate** living water from non-living water.

2. Second series of Experiments on Aura:

Based on the results of the first set of experiments with aura of different types of water (Ref. 2, 5), second series of experiments were designed and planned as follows. It is known that Aura can be photographed either by **invasive** or by **non-invasive** techniques (Ref. 6, 7, 8). In the first set of experiments, Dr. Shah used invasive technique, which involves direct contact of the object with the high voltage field. In the second series, non-invasive method was planned, where aura is photographed from a distance.

Seven types of water, as given below, were prepared and kept in glass cups of similar size and material, so that the container-energy remains common for all the water-samples. All the samples were kept side by side on a table (Foto 13). In this position the auras of all the samples were captured in one photograph in the laboratory of **Dr. Amresh Mehta,** at Ahmedabad, on 18.10.07. First photograph was taken in the morning at around 11:30 am (BN) and the second photograph of the same samples was taken in the After Noon (AN) at 4 pm, without introducing any disturbance in them (see photos). Both photographs lend themselves to be compared. This should reveal, whether timing has any effect on the quality of aura. **(Foto 14)**

3. Main Observations:

The long **experience** of **Dr. Amresh Mehta**, in reading the aura photographs, was utilized to decode the meaning of coloured aura, surrounding the samples. He explained that Blue colored aura means **Good energy** and Red colored Aura means **Bad Energy**. We have considered only these two colors in our analysis. Both colors can co-exist. It is said that when one type increases, the other colored area decreases. In the photograph of aura of samples taken on 18.10.07, the containers of samples were arranged as shown in **Foto 13.** The sequence of samples was as follows:-

First Row (in Sequence from left to right): Remedy 6X, Remedy 10M, Dhovana of Filtered water (DF), Distilled water (DDD) and

Second Row: has i) Tap water-- without filtration (E/T),
ii) Boiled water-- Filtered and then boiled (BF) and
iii) Tap water-- filtered by Reverse Osmosis system (TF).

The first observation by Dr. Mehta was that there is no difference in patterns of

* 40, Kamani Centre, IInd Floor, Bistupur, Jamshedpur - 831001

morning (BN) aura and evening (AN) aura of the samples. From these photographs, the quality of energy of every aura has been assessed. The exact magnitude of energy or energy area could not be measured from these photographs, as has been done by the software of Dr. J M Shah from his aura photographs. This was due to application of different technology by Dr. Mehta. Dr. Mehta, however, found qualitatively the magnitude of **energy (good)** of samples, in a descending order, in form of **blue color** as below:-

Table 8 : Samples in Descending order of their good energy

SN.	Energy Grade	Sample Type	Quantum of good energy
1	BF	Boiled after filtration (RO system)	Maximum energy (Blue)
2	DF	Dhovan after filtration (RO system)	slightly less/ same
3	10M	Homeo remedy 10M (XX) ---------------	lesser than 2
4	TF	Filtered tap water (RO) -------------------	lesser than 3
5	DDD	Distilled water (Injection ampules) ----	lesser than 4
6	6X	Homeo remedy 6X ------------------------	lesser than 5
7	E/T	Tap water without filtering -------------	least Blue (Max. Red)

4. Other observations and analysis:-

4.1 From the photographs, it is observed that each sample has **several rings** of "aura" in different colors, encircling the physical sample. These rings are connected with each other and can be distinguished from its adjoining ring by difference in its color, like red, blue, green etc.

However, the outer rings of one sample appear to overlap the peripheral rings of other sample (Foto 14), because the samples are kept very close to each other.

4.2 The auras of various samples (Table 4 of reference 1 & Table 8), plotted magnitude-wise in descending order, are shown in Foto 15. Here the dark boxes on positive Y-axis represent area of energy of different types of water as given by Dr. J M Shah's equipments. This is plotted in exact value of Aura area, as given by Dr. Shah. Whereas, the boxes on the negative Y-axis represent schematic magnitude of blue (good) energy of different types of water as assessed by Dr. Amresh Mehta. For qualitative assessment, the good energy has been assigned relative values. Hence, instead of exact values of energy areas, it gives only the qualitatively relative status of the energy of different samples. From these experiments in Shah and Mehta's Lab, it is obvious that we can only **compare the "trends"**, as to how the energy of water changes or is influenced by conducting different types of **operations** on simple Tap-Water. It is observed (Foto 15) that the trend of **"change"** in energy values by doing a specific operation, in a sequence, is same in both sets of experiments!

4.2.1 In the light of Mehta's photographs (Foto 14), where tap water shows **only bad-energy** (no **blue energy**), it can be concluded that aura-area of tap water represents only bad energy. That means energy area of 21.2 in Shah's Foto of tap-water would be of red color or bad energy only. During further operations on it, like boiling etc., the **blue energy** (good energy) starts appearing. It increases in the sample in the following sequential order:-

E/T, 6X, DDD, T(F), 10M, D(F), B(F).

4.2.2 The energy aura of B(F) hardly contains any Red colored energy. It means the energy area of 17 of boiled water in Shah's Foto (of course, it was not filtered water) is only that of good energy.

The **reduction** in energy area (from 21.2 to 17 units--Shah) indicates that not only the bad energy is converted into good energy, but also the "area" is reduced, probably due to increase in its **density**. The energy packed per unit area must have increased. In other words the randomness of energy **(entropy)** is decreased and the discipline of energy Ed is increased.

(In other words, the energy discipline E_d increases and Entropy decreases in this order. This is corroborated, in a way, by SHAH's photos!)

Apart from Red and Blue colors, the other colors in Mehta's fotos might be related to dynamisation of 6X and 10M. This significance is not known as yet and needs further experiments.

4.3 It is to be noted that the ascending data of Dr. Shah on Y-Axis runs in **opposite direction** (Ref. 6) to the data generated by Dr. Amaresh Mehta, (Foto-16). That means, the "energy", which is considered as "good" energy by Dr Mehta, increases with boiling of the Tap water i.e., by driving out the oxygen radicals and extinguishing the Live-energy (Li) of tap water. However, by doing the same operation of boiling etc, the **"area"** in the first set of experiments in Shah's Lab decreases. Here, it should be remembered, as discussed earlier that 'Dead' water will have only **'fixed' type** of aura. The scattering of aura around the physical body of drop is very less (aura of inanimate body). But living-water will have **dynamic aura**, with more scattering around the drop-body, as in the case of Tap water.

When **dynamisation*** of distilled water is done, the aura of living water gets **disciplined**. Its scattering gets reduced. As per Mehta, good energy increases and bad energy decreases due to dynamisation i.e. $E_t\uparrow = E_g\uparrow + E_b\downarrow$ The scattering of aura around the X sample comes almost to the level of boiled water B. When it is further dynamised (10M), the scattering of energy area is further reduced. It becomes more disciplined. (here, ↑ denotes gain & ↓ denotes loss).

The Aura Area (Shah's Lab):-

If E(A) is assumed as Total energy area (without differentiating as good or bad energy), it can be argued that

Tap wter - has more rarefied energy field, and more scattered area of aura energy.

Boiled water - has aura of inanimate object only. (Fixed or static type)

X Sample - Scattering of energy around live-water is reduced. Aura energy becomes more disciplined.

XX (10M) Sample - The energy gets still more disciplined. (Foto 15 & 16) and concentrated.

This is possible, only if this "area" (entropy) contains **"some thing"** which compresses the energy field, irrespective of its being good or bad energy, as identified by Dr. Mehta.

* Dynamisation : It is a process of potency-making in Homeopathy.

4.4 The scattering of **Energy** Area / **Entropy** E(A) decreases sequentially from Tap water to 6X remedy, to Boiled water to 10M remedy in Shah's photography, whereas in Mehta's photography the **good energy inceases** in the **same sequence (Foto 16)**. In a bigger sample size of second set of experiments, the good energy increases in a sequential manner from Tap water to **6X** remedy to Distilled water (DDD) to Tap filtered water (TF) to 10M remedy to Dhovan of filtered water (DF) to Boiled filtered water (BF). This can be **expressed** as

$E_{(t)} < E_{(x)} < E_{(tf)} < E_{(x\,x)} < E_{(dh\,f)} < E_{(b\,f)}$ (good energy).

This is represented in **Foto 15** (Table 4 & 8) and in Stackd Energy Diagrams (Foto 17a & 17b).

The energy content of individual sample can be **analysed and explained in** the following manner.

Nomenclatures used in the text analysis are:

i) **5 suffixes, t=**total, **g=**good, **d=**disciplined, **p=**pranik and **b=**bad are used without brackets to denote **type of energy.**

ii) Suffixes denoting the **type of water,** like **t**= tape water T, **b**= boiled water B, **dhf**= dhovana filtered water DF, **d**= distilled water DDD, **h**= dynamised (homeo) remedy 6X or 10 M, **f**= filtered water, **dw**= dead water, **li**= live water and o/r=oxy radicals etc are used in **brackets.**

iii) E= aural energy quantity.

For example,

$E_{t(tf)}$ would mean total energy of filtered tap water,

$E_{g(dw)}$ would mean good energy of dead water i.e., boiled water.

4.5 In Shah's photographs:- (Foto 18, as reproduced from reference 2)

4.5.1 Energy of Tap-Water in Foto 18 can be denoted by $E_{t(t)}$, This energy $E_{t(t)}$ is composed of following components and can be expressed *ab initio* as:

$E_{t(t)} = E_{(dw)} + E_{(li)} + (-E_{(o/r)})$ -------------(i)

where, $E_{(dw)}$ = Energy of Dead Water, It may contain energy of its mineral constituents.

$E_{(li)}$ = Energy of "living-being" of water alone. It may increase by addition of some other type of energy, called **Pranik energy** to it. It may also contain some energy of living *Trasa Jiva* contents.

E(o/r) = Energy of oxygen radicals dissolved in water.

4.5.2 Dynamics of Boiling operations:

During boiling the tap water, following changes in energy can occur.

By boiling process, the energy of radicals of oxygen is reduced to zero

i.e., $E_{(o/r)} \rightarrow 0$, and

Live-Energy $E_{(li)}$ is also reduced to zero, because water does not remain alive after boiling i.e., $E_{(li)} \rightarrow 0$. (Nothing known has been done here to attract and store Pranik Energy).

Hence the residual energy of boiled water $E_{(b)} = Et_{(t)} - (-E_{(o/r)} + E_{(li)})$

Substituting $E_{t(t)}$ from equation (i) $= (E_{(dw)} + E_{(li)} + (-\,.\,E_{(o/r)}) - (-E_{(o/r)} + E_{(li)})$

$= E_{(dw)}$

4.5.3 Here a Partinent question arises as to why the boiled dead water should have maximum good energy (Blue), whereas its entropy is decreased?

Following possible resaons may be assigned to it.

i) Because it does not have any negative energy of **oxygen radicals**, (which might be same or equivalent to Mehta's bad energy ! This has to be investigated.)

ii) The total energy represents the good energy of a plain **dead body** only, because the boiled water does not have any live body energy (i.e. of live water) or pranik energy.

That means,

i) **Negative energy** of radicals is max, for tap water and zero for boiled water.

From this **"Datum Energy"** of boiled water as per shah's lab., one has to subtract radical energy (negative) and add Live energy E (li) (+ve) in order to get actual value of energy of tap-water.

ii) **Live energy** of dead water is nil, whereas it is maximum for XX sample.

4.5.4 Problems paused :

i) It needs to be proved that Mehta's bad energy refers to or is same as shah's energy of radicals. And Mehta's good energy is similar to Live and Pranik energy of Shah's lab. Here **(Ep) represents superimposed** discipline by pranik energy on live-energy (Eli)

ii) As such, this phenomenon of **Boiled water of Dhovan** acquiring max. good energy, needs **further investigations** and exact explanation.

4.5.5 Effects of Dynamisation

Similarly, the energy of water, after dynamisation can be derived as follows :

$E_{(xx)} = E_{(dw)} + E_{(li)} - E_{(o/r)} + E_d$

(Here the discipline of $E_{(li)}$ is enhanced by dynamisation. It should have received and stored maximum pranik energy (EP) in it, in case of remedy of potency 10M. It would be less for a potency of 6X, Here, although total energy due ET increases due to super imposition of Pranik energy discipline Ed on live energy $E_{(li)}$, but due to reduction in randomness, the total aread of aura energy (E(A) would actually decrease. Thus it denotes higher energy **density**.

4.6 Mehta's Photographs :

4.6.1 Status of good and bad energy during dynamisation (Mehta's Lab)

If the good and bad energies do not cancel each other, they would exist together simultaneously, as revealed in Blue and Red colors in the Foto by Dr. Mehta. It is also observed that the graphs of good energy and the scattering of energies run almost paralle if they are positioned about a neutral axis (Foto 15). It means, if a sample has more good energy (Mehta), it would exhibit less energy-scattering (shsh), as if the sum total of these **scalar** quantities has to be almost constant, **unless** extra **pranik energy** is **added** by dynamisation. When Ep (pranik) is superimposed on normal water aura area EA, its scattering is **reduced** in proportion to the intensity of Ep. Thus the density of aura energy goes on increasing and the entropy goes on decreasing by dynamisation. Since the data of Mehta is not quantifiable, it is considered to be only an assesment of the **'Trend',** Table 5 of previous article has now been modified as per this anlytical conslusion in new Table 5M, given here.

TABLE 5M : Probable relative magnitude of aura of different constituents of water (Assessed):

SN	Component Aura	T	TF*	B	D*	X	XX
1.	ELi	11	10	0	0	12	12
2.	EMi	14	14	16	16	6	0
3.	E d/p	0	0-1	0	0	10	46
4.	E o/r(+ve)	-6	-11	0	-6	-2	0
5.	E Tr	2	0	0	0	0	0
6.	Sum EA (Shah)	21.5	14-15	17.5	10*	18.5	14.5
7.	Energy Density (De*)	1		0.9		1.3	4
8.	E A (Mehta)*	21		16		24	58

* Predicted figures

Further experiments are needed with sophisticated equipments to quantify these deductive statements.

For the aforesaid data, following equations should hold good (Mehta).

i) $E_t = E_8 + E_b$ ---------------------- ii) i.e., Total energy of a water sample.

ii) $E_{t(d)} = E_{g(d)} + E_{b(d)}$--------- iii) for distilled water

iii) $E_{t(h)} = E_{g(h)} + E_{b(h)}$ --------- iv) for dynamised water

4.6.2 Dynamisation :

It is expected that **<u>dynamisation</u>** would enhance the good energy and reduce the bad energy of the original sample of a remedy in distilled water. That means,

$E_{t(h)} > E_{t(d)}$ and

$E_{b(h)} < E_{b(d)}$

Similarly, the total energy of a sample should normally increase by dynamisation process (column iv in Table 9), say by 20% . Then the above functions can be expressed as :

Et(h) = 1.2Et(d) and Eb(h) = 0.8Eb(d)

With this data, the above equation at (iv) can be rewritten as follows :

$1.2E_{t(d)} = E_{g(h)} + 0.8E_{b(d)}$

i.e. $E_{g(h)} = 1.2\ E_{t(d)} - 0.8\ E_{b(d)}$ ----------- (v)

and the equation (iii) can be rewritten as

$E_{g(d)} = E_{t(d)} - E_{b(d)}$ ---------------- (vi)

and thus

$E_{g(h)}$ becomse >> $E_{g(d)}$

4.7.1 Following **<u>difference</u>** in Shah & Mehta's "aura" should be kept in mind.

i) The total E (A) area **(Shah)** represents the area of **<u>'surrounding aura energy'</u>** only and not the energy on the **<u>'body'</u>** of the object.

ii) **<u>Mehta's 'good energy'</u>** (Eg) represents the area of good colors (blue, white etc) on the body of the object as well as in the "surrounding aura energy" in his photographs of aura.

iii) His is only qualitative assessment of good energy.

4.7.2 An attempt has been made to co-relate the Shah's energy area E (A) with the

qualitative energy (Eg & Eb) found by Mehta. This may throw some light on the trends. It is obvious that several more experiments with different parameters would be needed before deriving quantitative conclusions about this relationship. At present, when we express Shah's energy E(A) = E(Li) + E(Mi)+E(Tr) + E(o/r) + Ep/Ed (Foto 19, as reproduced from reference 10), we donot know, which of its components belong to good energy of Mehta and in what ratio. We also do not know, whether this Eg represents condition of all the 3-dimensions, even when its 2-dimensional component it getting measured ! The values of various energies are roughly assessed from the experimental data and expressed in following tabular form to see the trends.

Table 9 : Values of scattered / disciplined E (A) and estimation of good E_g energy (SHAH)

Water Type	E(A) (Dr. Shah) (i)	Constt Et, Say (ii)	Eg(ii)-(i) (Shah) (iii)	Et, if Et (h)>Et(d), Say, Foto 16, (iv)	Then Eg (Shah) = (iv)-(i) (v)
T	21.5	2.5	3.5	25	3.5
X	18.5	25	6.5	30	11.5
Boiled	17.5	25	7.5	25	7.5
XX	14.5	25	10.5	35	20.5

Note : 1. The relative values of Et in colums (ii) and (iv) have just been assigned to facilitate the understanding of possible effects of dynamisation in terms of good or bad aura energy.

2. Dynamisation may possibly draw cosmic energy from the universe, thereby increasing the life-energy E_{ll}, due to super imposition of E(p).

3. If total aura energy E_t does not increase by dynamisation, the increase in good-energy would be just balanced by corresponding decrease in its bad-energy.

In such a situation, if its concentration or memory power is increased in a particular field or direction, total E_t may not be required to be altered.

These results look **astonishingly in conformity** with the deductive results obtained from different samples on the basis of the postulates of above mentioned theory of water bodied living-beings without DNA & RNA.

5. Summary :

i) A characterized water cell in its pure form will have a well defined and specifically attuned **pattern of energy field** around the profile or architecture of its body.

ii) Similarly, variation in **aura** of water body, obtained under its different living-conditions, validates the theory that water does exist as a **living-being**. As a corollary, the animated state will have **Etheric aura** component, which is responsible for carrying memory.

This theory may act as a **Foundation** Stone for the **Homoeopathy.**

iii) Experiments were conducted to find difference and changes in **"Aura"** of living and dead water. The results established the existence of living water cells.

iv) Preliminary experiments strongly suggest that is is now scientifically possible to differentiate between living water and dead water ! This would provide effective tool to facilitate nurturing of **Ahiṁsaka lifestyle** for the mankind.

Knowing that WATER **exists** as a **Living-being**, theory of Karma (Ref. 9) and human

attribute of Compassion (Ref. 10) should now prevail on **mankind** for self restraint and for **minimization** of consumption of water.

Some **tips** are given in Foto B for conservation of water in daily life, titled as, **"Do You Know"**

v) Further, it is also established that dynamisation of water affects **positively** its energy field.

The whole exercise has been done with very limited facilities. However, in view of the encouraging results, there seems to be a tremendous scope for scientists to undertake multi-Disciplinary **organized research** with advanced, sophisticated equipments, like atomic-force microscope and magnetic-resonance techniques to peep deep into the molecular structure of water. Latest Aura techniques can also help reveal many secretes of such wonderful **Live Water-Cell**.

Reference :

1. Dr. Jeoraj Jain, "Non-living water and its comparison with Living water," Arhat Vacana, 20(3), 2008, p 91-98.
2. Jeoraj Jain, "Living Water-Cells and working principle of Homeopathy", Arhat Vacana, 19 (1-2), 2007, P 95-102
3. Edward Wriothesely Rusal, "Report on Radionics", Neville Spearman Suffolk, 1983
4. An interview with Dr. David Schweitzer, "More than just H_2O", Nu Health, 32 Notting Hill Gate London. W11. UK, 2000,
5. Prabhunarayan Mishra, Photographs published in "Naya Gyanodaya", Bhartiya Gyanpith, DELHI, Mar. 2004.
6. Kirlian photography and Brochures prepared in the laboratory of Dr. J.M. Shah, Mumbai and Dr. Amresh Mehata, Ahmedabad (2005-08).
7. Acharya Mahapragyaji M.S., "Aabha Mandal", Adarsha Sahitya Sangh Prakashan, 210, Deen Dayal Upadhyay Marg, Delhi-110002, p 155-220.
8. Arun Zaveri etc., "Therapeutic Thinking", Geekay Corpn., A-109, Ghat kopar Industrial Estate, LBS Marg, Ghatkopar (W), Mumbai-400086, p 14-16.
9. Dr. N.L. Kachhara, "Jain Karma Sidhanta, Adhyatma aur Vigyan", Dharma Darshan Seva Sansthan, 55, Ravindra Nagar, Udaipur-313003, p. 100-106.
10. K.L. Lodha, 'Jeev-Ajeeva Tattwa' (in the light of science), - Prakrit Bharti Academy, Jaipur.

Received : 23.11.2008

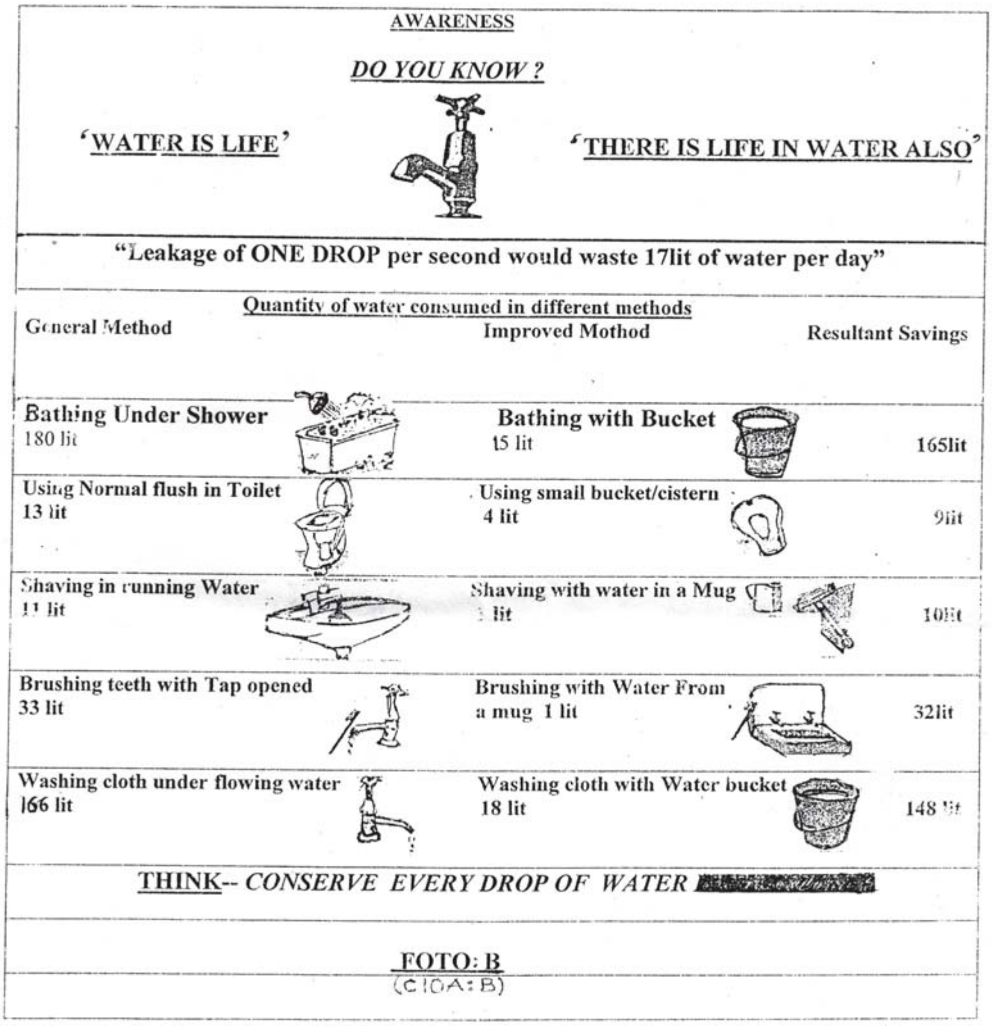

AWARENESS

DO YOU KNOW ?

'WATER IS LIFE' — 'THERE IS LIFE IN WATER ALSO'

"Leakage of ONE DROP per second would waste 17lit of water per day"

Quantity of water consumed in different methods

General Method	Improved Mothod	Resultant Savings
Bathing Under Shower 180 lit	Bathing with Bucket 15 lit	165lit
Using Normal flush in Toilet 13 lit	Using small bucket/cistern 4 lit	9lit
Shaving in running Water 11 lit	Shaving with water in a Mug 1 lit	10lit
Brushing teeth with Tap opened 33 lit	Brushing with Water From a mug 1 lit	32lit
Washing cloth under flowing water 166 lit	Washing cloth with Water bucket 18 lit	148 lit

THINK-- *CONSERVE EVERY DROP OF WATER* [redacted]

FOTO: B
(C10A:B)

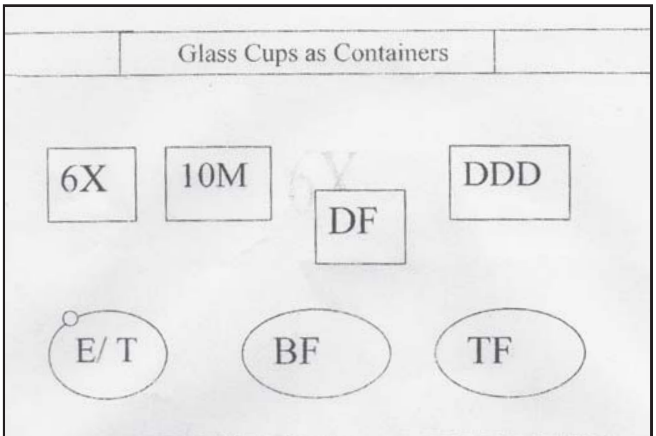

FOTO 13 Arrangement of Samples on Table for Photography (Dr. A Mehta)

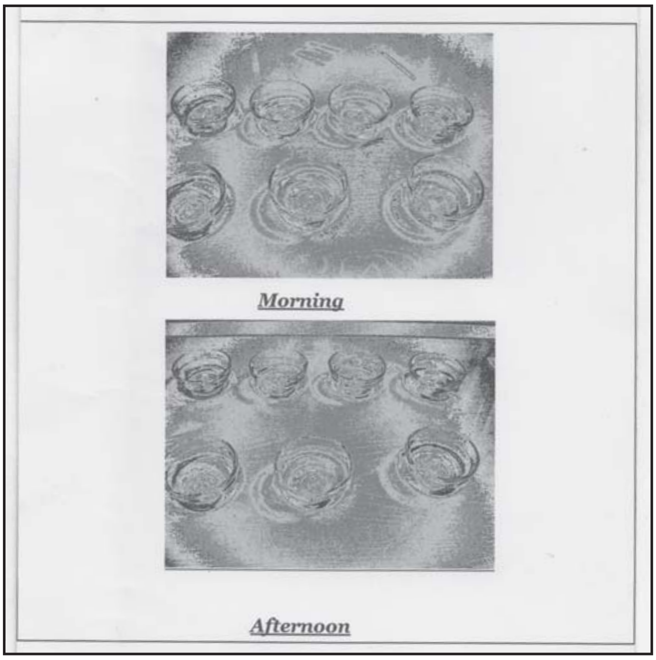

FOTO 14 ,Water Aura in BN (before noon) & AN (Afternoon)

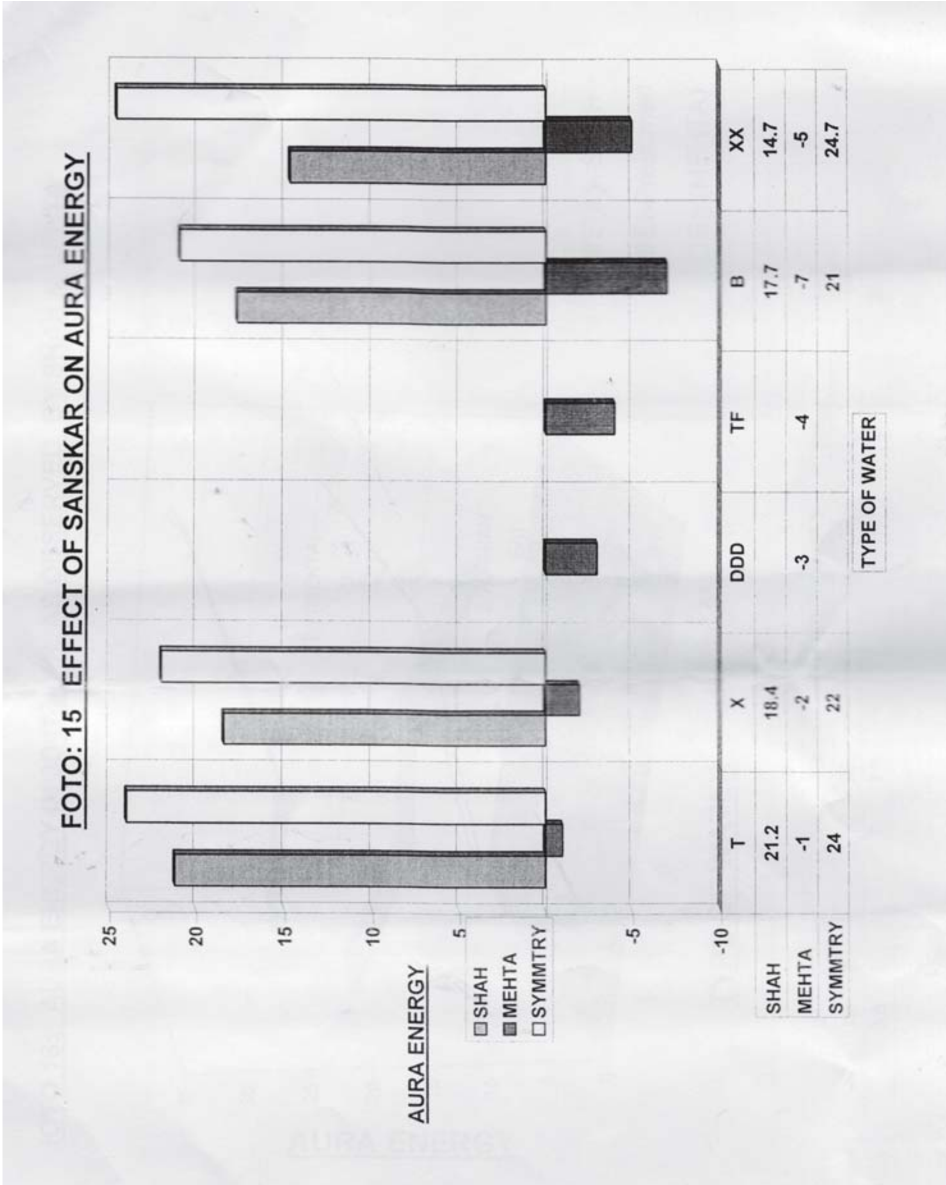
FOTO: 15 EFFECT OF SANSKAR ON AURA ENERGY
AURA ENERGY
SHAH
MEHTA
SYMMTRY
25
20
15
10
5
-5
-10
T
X
DDD
TF
B
XX
SHAH 21.2 18.4 17.7 14.7
MEHTA -1 -2 -3 -4 -7 -5
SYMMTRY 24 22 21 24.7
TYPE OF WATER

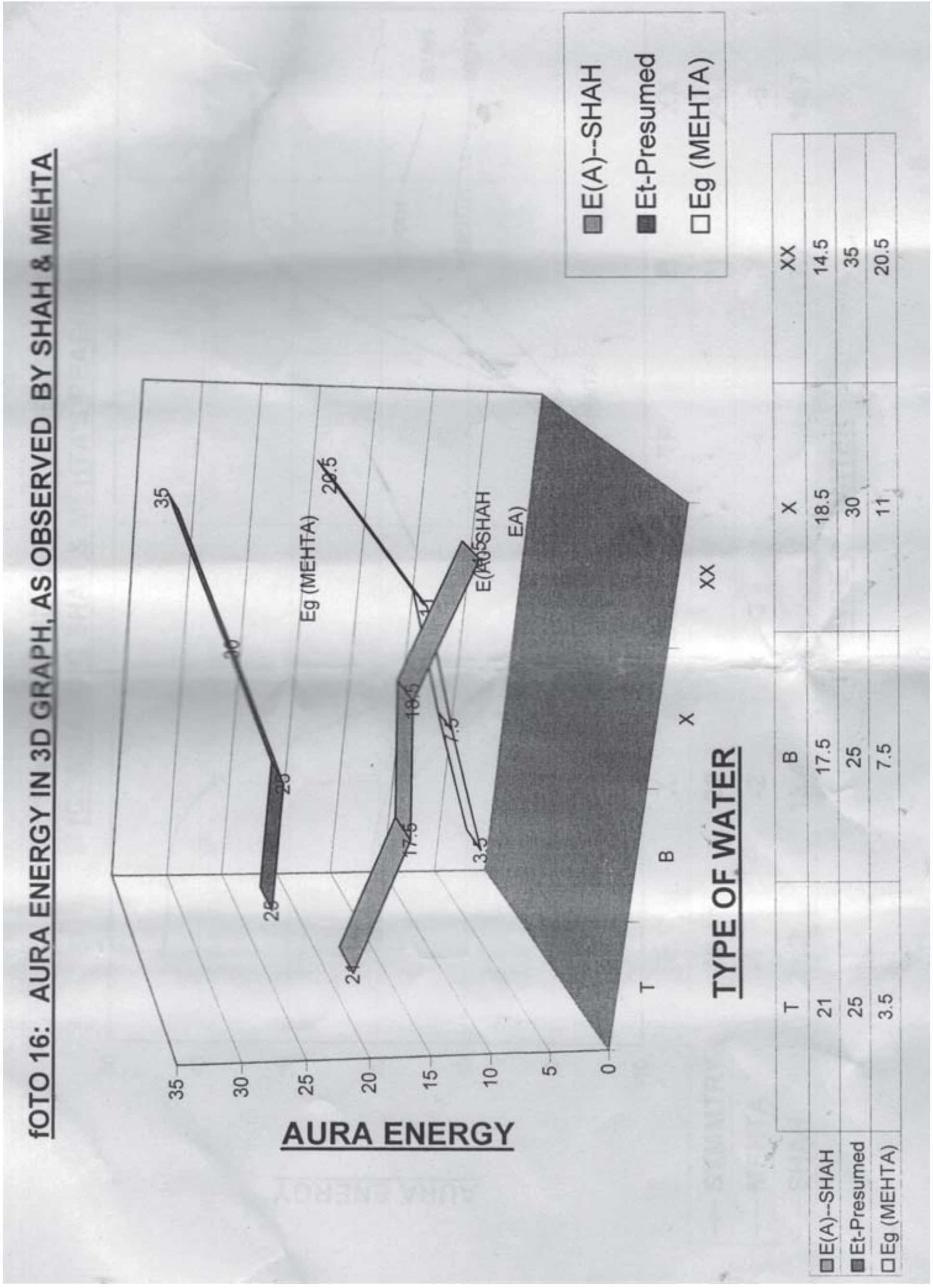

	T	B	X	XX
E(A)--SHAH	21	17.5	18.5	14.5
Et-Presumed	25	25	30	35
Eg (MEHTA)	3.5	7.5	11	20.5

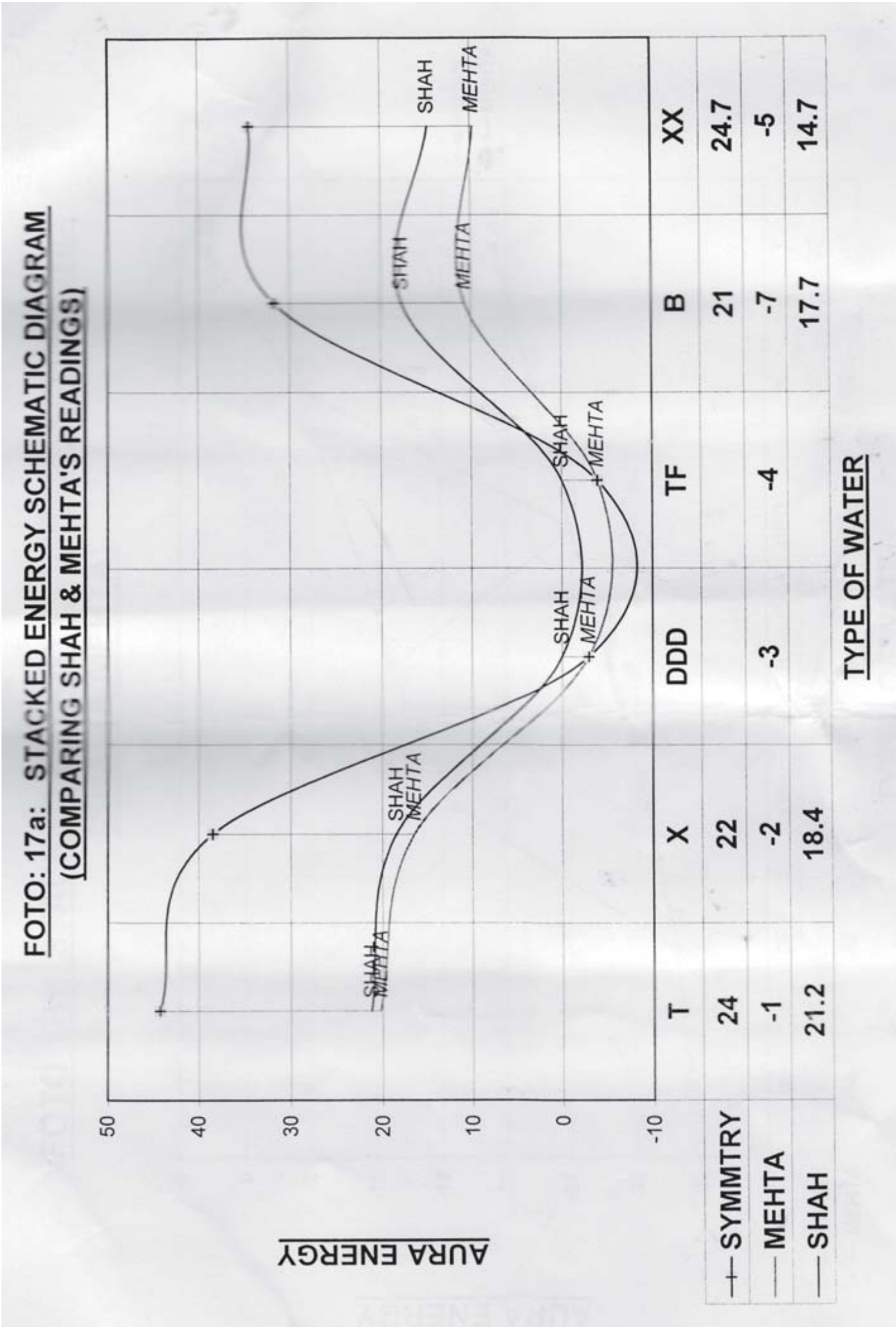
FOTO: 17a: STACKED ENERGY SCHEMATIC DIAGRAM
(COMPARING SHAH & MEHTA'S READINGS)
AURA ENERGY
50
40
30
20
10
0
-10
SHAH
MEHTA
TYPE OF WATER
T X DDD TF B XX
SYMMTRY 24 22 21 24.7
MEHTA -1 -2 -3 -4 -7 -5
SHAH 21.2 18.4 17.7 14.7

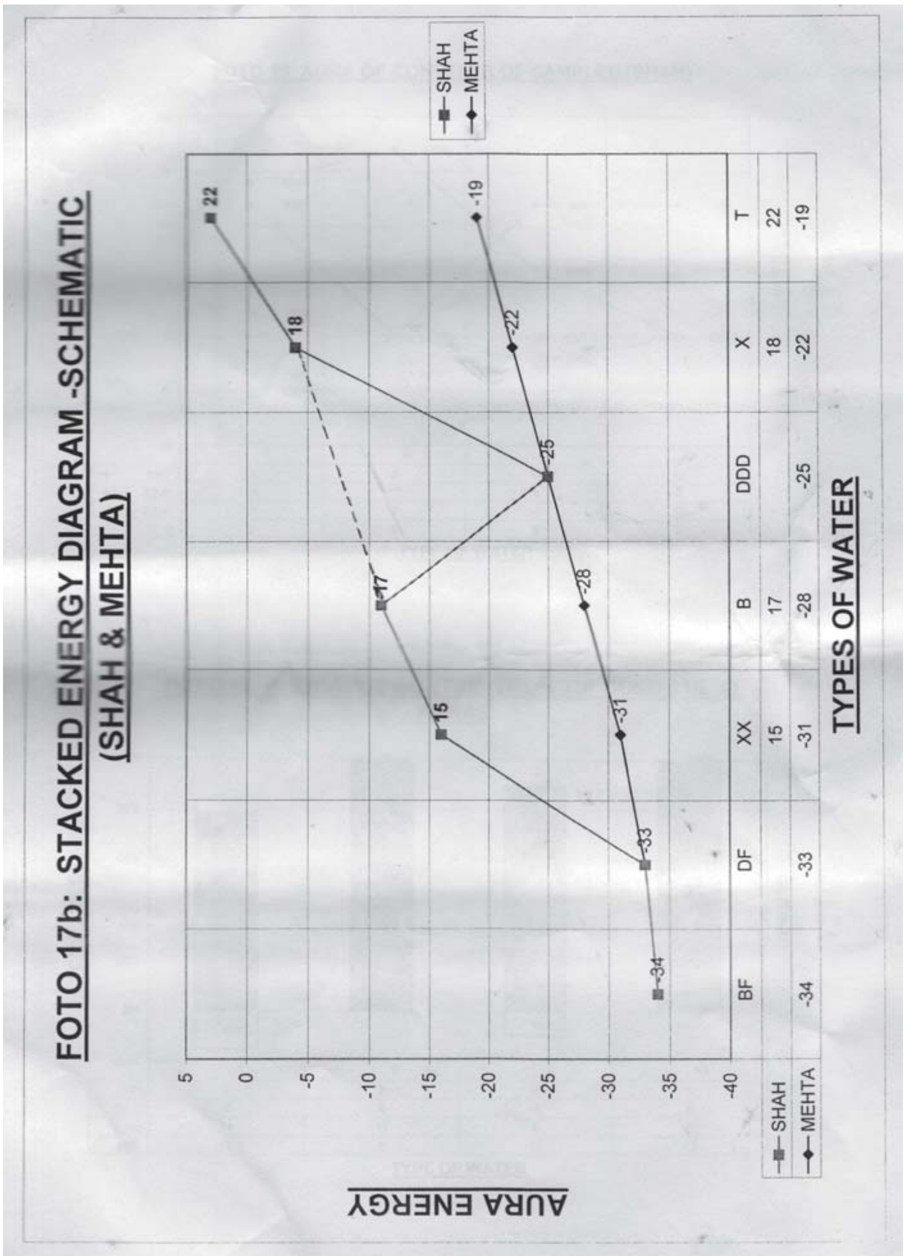

FOTO 17b: STACKED ENERGY DIAGRAM -SCHEMATIC
(SHAH & MEHTA)
AURA ENERGY
TYPES OF WATER
SHAH
MEHTA
5
0
-5
-10
-15
-20
-25
-30
-35
-40
BF
DF
XX
B
DDD
X
T
SHAH -34 -33 15 17 18 22
MEHTA -34 -33 -31 -28 -25 -22 -19

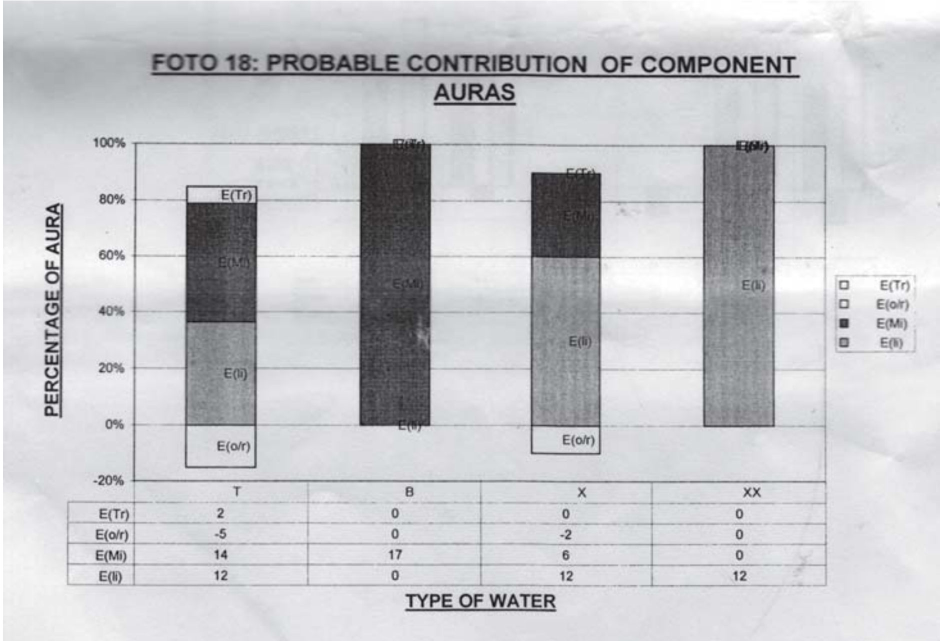

FOTO 18: PROBABLE CONTRIBUTION OF COMPONENT AURAS

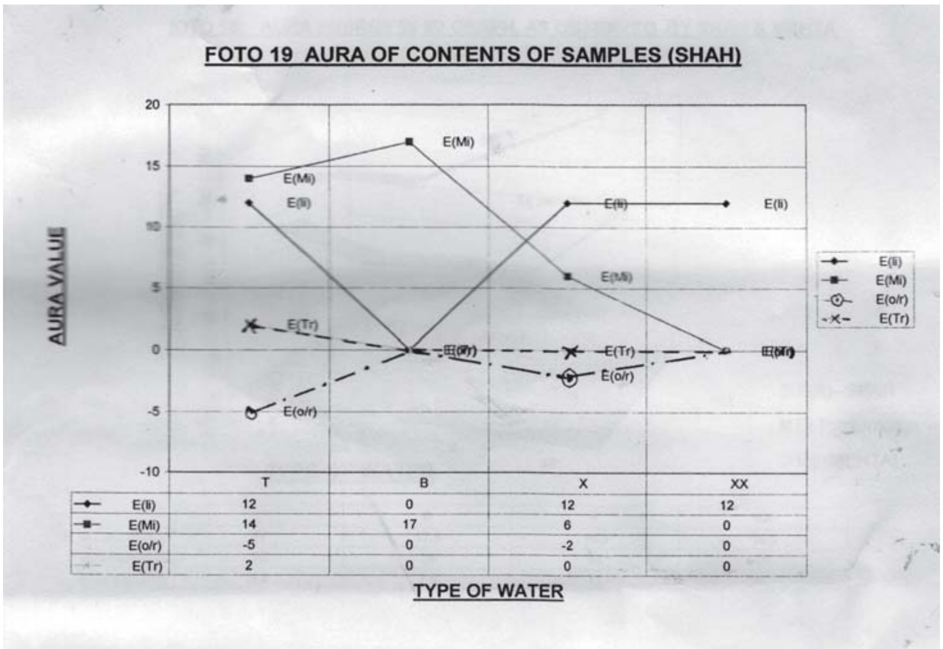

FOTO 19 AURA OF CONTENTS OF SAMPLES (SHAH)

General Instructions and Information for Contributors

1. Arhat Vacana publishes original papers, reviews of books & essays, summaries of Dissertations and Ph.D. Thesis, reports of Meetings/Symposiums/Seminars/ Conferences etc.
2. Papers are published on the understanding that they have been neither published earlier nor have been offered to any journal for publication.
3. The manuscript (in duplicate) should be sent to the following address-
   Dr. Anupam Jain, Editor - Arhat Vacana
   ëGyan Chhayaí, D-14, Sudamanagar, INDORE - 452 009,
   e-mail : anupamjain3@rediffmail.com
4. The manuscript must be typed on one side of the durable white paper, in double spacing and with wide margin. the title page should contain the title of the paper, name and full address of the author. It is prefered to submit the MSS electronically through C.D. or email in MS Word in addition to the above.
5. The author must provide a short abstract in duplicate, not exceeding 250 words, summarising and highlighting the principal findings covered in the paper.
6. Foot-notes should be indicated by superior number running sequentially through the text. All references should be given at the end of the text. The following guidelines should be strictly followed.
   (i) References to books should include authorís full name, complete and unabbreviated title of the books (underlined to indicate italics), volume, edition (if necessary), publisherís name, place of publication, year of publication and page number cited. For example - Jain, Laxmi Chandra, Exact Sciences from Jaina Sources, Basic Mathematics, Vol.-1, Rajasthan Prakrit Bharati Sansthan, Jaipur, 1982, pp. XVI
   (ii) References to articles in periodicals should mention authorís name, title of the article, title of the periodical, underlined volume, issue number (if required), page number and year. For example - Gupta, R.C., Mahāvīrācārya on the Perimeter and Area of Elipse, The Mathematics Education, 8 (B), PP. 17-20, 1974.
   (iii) In case of similar citations, full reference should be given in the first citation. In the succeeding citation abbreviated version of the title and authorís name may be used. For example - Jain, Exact Sciences, PP. 45 etc.
7. Line sketches should be made with black ink on white board of tracing paper. Photographic prints should be glossy with strong contrast.
8. Acknowledgements, if there be, are to be placed at the end of the paper, just before reference.
9. Only ten copies of the reprints will be given free of charge to those authors, who subscribe. Additional copies, on payment, may be ordered as soon as it is accepted for publication.
10. Devanāgari words, if written in Roman Script, should be underlined and transliteration system should be adopted.

Vol. - 23, Issue 1-2, January - June 2011, 99-104

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indorer

Jaina Cosmology : A Mathematical Approach

■ Samani Aagamprajna*

ABSTRACT

The *Whole Jain literature has been divided into four main classes. Dravyānuyoga, Caraṇakaraṇānuyoga, Dharmakathānuyoga & Gaṇitānuyoga.*

In Jainism. the main theories which are explored in mathematical style are the theory of karma, pudgala (matter), the movement of sun and moon, shape and size of universe, etc. In the present paper I made an attempt to bring into light the shape and volume of the universe in Svetāmbara and Digambara tradition in a simplified way.

According to Jaina Philisophy, space in divided into two parts (1) Cosmic-space (2) Supra-cosmic space. Cosmic space where all the six substances are accommodated. Again this cosmos is divided into three parts-upper, middle and lower universe. The shape of the universe is supratisthaka as explained in Bhagvatī sūtra (सुपइट्ठियसंठिए लोए)

The point on which I want to focus is that both the tradition, Svetāmbara and Digambara where they varies is the total volume of universe. Both accept supratisthaka shape, but with some difference, so the total volume also differs. This is clearly explained in the paper. According to Digambara tradition, the total voluve is 343 cubic rajju, while svetāmbara sums it as 239 cubic rajju.

The whole Jaina Literature has been divided into four main classes :

(i) *Dravyānuyoga,* which includes the exposition of *dravya* like *jīva, ajīva* etc.,

(ii) *Caraṇakaraṇānuyoga,* which includes the rules and regulations to be followed by saints, sages etc.

(iii) *Dharmakathānuyoga,* which includes stories, biographics like *Jñātādharmakathā* etc.

(iv) *Gaṇitānuyoga,* which includes astronomy, mathematics, etc.

* C/o Jain Vishva Bharati University, Ladnun (Raj.) 341306

The following texts brings out the importance of mathematics in Jaina Literature. From 32 canons as accepted by Svetāmbara traditions, few of the texts which contains the mathematical description are: *Thāṇam, Viāhapaṇṇattī (Bhagavaī), Sūrya-prajñapti, Candra-prajñapti, Jambūdvīpa prajñapti, Anuyogadvāra, Uttrādhyayana, Viśeṣāvaśyaka Bhāṣya* etc. But our knowledge of these kind of typical mathematics is at present very limited. Some of the impotant Digambara texts like *Ṣatkhaṇḍāgama, Kaṣāya-Pādhuda, Tiloyapaṇṇattī, Gommatsāra, Trilokasāra,* etc. also consist mathematical explanation of some of the theories. It is only after 19th century, active research work on Jaina mathematics has been started. So, yet many of the areas are untouched and need a deep comparative study with modern mathematics.

The main theories, which are explore in mathematical styles are theory of karma, *pudgala, parmāṇu* (matter) the movement of sun and moon, shape and size of universe, etc.

In the present paper an attempt has been made to focus on the shape and volume of the universe in svetāmbara and Digambara tradition. For this, I am greatful to Prof. Muni Mahendra Kumar for his exclusive work Viśva Prahelikā, which become base for me to write this paper. I have just made an attempt to present it in a siplified way. so that the mathematical approach in Jain cosmology could become easily accessible for the new learners.

Jaina Philosophy asserts five kinds of *astikāyas* viz. *dharmāstikāya* (medium of motion), *adharmāstikāya (medium of rest), ākāśāstikāya (space), pudgalāstikaya* (matter) and *jīva* (soul), while kāla i.e. time as a non-āstikāya substance.[1] Among these the third substance is ākāśa. It is defined *as-avagāha laksanaṃ ākāsa*[2]*, avagāha lakkhane nāma agasatthigae*[3] i.e, that which accommodates is ākāśa.

According to Jaina philosophy, space is divided into two-loka (cosmic-space) and aloka (supra-cosmic space). The space accomodated by the five āstikāya and kāla is called as loka.[4] That part of space which consists of six substances is called as loka. According to Jaina cosmology, this loka is again divided into three parts- lower universe, middle universe & upper universe. lower universe is the place where the hellish beings stays, the middle universe where all the other three kinds of soul (celestial beings, human beings and animals) resides while the upper universe is for celestial beings and liberated souls.

Shape and Volume of Cosmic Space

In Bhagavatī Sūīra, when Gautam asks Mahāvīra : *kim santhie nāma bhante! loe pannate*?[5] i.e. what is the shape of laka? Mahāvīra replies : *goyama*!

supaiṭṭhiyasanthie loe paṇṇate-heṭṭha vicchinne, majjahe sankhite, uppiṁ visale.... i.e. it is like supratisthaka shape. At below it is broad, in middle narrow and in upper portion again broad. While explaining supratisthaka shape, Jaina Siddhānta Dīpikā mention that it is "a configuration obtained by conjunction of three conical bowls with the shape of chopped off pyramids in the following manner-one bowl placed convex with (that is, upside down) at the bottom, the second bowl placed concave wise (that is, with the face upward) above it, and the third one placed convex wise (like the bowl in the bottom) upon the second. The resultant configuration arising from the aforesaid adjustment is styled supratisthaka."[6] (The height of universe is 14 rajjus.)[7]

The shape of the universe is also explained in a form that a man or a women who is symmetrically built and who is standing with a stretched out legs and hands on the waist.

When we talk about the shape and volume of the universe, both the tradition Svetāmbara and Digambara are not unanimous. There is a difference in their views.

Digambara's Veiw

According to Digambara tradition, the universe is 14 rajju high. It is 7 rajju broad from north to south. The breadth from west to east is at the lowest position is 7 rajju and it grasually decreases till it measure 1 rajju in the height of 7 rajju (i.e.) in the centre of the universe. From here again the breadth increases from this point and reaches on expansion of 5 rajju in middle of the remaining part (i.e.) at the end of the fifth heaven brahmaloka and then, it again decreases till it is 1 rajju at the highest position (fig.1)

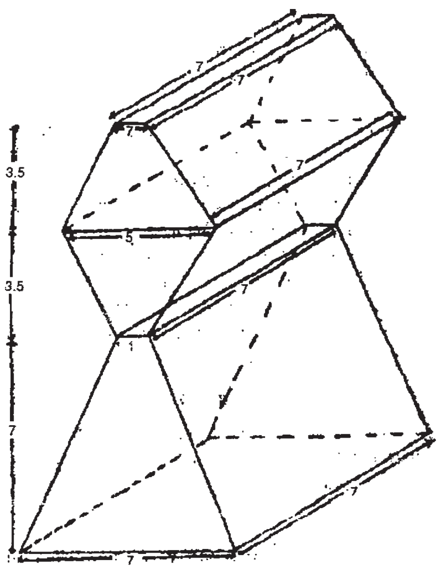

Figure-1

According to Digambara tradition, the volume of total cosmic space is 343 cubic rajju. As the breadth of the universe is not same everywhere, the universe is to be diveded into two parts of 7-7 rajjus.

In geometry, the formula to calculate the volume of trapezium space object is Vol.= area x b or (1 x b x h); and while, Area = 1 x h.

here 1 = length

b = breadth

h = height

Area of lower universe will be :

$= \frac{1}{2} \times [1_1 + 1_2] \times h.$

$= \frac{1}{2} \times [7 + 1] \times 7$

= 28 square rajju.

Vol. = Area x b

= 28 x 7 = 196 cubic rajju.

For upper Universe :

As in upper universe the length, breath is not same everywhere, so, it is diveded into two (as shown in fig.2)

Area $= \frac{1}{2} \times [5 + 1] \times 7/2$

= 21 / 2 sq. rajju.

Vol. = 21/2 x 7 = 174/2 cubic rajju.

So the Vol. of the upper area will be :

= 147/2 x 2 = 147 cubic rajju.

So total volume of the universe =

= 196 + 147 = 343 cubic rajju.

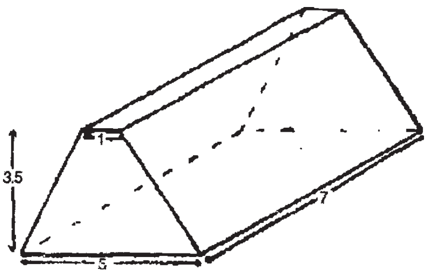

Figure-2

But according to Svetāmbara tradition, the breadth from the north to south does not remain always the same and the breadth from the east to the west constantly decreases upto the middle of universe and increasws, upto the middle of upper universe and again decreases upto the top of upper universe. Here, in both the cases, the decrease and increase is gradual (as shown in fig.3).

The height of the lower universe is somewhat more than 7 rajju while the upper universe is some less than 7 rajju. In between the middle region is the middle universe, which is very less than 1 rajju.[8]

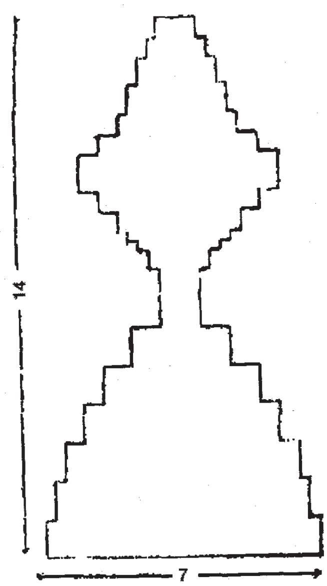

Figure-3

According to Svetåmbara tradition, the universe is increasing and decreasing gradually. So, its calculation is done in a different way.

Here, it is measured in a khanduka. 1 khanduka is equal to $^1/_4$ rajju i.e. 1 khanduka = = $^1/_4$ rajju. 4 khanduka = 1 rajju.

Height khanduka	**h**	**b (1)**	**1 x h**	**Area**	**Volume**
0-4	4	7	28	$784=28^2$	3136
4-8	4	6.5	26	676	2704
8-12	4	6	24	576	2304
12-16	4	5	20	400	1600
16-20	4	4	16	256	1024
20-24	4	2.5	10	100	400
24-28	4	1	4	16	64
28-30	2	2	4	16	32
30-32	2	3	6	36	72
32-33	1	8	8	64	64
33-34	1	10	10	100	100
34-36	2	6	12	144	288
36-38	2	8	16	256	512
38-40	2	10	20	400	800
40-42	2	10	20	400	800
42-44	2	8	16	256	512
44-46	2	6	12	144	288
46-49	3	3.33	10	100	300
49-52	3	2.66	7	64	192
52-54	2	3	6	36	72
54-56	2	2	4	16	32
					15296 **Cubic Khundupa**

1 khanduka = = $^1/_4$ rajju

So 1 cubic khanduka = 1/64 cubic rajju

So Vol. of universe = 15296 cubic khanduka

i.e. 239 cubic rajju.[9]

In this way, we find the difference of views, in calculating the total volume of the universe in both the traditions. This kind of logical and mathematical approach of universe by Jainacāryas focuses on the unique and excellent presentation of their knowledge.

Reference :

1. Jaina Siddhānta Dīpikā, 1.1, 1.2.
2. Ibid, 1.6
3. Bhagavatī Sūtra, 13.4.58
4. Bhagavatī Sūtra, 13.4.55/
   Jaina Siddhānta Dīpikā, 1.8,
   sat dravyatmako logah.
   kimiyam bhante! loetti pavuccai ?
   goyama! pancatthikaya, esa nam evatie loeti pavuccai tam jaha-dhammatthikae, adhammatthikae, agasatthikae jivatthikae, jibatthikae, poggalatthikae.
5. Bhagvatī sūtra, 13.4.90
6. Jaina Siddhānta Dīpikā, p.4.
7. Ibid, p.4. (A rajju is a conceptual measure consisting of innumerable pramāṇa yojanas, each pramāna
   yojana being almost equivalent to eight thousand miles.)
8. Bhagvatī Sūtra, 13.4.91
9. Viśva Prahelikā, Muni Mahendra Kumar, Javeri Publications, Mumbai, 1969.

Received : 23.07.10

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

गौवंश संरक्षण – विचारणीय प्रश्न

■ चीरंजीलाल बगड़ा*

आचार्य हस्ती अहिंसा पुरस्कार - 2010 के समर्पण अवसर पर जलगांव में 30.01.11 को मुख्य अतिथि के रूप में दिया गया डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा का यह उद्बोधन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं तथ्यात्मक है। पाठक

– सम्पादक

गौवंश हमारी संस्कृति की धुरी है। गाय को हम माता समान आदर देते हैं। फिर भी इस देश में गौवंश की जितनी दयनीय स्थिति है, उतनी अन्यत्र किसी भी देश में नहीं है। किसी भी अन्य पशु की तुलना में इस देश में गौभक्तों की और गौ-प्रेमियों की संख्या कई गुणा अधिक है। फिर भी गौवंश के साथ ऐसा दुर्व्यवहार क्यों और कैसे हो रहा है? इसका हम सबको कारण जानना जरुरी है।

तय है कि प्रमुख कारण तो सरकार की गलत नीतियां हैं। मांस लॉबी, मांस निर्यात लॉबी, चमड़ा लॉबी आदि की सरकारी तंत्र में सांठ-गांठ है। परंतु इसके पीछे हम जीवदया प्रेमियों का भी कम अप्रत्यक्ष हाथ नहीं है। अर्थ केन्द्रित समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है और हिंसा बढ़ती है वहीं धर्म केन्द्रित समाज में नैतिक मूल्यों का विकास होता है और अहिंसा का पल्लवन। आज हिंसा बढ़ रही है, यह समस्या भी है और चिंता का विषय भी।

हम यहां मुख्य रूप से उसी सामाजिक पक्ष को जानने-समझने का प्रयास करेंगे, क्योंकि जो बाते हमारे हाथ में हैं, उसे तो हम तुरंत सुधार कर सही दिशा ले ही सकते हैं।

पहले हम वर्तमान परिस्थितियों पर दृष्टि डालते हैं :-

1. भारतीय अर्थ व्यवस्था पूर्व में मूलतः कृषि प्रधान थी, अब उसकी भूमिका में तीव्र गति से ह्रास हो रहा है। देश में उद्योग, व्यवसाय और सर्विस सेक्टर, इन क्षेत्रों की भूमिका तेजी से बढ़ रही है।

2. कृषि में गौवंश की भूमिका में तेजी से कमी आई है। ट्रैक्टर और फर्टिलाइजर ने इनका स्थान ले लिया है। इन दोनों क्षेत्रों में अनुदान का आर्थिक लालच है। जीवदया प्रेमी और गौवंश रक्षा हेतु सहायता देने वाले अधिकांश उद्योगपति ट्रैक्टर और फर्टिलाइजर से जुड़े है। अतः उनका निजी स्वार्थ भी बड़ी रुकावट है।

3. दूध के क्षेत्र में भैंस और जर्सी गायों की बढ़ती हुई भूमिका के कारण देशी गाय का आर्थिक पक्ष बेहद कमजोर हो गया है।

4. देश में सैकड़ों वर्षों से गौशाला की संस्कृति होते हुए भी आज भी देश में आदर्श और आर्थिक स्वावलंबी गौशालाएँ अपवाद रूप में ही हैं जिन्हें हम जनता और सरकार के समक्ष मॉडल के रूप में प्रस्तुत कर सके। गौशाला चलाने वालों की मानसिकता आज भी आर्थिक स्वावलंबन की न होकर मुख्यतः लोगों का भावनात्मक दोहन कर अधिक से अधिक दान एकत्र करने की ही अधिक रहती है। अतः **गौमये वसते लक्ष्मी** के हमारे उद्घोष के बावजूद भी गाय आर्थिक स्वावलम्बन का प्रतिरूप नहीं बन पाई है, जो दुखद है।

5. प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में गौशाला संस्कृति विद्यमान है। पूर्व में कत्लखाने यांत्रिक नहीं होते थे। वे छोटे–छो टे स्थानीय मांग की पूर्ति हेतु ही होते थे। स्वाधीनता प्राप्त होने तक देश से मांस निर्यात बोल कर कोई व्यापार नहीं होता था। अतः उस समय तक गौशालाओं से गौरक्षण के उद्देश्य की सम्पूर्ति हो जाती थी।

6. समय ने करवट बदली, अन्य व्यापार की तरह मांस और चमड़े के व्यापार का भी अब वैश्वीकरण हो गया है। बूचड़खाना आज स्थानीय मांग के अतिरिक्त भी लाभ देने वाला एक बड़ा व्यापार बन गया है। दूसरी तरफ आधुनिक कृषि और शहरी परिवेश में पशुओं की उपयोगिता सीमित हो गई है। यूरोप की तर्ज पर भारतवर्ष में भी सरकारी सोच के अनुसार गौवंश की उपयोगिता दूध ओर मांस के लिए ही रह गयी है। पंचगव्य और ड्रॉट एनिमल पॉवर का उपयोग और क्षेत्र सिकुड़ गया है।

7. ऐसी परिस्थितियों में हमारा दुर्भाग्य यह रहा कि समय के साथ-साथ हम अहिंसा प्रेमी, पशु प्रेमी, गौ प्रेमी और जीवदया प्रेमी समुदाय के लोग भावनात्मक कार्य पद्धति वाली उसी पुरानी मानसिकता से आज भी इन क्षेत्रों में कार्यरत है, जबकि आज की आवश्यकता प्रोफेशनल कार्यशैली की है।

8. आज कारपोरेट का जमाना है। नीरा राडिया प्रकरण के बाद अब कारपोरेट लॉबिंग की ताकत को पूरा देश जान चुका है। देश में ताकतवर मांस लॉबी, मांस निर्यात लॉबी, चर्म उद्योग लॉबी, फर्टिलाइजर लॉबी, पाल्ट्री लॉबी, सी फूड लॉबी और न जाने कौन- कौन सी लॉबी काम कर रही है जो हमारे गौवंश संरक्षण संवर्द्धन के क्षेत्र के सबसे बड़े रोड़े है। उनकी सरकारी तन्त्र पर पकड़ हमसे बहुत अधिक है। वे अधिकारियों व विशेषज्ञों की सोच को प्रभावित करने के लिए हर हथकण्डे प्रयोग में लाते हैं। उनके पास आर्थिक ताकत है तथा उनकी प्रोफेशनल कार्यशैली है।

9. इन परिस्थितियों में हमें भी अपनी कार्यशैली में बदलाव लाना जरुरी है। मात्र सरकार को कोसते रहना या व्यवस्था को दोषी करार कर देना पर्याप्त नहीं है।

10. देश में कुल पशुधन सन् 2003 के आंकड़ों के अनुसार 46 करोड़ 44 लाख था जिनमें 15 करोड़ 68 लाख देशी गौधन, 2 करोड़ 20 लाख विदेशी गौधन अर्थात कुल 17 करोड़ 88 लाख देश में कुल गौधन था।

11. देश में करीब दो करोड़ गौवंश का प्रतिवर्ष बूचड़खानों में कत्ल होता है। अर्थात 55 से 60 हजार गौधन प्रतिदिन। अन्य पशुओं के कत्ल के आंकड़े इनके अतिरिक्त है।

12. देश में अधिकृत करीब तीन हजार गौशालाएं हैं, जहां अन्दाजन 30 लाख गौवंश को संरक्षण प्राप्त है।

13. गौशालाओं की क्षमता पिछले 25-30 वर्षों में दो गुना से ज्यादा नहीं बढ़ पाई है।

14. गौशालाओं में करीब तीन हजार करोड़ रुपया प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रतिवर्ष खर्च बैठता है। प्रति गाय दस हजार रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से। कोर्ट कचहरी के, कत्लखाने विरोध आंदोलन के एवं अन्य खर्च अतिरिक्त हैं।

15. अधिकांश गौशाला खर्च जीवदया प्रेमी बंधुओं के आर्थिक सहयोग से ही पूरा होता है।

16. विचारणीय तथ्य यह है कि हमारी सामाजिक क्षमता 30 लाख गौ–संरक्षण तक सीमित है और कटने वाले गौवंश के आंकड़े है दो करोड़ गौधन प्रतिवर्ष।

17. क्या हम इतनी बड़ी संख्या में कटने वाले पशुओं को बचा पाने में सक्षम है ? क्या हमने सार्थक समाधान ढूँढने की दिशा में कोई बड़ी पहल की है ? क्या इसका कोई फार्मूला हमारे पास है?

18. हमारा प्रयास वैसा ही है जैसे पत्ते और टहनी की देखभाल करना, जबकि सम्पूर्ण जड़ ही खतरे में है, आज तो गाय के अस्तित्व पर ही खतरा मंडरा रहा है। असल में हम मूल समस्या की अनदेखी कर रहे हैं। हमारी सारी शक्ति - श्रम और संसाधन, मात्र भावनात्मक संतुष्टि हेतु कुछ पशुओं को प्रत्यक्ष अभय देने में ही समाप्त हो रही है।

19. हम अधिकांश लोग व्यापारी समाज में हैं। हम अपने व्यापार का प्रतिवर्ष हानि-लाभ का हिसाब बनाते है। उसका आकलन करते है। हमें अपने गौरक्षा अभियान का भी ऐसा ही एक आकलन तैयार करना चाहिए। देश स्वाधीनता के इन 64-65 वर्षों में उस महान आंदोलन के हानि-लाभ का क्या हिसाब–किताब है? स्थिति

क्यों बद से बदतर हुई है ? क्या हमें अपनी स्ट्रेटेजी में समय की मांग के अनुसार बदलाव नहीं लाना चाहिए?

20. वर्तमान में हमारी सारी शक्ति मात्र निम्न कार्यों में ही अधिक व्यय हो रही है -

* गौशाला चलाने में, अकाल के वक्त चारा व्यवस्था करने में
* बूचड़खाना जाती गायों को पकड़ने, संरक्षण देने और कोर्ट कचहरी करने में।
* बूचड़खाने के निर्माण का विरोध करने में ।

आईये, अब हम कुछ करणीय कार्य तथा सुझावों की चर्चा करते हैं :

1. हमें राज्यवार स्थिति की समीक्षा करके उसके अनुसार अलग-अलग स्ट्रेटेजी बनाकर कार्य करना चाहिए। गुजरात और राजस्थान की स्थिति अलग है, बंगाल, पूर्वोत्तर राज्य और दक्षिण के तमिलनाडु व केरल की भिन्न स्थिति है। राज्यवार प्रति व्यक्ति दूध और मांस के खपत के आंकड़ों से इसे ठीक से समझा जा सकता है। गुजरात और राजस्थान में जहां प्रति व्यक्ति, प्रति माह मांस उत्पाद पर खर्च मात्र दस रुपये है वहीं पश्चिम बंगाल, केरल और पूर्वोत्तर राज्यों में यह सौ-सवा सौ रुपया है। इसके अतिरिक्त जल, कृषि, भूमि, पशु उपलब्धता व अन्य स्थितियां भी हर राज्य की भिन्न-भिन्न है, अतः सब राज्यों के लिए एक सी कार्य योजना कारगर नहीं हो सकती।

2. सम्पूर्ण गौशाला व्यय के एक शतांश का कम से कम दसवां भाग अर्थात् करीब तीन करोड़ रुपया प्रतिवर्ष प्रोफेशनल ढंग से कार्यरत समग्र सोच वाले व्यक्तियों के नेतृत्व में कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई सदृश शहरों में सम्पूर्ण साधन सम्पन्न कार्यालय खर्च हेतु प्रावधान करना आज समय की जरूरत है।

3. कार्यालय व्यय की उपयोगिता और प्रासंगिकता को ठीक से समझना बेहद जरूरी है।

4. इन कार्यालयों का कार्य देशव्यापी कार्यकर्ताओं की नेटवर्किंग स्थापित करना, सम्पूर्ण तथ्यगत आंकड़ों की सूक्ष्म समीक्षा करना, डाटा बैंक का कार्य करना तथा योजना आयोग स्तर पर, विशेषज्ञों के स्तर पर व सरकारी तंत्र के स्तर पर अधिकारियों को प्रभावी ढंग से अपने पक्ष में करने हेतु उपक्रम करना। जैसे व्यापार और उद्योग जगत फिक्की व एसोकैम जैसे संगठन के माध्यम से करते हैं।

5. जब तक हम ऐसे कारपोरेट कार्यालय की उपयोगिता को स्वीकार नहीं करते हैं, तब तक इस समस्या का जड़ से उपचार हमें सम्भव नहीं लगता।

6. पशुओं की उपयोगिता के दायरे को बढ़ाना, आर्गेनिक कृषि को बढ़ावा देना, देशी नस्ल सुधार के कार्यक्रम को बढ़ावा देना आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्य हमें करने हैं।

7. गाय गौशाला में नहीं, किसान के पास और खेत में ही सुरक्षित रह सकती है। उन्हें अर्थ भार से मुक्त करने की दिशा में सार्थक और कारगर उपाय खोजने होंगे। सामाजिक और सरकारी, दोनों स्तर पर। तभी देश में सम्पूर्ण गौरक्षा संभव है।

8. देश में मांस की मांग कम हो, इसके लिए व्यापक स्तर पर मांसाहार बहुल क्षेत्रों में शाकाहार का प्रचार-प्रसार करना होगा। वर्तमान में देश में मांस की खपत प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष डेढ़ किलों से बढ़कर तीन किलो अर्थात दुगुनी हो गई है।

9. देश के युवा वर्ग को इस दिशा में विशेष जागरूक बनाना होगा। क्योंकि भविष्य के वे ही सक्रिय नागरिक बनने वाले हैं।

10. देश के प्रत्येक राज्य एवं जिले में कम से कम एक आर्थिक स्वावलम्बी आदर्श गौशाला की स्थापना करनी होगी, जो आदर्श मॉडल के रूप में प्रस्तुत की जा सके। मात्र भाषण देने से या लेख लिखने से यह कार्य संभव नहीं होगा।

11. वर्तमान में देश में इन क्षेत्रों में कार्यरत लोगों के बीच आपसी संवाद की बेहद कमी है, आपस में कोई समन्वय नहीं है। उसे इन कार्यालयों के माध्यम से दूर करना समय की मांग है। **साथ आना शुरुआत है, साथ रहना प्रगति है और साथ काम करना ही सफलता की कुंजी है।** Coming together is begining,

keeping together is progress and working together is success यह अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध कहावत है। अतः आईये, हम मिलकर काम करें । हमारे बीच आपसी सम्वाद का होना बेहद महत्वपूर्ण है।

12. देश में आज चार से पांच लाख पशु और करीब पचास लाख से अधिक पक्षी प्रतिदिन मांसाहारियों के पेट में पहुंच जाते है और उन्हें अकाल मरण को प्राप्त होना पड़ता है।

13. वर्ष 2006-07 में जहां देश में कुल मांस उत्पादन मात्र 65 लाख टन का था वहीं वर्ष 2011-12 के लिए उसका अनुमानित लक्ष्य 105 लाख टन का है। इसी प्रकार अण्डे का उत्पादन इस दौरान 4900 करोड़ से बढ़कर लक्ष्य 7890 करोड़ अण्डों के उत्पादन का है। तय है यह सब पशु हत्या को बढ़ावा देकर ही होने वाला है।

14. आपमें से बहुत से लोग जानते हैं कि हमने अकेले ने 10वीं पंचवर्षीय योजना के मांस संबंधी सात सदस्यीय उपसमिति में सदस्य नामित होकर सरकार की 56 हजार ग्रामीण बूचड़खानों के निर्माण की योजना को सम्पूर्ण निरस्त करवा पाने की ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की थी। फलस्वरूप योजना के उन पांच वर्षों के काल में देश से मांस निर्यात का व्यापार एक निश्चित सीमा तक ठहरा रहा और करोड़ों करोड़ पशुओं को प्रतिवर्ष अप्रत्यक्ष अभय मिला। 11वीं योजना में हमलोग समाज के सहयोग के अभाव में कोई भूमिका नहीं निभा पाये, फलतः इस योजना काल के पहले तीन वर्षों में ही देश से मांस निर्यात का आंकड़ा तीन गुणा वृद्धि को प्राप्त हो गया। यह तथ्य आप सबके सामने ऑन रिकार्ड है। मांस निर्यात का आंकड़ा 17-18 सौ करोड़ से बढ़कर 54 सौ करोड़ के आस-पास पहुंच चुका है।

15. सरकार अभी बारहवीं पंचवर्षीय योजना हेतु समितियों के गठन की प्रक्रिया चालू कर चुकी है। नामों पर विचार चल रहा है। हमें पता चलते ही हमने इस बार पुनः सक्रिय भूमिका निभाने हेतु अपने प्रयास तेज कर दिये। कम से कम 20-25 लाख रुपयों की व्यवस्था करने हेतु हमने संस्था के माध्यम से समाज को सहयोग हेतु निवेदन किया। परंतु दुर्भाग्य है कि लोगों की सोच को देखिये, संस्था को तीन-चार महीने में मात्र पन्द्रह सौ रुपये प्राप्त हुए है और साथ ही दर्जनों पत्र इस अपेक्षा से आये हैं कि हम पूर्व की तरह इस बार भी सरकार पर नवीन बूचड़खानों के निर्माण पर पूरी तरह से रोक लगवा पाने में सफलता प्राप्त करें। इस वर्ष दस माह में हमारी अहिंसा फेडरेशन संस्था को मात्र पैंतालिस हजार रुपयों की प्राप्ति हुई है। हमारे विशाल कार्यालय में हम अकेले ही चपरासी और क्लर्क से लेकर ऊपर तक सबकुछ है। आप सोच सकते हैं कि इन सीमित संसाधनों से क्या किया जा सकता है ? पिछले करीब बीस वर्षों से कमोवेश इन्हीं परिस्थितियों में हम किसी प्रकार कार्य कर रहे हैं। यह है हमारी अहिंसा के लिए, जीवदया के लिए और गौरक्षा के लिए सामाजिक सोच की स्थिति। अब चिन्तन आपको करना है कि **आप मात्र टहनियों की देखभाल करना चाहते है या जड़ को भी सुरक्षित करना चाहते है?** प्रश्न देशी नस्ल के अस्तित्व को बचाये रखने का है? प्रश्न जीवदया की मूल भावना का है? प्रश्न सह-अस्तित्व के सिद्धांत की रक्षा का है? गेंद अब आपके पाले में है। निर्णय अब आपको करना है कि आप भावनात्मक कार्यशैली चाहते है या प्रोफेशनल कार्यशैली? प्रश्न हमारी भावी पीढ़ी को सुरक्षा देने का है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में -

जीना हो तो पूरा जीना, मरना हो तो पूरा मरना,
बहुत बड़ा अभिशाप जगत में, आधा जीना आधा मरना।
और अन्त में– **यह अंधेरा इसलिए है, खुद अंधेरे में है आप,**
आप अपने दिल को एक दीपक बनाकर देखिए।

प्राप्त : 10.02.2011

✲ महामंत्री - अहिंसा फेडरेशन
46, स्ट्राण्ड रोड, तीन तल्ला,
कोलकाता-700 007

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

मदुरै की पहाड़ियों का नष्ट होता पुरावैभव

■ हेमन्त कुमार जैन*

मदुरै के आसपास कई पहाड़ियों में जैन शिलालेख, मूर्तियां बहुत प्रचीन समय की उत्कीरित हैं- इनमें कई गुफाओं में भी है, प्राचीन समय में यहां जैन धर्म का खूब प्रचार था, राजा भी जैन थे-(पान्डय नरेश) आदि। समय के प्रभाव से इन राजाओं को शैव लोगों ने अपनी चालाकियों से प्रभावित कर लिया और जैन साधुओं के प्रति घृणा व विरोध का वातावरण बना दिया, एक घटना के अनुसार लगभग 8000 जैन साधु एवं श्रावकों को शूली पर चढ़ा कर मार डाला गया व तेलघाणी में पेर दिया। मदुरै के मीनाक्षी मंदिर में म्यूजियम के भित्ति चित्रों में इस घटना का चित्रण किया हुआ है। जहाँ करीब 200 चित्र 10'x8' की साइज के लगभग है और उसका वर्णन प्रत्येक चित्र का अंग्रेजी भाषा में किया हुआ है। इसका उद्देश्य जैनों के प्रति नफरत पैदा करना व उनका मखौल उड़ाना है और भी कई दीवारों में बड़े चित्र तेलघाणी में जैन साधुओं को पेरते हुए दिखाया गया है। यही नहीं याद ताजा करते रहने के लिहाज से प्रतिवर्ष मदुरै के पास ही एक स्थान पर इस घटना की स्मृति में उत्सव मनाया जाता है, जिसके हजारों नर-नारी सोत्साह भाग लेते हैं जैसे हम दशहरे में रावण को मारते हैं। आप इंटरनेट से भी मदुरै के आसपास की पहाड़ियों पर जैन मूर्तियों का सजीव चित्रण देख सकते हैं।

इन पहाड़ियों में बहुत अच्छी क्वालिटी का ग्रेनाइट होता है। इसका ठेका व्यापारियों को दिया गया है जो रातदिन यहां विस्फोट करते रहते हैं। डिपार्टमेंट ऑफ आर्कोलाजी का भी कोई डर किसी को नहीं है। विस्फोट से कई जगह दरारें आ रही हैं। यदि समय रहते चेता नहीं गया तो ये हमारी प्राचीन यादगारें सब समाप्त हो जाएगी। शायद विरोधी लोग भी यही चाहते हैं।

इसी तरह मैदूरापुर जो चैन्नई में है - वहां अभी एक बड़ा शैव मंदिर है। मंदिर के बाहर एक बहुत बड़ा चौकोर तालाब है जिसमें पानी भरा रहता है। कहते है कि पहले यहां जैन बस्तियां थी। राजा के प्रभाव से जैन समाज को यातनाएं देकर उन्हें वहां से निकाल दिया या मार दिया गया फिर उनके मकानों को नष्ट कर सारा गड़ा हुआ माल लूट लिया गया। यहीं नहीं करीब 15-20 फुट गहरा गड्डा खोदकर जमीन में गढ़ा हुआ सोना चांदी, रकम निकाल ली गई और कालान्तर में उसे बहुत बड़े क्षेत्र को गहरा आयताकार खुदवाकर उसे विशाल तालाब का रूप दे दिया गया। आज उसमें पानी भरा रहता है, उस मंदिर में लगभग 100 विभिन्न साधु सन्यासियों की प्राचीन मूर्तियाँ भी है, यहां आजकल खूब धार्मिक उत्सव आदि होते रहते हैं।

ये तो एक दो उदाहरण है ऐसे कई और भी स्थान है जहां प्राचीन जैन स्थापत्य को विनष्ट कर अन्यान्य मान्यताएं जबरदस्ती थोपी गई हैं। जैसे वैलोर में अर्काट की पहाड़ियों में ऊपर शिखर बंद मंदिर में एक बड़ी पद्मासन प्रतिमा को उखाड़ दिया और उसके निशान साफ नजर आते हैं। कमरे में शिवलिंग स्थापित है गुफाएं भी हैं नीचे गुफाओं में जैन शिलालेख मूर्तियां पुरातत्व विभाग के आधीन हैं शिखर तक जाने के लिए बड़ी विशाल सीड़ियां निर्मित हैं, गाँव में एक भी जैन नहीं है तो देख-रेख कौन करें ? यह सवाल है।

आवश्यकता इस बात की है कि दक्षिण भारत में ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं पर अनुसंधान किये जाए और उनके वास्तविक कारणों पर प्रकाश डाला जाये ताकि आगे जैन समाज संभलकर चले और इन घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो और शोधार्थी को डॉक्टरेट आदि व उचित पारितोषिक भी दिये जाए। समाज वैसे भी विधान, मूर्ति प्रतिष्ठायें कराता रहता है उससे तो यह कार्य ज्यादा अच्छा है।

मुझे तो यही लगता है कि किसी तरह से टोने-टोटके व संभादी विधाओं से राजा को प्रभावित किया गया। जैनों को उनके व्यापार, खेती आदि कार्यों में बाधाएँ की जाए, जमीनें छीन ली जाए, ऐसा होता होगा - इस प्रकार उस गांव या कस्बे से जैनों को विस्थापित कर दिया गया फिर उनके मकानों व खेतों पर कब्जा कर लिया गया और जब मंदिरों की देखभाल करने वाला कोई नहीं हो तो आसानी से उन्हें नष्ट कर धर्म परिवर्तन कर दिया गया होगा। अर्थात पीछे से कोई निशानी जैनत्व की न छोड़ी जाए मदुरै की पहाड़ियों में जो जैन मूर्तियां है वे बड़ी प्राचीन और ऐतिहासिक महत्व की है। हमारी प्राचीन सभ्यता अब केवल दक्षिण भारत में ही बची हैं और वे भी नाप-तोल कर धीरे-धीरे नष्ट की जा रही है।

सरकार में हमारा नेतृत्व है नहीं - श्वेताम्बर समाज को प्राचीन दिगम्बर धर्म की रक्षा से कोई मतलब भी क्यों हो ? और अब रहे सहे दिगम्बर लोग, उनमें भी भेदभाव बहुत है जैसे 20 पंथी, 13 पंथी, कहानपंथी तो बस फिर इन बातों की चिंता और परवाह किसे होगी यह एक ज्वलंत प्रश्न है।

✻ 729, बरकत नगर
जयपुर (राज.)

प्राप्त : 23.09.10

अर्हत् वचन के सम्बन्ध में तथ्य सम्बन्धी घोषणा

(फार्म - 4, नियम - 8)

प्रकाशन स्थल	:	इन्दौर
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक एवं प्रकाशक	:	डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	580, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर-452 001
मानद सम्पादक	:	डॉ. अनुपम जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	ज्ञानछाया, डी-14, सुदामा नगर, इन्दौर - 452 009
स्वामित्व	:	कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
मुद्रण व्यवस्था	:	सुगन ग्राफिक्स, एल.जी.11, ट्रेड सेंटर, साउथ तुकोगंज, इन्दौर

मैं डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

28.02.2011

डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

I.C.T.M. - 2010

हस्तिनापुर, 30-31 अक्टूबर 2010

* अनुपम जैन*

शोभित विश्वविद्यालय, मेरठ द्वारा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर द्वारा विकसित आधारभूत संरचनाओं (भवन, पुस्तकालय आदि) का उपयोग करते हुए दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर के परिसर में स्थापित गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ केन्द्र पर I.C.T.M. - 2010 (International Conference on Indian Civilization through Millenia) अर्थात 'सहस्राब्दियों में भारतीय सभ्यता' - 2010 शीर्षक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन 30-31 अक्टूबर 2010 को किया गया। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, गणिनी प्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी एवं उनके संघ की मांगलिक उपस्थिति से सम्पूर्ण सम्मेलन को अत्यन्त गरिमा प्राप्त हुई। इस सम्मेलन के 5 अकादमिक सत्रों में 56 आमंत्रित व्याख्यानों / शोध पत्रों की प्रस्तुति दी गई। सम्मेलन के अवसर पर पढ़े जाने वाले आलेखों की विस्तृत आख्या (Proceedings) का विमोचन भी उद्घाटन सत्र में कराकर इसका प्रतिभागियों में वितरण किया गया। इस आख्या में 4 खण्डों में 68 शोधपूर्ण आलेखों का प्रकाशन किया गया है। सम्मेलन के विभिन्न सत्रों का सत्रवार विवरण निम्नवत् है।

30.10.2010, प्रातः 11.00 बजे, उद्घाटन सत्र :-

मुख्य अतिथि	:	कुँवर शेखर विजेन्द्र, प्रतिकुलाधिपति-शोभित वि.वि., मेरठ
अध्यक्षता	:	प्रो. अनूप स्वरूप, कुलपति-शोभित वि.वि., मेरठ
वि. अतिथि	:	डॉ. आकाश आउची, जापानी विद्वान
संचालन	:	डॉ. अनुपम जैन, निदेशक-गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ, हस्तिनापुर

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने सरस्वती स्तोत्र के सस्वर पाठ से सम्मेलन का शुभारम्भ किया। स्वागत भाषण दिया सम्मे के संयोजक **प्रो. सुरेश चन्द्र अग्रवाल, मेरठ** ने। आपने शोभित विश्वविद्यालय की उपलब्धियों एवं गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय भी दिया। कर्मयोगी **ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन** ने संस्थान एवं शोधपीठ का परिचय देते हुए इस शांत, सुरम्य परिसर में सभी का स्वागत किया।

विशिष्ट अतिथि जापान स्थित शोकागकाई इंटरनेशनल से पधारें **डॉ. आकाश आउची** ने कहा कि हस्तिनापुर से महाभारत की पहचान जुड़ी है। वेद, उपनिषद और पुराणों में भारतीय सभ्यता के तत्त्व मौजूद हैं। बौद्ध धर्म भारत में ही जन्मा और चीन होते हुए जापान पहुंचा।

सम्मेलन की विषय वस्तु का परिचय देते हुए सत्र के अध्यक्ष **कुलपति प्रो. अनूप स्वरूप** ने कहा कि हमारा उद्देश्य भारतीय सभ्यता के प्रति जन-जन में जागृति पैदा करना है। उन्होंने कहा कि भारत देश में हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी, सिख, इसाई आदि अनेक संस्कृतियों का समागम एक साथ मिलता है तथा हर धर्म व समाज की प्राचीन सभ्यता इस देश से जुड़ी हुई है। अतः हमें वर्तमान में भारतीय सभ्यता पर समाज के बीच जागृति लाने की आवश्यकता है।

मुख्य अतिथि **कुंवर शेखर विजेन्द्रजी** ने कहा कि एक मंच पर विभिन्न विधाओं के विद्वानों को विभिन्न सभ्यता एवं संस्कृतियों पर अपने शोध से परिचित कराने का अवसर प्रदान करने हेतु यह सम्मेलन आयोजित है। सभी शिक्षाविद् अपने ज्ञान को समाज के मध्य आसानी से पहुंचा सकें और समाज में संस्कृति और सभ्यता के प्रति रुचि व चेतना जागृत हो सके, यही इसका उद्देश्य है।

गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने कहा कि इस युग में भारतीय संस्कृति का उद्भव जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के साथ हुआ है। आपने कहा कि भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम **भारत** पड़ा है। हस्तिनापुर का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि इस भूमि पर करोड़ों वर्ष पूर्व भगवान ऋषभदेव ने राजा श्रेयांस के करकमलों से प्रथम आहार ग्रहण किया था पुनः तीन तीर्थंकर भगवान शांति-कुंथु-अरहनाथ का जन्म भी इस हस्तिनापुर नगरी में ही हुआ। इस अवसर पर आपने

कौरव-पाण्डवों आदि के हस्तिनापुर से जुड़े अनेक प्रसंग सुनाते हुए भारतीय सभ्यता पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की सफलता हेतु मंगल आशीर्वाद दिया।

संस्थान के अध्यक्ष कर्मयोगी **ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन** ने शोधपीठ एवं संस्थान का परिचय दिया। पूज्य पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागरजी ने सभी अतिथियों को संस्थान का साहित्य प्रदान किया। अतिथियों को संस्थान द्वारा प्रतीक चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया। इस सत्र के उपरान्त रघुनाथ गर्ल्स कॉलेज द्वारा हस्तिनापुर को केन्द्र बनाकर लगाई गई एक भव्य कला प्रदर्शनी का उद्घाटन भी हुआ। रात्रि में देव संस्कृति वि.वि. हरिद्वार के छात्रों द्वारा देशभक्तिपूर्ण सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। सरघना के स्कूल के छात्रों द्वारा चित्रकला प्रतियोगिता भी आयोजित की गई। हस्तिनापुर शोध संस्थान, मेरठ द्वारा पश्चिमी उ.प्र. के विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों के पैनल सम्मेलन के मार्ग के दोनों ओर लगाये गये थे, जो सुखद चर्चा के केन्द्र रहे।

30.10.10, 2.30 – 5.00 तक प्रथम तकनीकी सत्र

स्थान : **आचार्य शांतिसागर हाल, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर**

अध्यक्षता : डॉ. अनुपम जैन, निदेशक-गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ, इन्दौर

संचालन : श्री उपेन्द्र गामी, शोभित वि.वि., मेरठ

वक्ता –

1. डॉ. दीपा गुप्ता, हरिद्वार
   वैदिक कालीन समाज में शिक्षा और पारिवारिक जीवन की अवधारणा
2. डॉ. रेणु शुक्ला, देहरादून
   Bodhisatva Ideal : A Combination of Cencern and Detachment
3. कु. निशा
   महाभारत में पर्यावरण चिन्तन
4. डॉ. अर्चना रानी, मेरठ
   भारतीय चित्रकला में रामविषयक प्राचीन पांडुलि पियाँ
5. डॉ. आराधना, मेरठ
   प्राचीन भारतीय परम्परायें और उनका महत्व
6. डॉ. अलका चड्ढा, मेरठ
   Rich Cultural legacy : Punjab
7. प्रो. एस.के. बंडी, इन्दौर
   Jain Astronomy
8. डॉ. पूनम लता सिंह, मेरठ
   कांगड़ा चित्रशैली में नायिका अंकन : एक संक्षिप्त परिचय
9. डॉ. प्रगति जैन, इन्दौर एवं डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर
   Mathematics Teaching with Historical Sources
10. डॉ. अलका तिवारी, गाजियाबाद
    विभिन्न कालों में नारी
11. सुश्री फरहीन जावेद, मेरठ
    Women Empowerment - A Realty or Myth
12. सुश्री रुही जावेद, मेरठ
    Culture : A Major Determinant of the Consumer Behaviour
13. डॉ. नाजिमा इरफान, मेरठ
    भारतीय कला की अमर धरोहर अजन्ता के भित्ति चित्र : अध्ययन

14. कु. आकांक्षा वर्मा, मेरठ

भारतीय इतिहास में परम्परा के विभिन्न आयामों की छूती चित्रकला

15. कु. सुप्रिया यादव, मेरठ

ताड़पत्रीय पोथियों में चित्रित कला सौन्दर्य

निम्न आलेख समयाभाव में पढ़े स्वीकार किये गये

16. प्रो. के. के. शर्मा, मेरठ

French & Indian Civilization

17. डॉ. गीता श्रीवास्तव, मेरठ

Ganadhian Philosophy and Buddhism : Relevence in the 21st Century

18. प्रो. रजनीश जैन, इन्दौर

The Improtance of Hindu Etiquette Namaskāra and Tilaka

19. डॉ. संजय जैन, इन्दौर

तत्वार्थ सूत्र एवं उसकी टीकाओं में निहित गणित

30.10.10, रात्रि 8.30 से 9.305, द्वितीय सत्र,

स्थान : **आचार्य शांतिसागर हाल, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर**

अध्यक्षता : प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल, शोभित वि.वि., मेरठ

संचालन : डॉ. रंजीत सिंह, शोभित वि.वि., मेरठ

वक्ता –

1. डॉ. जयप्रकाश द्विवेदी, द्वारका

भारतीय संस्कृति के सिद्धांत एवं वास्तुशास्त्रीय चिन्तन

2. श्री रोहिता ईश्वर, मैसूर

Aṣtanāyikā Sculptures in Hoysala Temple

3. श्रीमती शैफाली जैन, हस्तिनापुर

ज्योतिर्ज्ञानविधि : एक अप्रकाशित गणितीय कृति

4. डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

Some Newly Discovered Mathematical Manuscripts from Jaina Bhandārs

31.10.10, प्रातः 9.00–11.30, तृतीय सत्र

स्थान : **आचार्य शांतिसागर हाल, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर**

अध्यक्षता : डॉ. विजय साठे, डेक्कन कॉलेज, पूना

संचालन : श्री धर्मेन्द्र कुमार, शोभित वि.वि., मेरठ

वक्ता –

1. श्री जोसेफ मेन्युअल, भोपाल

Vedic Harappans : Some Observations

2. श्री रामविजय शर्मा, रायपुर

कुटरु जमींदारी की प्राचीन प्रतिमायें

3. डॉ. रजनी मिश्रा, भोपाल

Town Planning and Analytical Study of Remains in Dholavira Kutch (Gujrat) and other Harappan Sites

4. सुश्री मधुलता मिश्रा, सागर

मौर्यकाल में नारी की स्थिति

5. सुश्री अंकिता
Indian Women : Journey of Hope
6. डॉ. अनीता गोस्वामी, बरेली
Cultural and Historical Contacts : Ancient India & Western greece (6th C B.C. to 3.C., B.C.)
7. डॉ. स्नेहरानी जैन, सागर
सिंधु घाटी सभ्यता : एक मूक विरासत
8. डॉ. एम.डी. शर्मा, मेरठ
Science for Spirituality

31.10.10, प्रातः 9.00–10.30, चतुर्थ सत्र

स्थान : **गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ भवन, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर**
अध्यक्षता : प्रो. वी.पी. कौशिक
संचालन : श्री मुकेश मैथानी, शोभित वि.वि., मेरठ

वक्ता –

1. डॉ. नागेश दुबे, सागर
प्राचीन विश्व संस्कृतियों का भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति पर प्रभाव
2. डॉ. संजीव महाजन, मेरठ
Voilence Against Women in India
3. डॉ. प्रतिभा शुक्ला एवं श्रीमती मंजू गोएंदी, सोनीपत
संगीत की अविरल धारा, वैदिक काल से आज तक
4. डॉ. लक्ष्मी शंकर उपाध्याय, वाराणसी
वैदिक संस्कृति में विरासत
5. डॉ. संजीव कुमार शर्मा, मेरठ एवं श्री अभय सक्सेना, हरिद्वार
Wireless Data Transmission in Vedic Literature
6. डॉ. कमलेश महाजन, मेरठ
Status of Women in India : Some Issues
7. डॉ. महीपाल अग्रवाल, सोनीपत
ब्राह्मण एवं श्रमण परम्पराओं में वर्ण व्यवस्था
8. डॉ. नीरा गर्ग, सोनीपत
भारतीय संस्कार
9. डॉ. गरिमा त्यागी एवं अपर्णा वत्स
स्मृति काल में नारी शिक्षा

31.10.10, मध्यान्ह 12.00 – 2.00, पंचम सत्र

स्थान : **आचार्य शांतिसागर हाल, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर**
अध्यक्षता : प्रो. जे.पी. एन. द्विवेदी, द्वारका
संचालन : श्री आनंद गौरव, शोभित वि.वि., मेरठ

वक्ता –

1. डॉ. विजय साठे, पूना
The Archaeology of Great One -horned Indian Rhinoceros

2. श्री नीलांशु कौशिक, रायपुर एवं श्री सचिन तिवारी, पटना

Extinction in the Late Quaternary Period

3. डॉ. एस.एस. एल. श्रीवास्तव, मेरठ

Cultural and Economical Scenatio or the Indian Villegaes in the past

4. डॉ. सुरेखा मिश्रा, इन्दौर एवं डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

मध्यप्रदेश के जैन शास्त्र भंडारों में उपलब्ध प्रमुख पांडुलिपियां

5. डॉ. पुण्य बरुआ

Indian Civilization Through Millenia : Focussed Through the Parables

6. डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह

बींसवी सदी के पूर्वार्द्ध में नारी स्वातंत्र्य चेतना

7. डॉ. सुचित्रा मलिक, हरिद्वार

नारी : प्राचीन युग से आज तक

8. डॉ. वीणा विश्नोई शर्मा, हरिद्वार

अथर्ववेदे : दैवी चिकित्सायाःस्वरुपम्

9. डॉ. मुदिता अग्निहोत्री

कागर की आग : एक कुँमाउ नी महिला की कहानी

10. डॉ. रेखा रानी तिवारी

श्रीमद्भगवदगीता में कर्मयोग

11. प्रो. श्याम एन. पाण्डेय,

हस्तिनापुर : विकासशील महासखा वर्म का मूल स्थान

12. डॉ. स्नेहरानी जैन, सागर

जम्बूद्वीप

13. ब्र. स्वाति जैन, जैन धर्म हस्तिनापुर

निम्न आलेख समयाभाव जैन धर्म पढ़े स्वीकार किये गये :-

14. डॉ. शिवाली अग्रवाल

Empowerment of Women in Ancient India ! A Myth or Reality

15. डॉ. नीलिमा गुप्ता

भारतीय संस्कृति पर लोक कलाओं का प्रभाव

16. डॉ. दीप्ति कौशिक

A Journey - Women hood to Manhood : A Socio Economic Perspective

इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों में अपने आलेख प्रेषित किये उनमें से समय से प्राप्त होने वाले आलेखों में से कुछ का प्रकाशन Proceeding में किया गया एवं कुछ श्रेष्ठ आलेख विलम्ब से प्राप्त होने के कारण प्रकाशित नहीं हो सके। सम्मेलन में उनके न पधारने अथवा निर्धारित सत्र में विलम्ब से पधारने के कारण उनका वाचन भी न हो सका। ऐसे आलेखों का ICTM-2010 के विस्तृत कार्यक्रम में उल्लेख है।

31.10.2010 अपरान्ह 2.00-03.30 बजे, समापन सत्र :-

अध्यक्षता : **प्रो. अनूप स्वरूप, कुलपति-शोभित वि.वि., मेरठ**

वि. अतिथि : श्री वरुण अग्रवाल, निदेशक-इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, कोलकाता

संचालन : डॉ. अनुपम जैन, निदेशक - गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ, इन्दौर

कार्यक्रम का प्रारंभ पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के मंगलाचरण से प्रारंभ हुआ। आपने कहा कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का सम्मेलन हस्तिनापुर में आयोजित होना एक सराहनीय कदम है।

जम्बूद्वीप पर सभी लोग न केवल मंदिरों के दर्शन करते हैं अपितु यहां ज्ञानार्जन एवं अध्ययन का अवसर भी प्राप्त होता है।

सम्मेलन के संयोजक प्रो. एस.सी. अग्रवाल ने सम्मेलन की आख्या प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने प्रस्तुत किये गये सभी आलेखों की गुणवत्ता तथा सम्पूर्ण देश ही नहीं अपितु जापान से भी आये विद्वानों की सहभागिता पर संतोष व्यक्त किया। प्रतिभागियों की प्रतिक्रिया के क्रम में प्रो. जे.पी.एन. त्रिवेदी-द्वारका, श्री विजय साठे-पूना, श्री जोसेफ मेनुउल-भोपाल तथा श्री रोहिता ईश्वर, मैसूर विश्वविद्यालय -मैसूर ने अपने विचार व्यक्त किये।

समापन उद्‍बोधन देते हुए कुलपति प्रो. अनूप स्वरूप ने कहा कि हस्तिनापुर और उसके आस-पास के क्षेत्रों का संरक्षण बहुत जरूरी है यदि इसे अभी नहीं बचाया गया तो भविष्य में भी हमें इन उन्नत सभ्यता के कोई सबूत हाथ नहीं लगेंगे। उन्होंने हस्तिनापुर सहित आस पास के क्षेत्रों के रख रखाव हेतु एक संरक्षण निधि बनाने का प्रस्ताव किया एवं रूपये 10 लाख एकत्रित करने की घोषणा की जिसे सर्वानुमति से स्वीकार करते हुए शोभित विश्वविद्यालय - मेरठ, त्रिलोक शोध संस्थान - हस्तिनापुर एवं अन्य लोगों ने पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया इस अवसर पर हस्तिनापुर घोषणा पत्र सम्मेलन की उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया गया।

सम्मेलन के समापन सत्र में सर्वानुमति से पारित 'हस्तिनापुर घोषणा पत्र'

भारतीय सभ्यता सहस्त्राब्दियों से शीर्षक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (ICTM-2010) में सम्मिलित हम सभी प्रतिभागी एवं प्रतिनिधिगण सर्वसम्मति से यह संकल्प करते हैं कि हस्तिनापुर में एवं इसके समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राचीन सभ्यता के शोध, खोज एवं संरक्षण हेतु 10 लाख रुपये की प्रारंभिक राशि से एक ध्रुव फण्ड की स्थापना करेंगे। साथ ही हस्तिनापुर एवं इसके परिवर्ती क्षेत्रों में स्थित पौराणिक, पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक अवशेषों को यूनेस्को विश्व सम्पदा घोषित करने की मुहिम की उद्‍घोषणा करते हैं।

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने आशीर्वचन में कहा कि भारतीय सभ्यता हमारी धरोहर है। यदि हम इस धरोहर को गंवा देगें तो हमारे पास कुछ नहीं बचेगा। भारतीय संस्कृति को विद्वान ही जीवित रख रहे हैं। उन्होंने विद्वानों का आह्वान किया कि आप सब भारतीय संस्कृति से प्रेम करते हैं इसलिये आपकी मातृभाषा कोई भी हो, भले ही आप दक्षिण भारत के हो किन्तु आपको अपने लेख का सारांश राष्ट्रभाषा हिन्दी में जरूर देना चाहिए जिससे आपके शोध निष्कर्षों को हिन्दी भाषी भी अच्छे से समझ सकें। सभी प्रतिभागियों ने गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ की मातृ संस्था दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के सुरम्य परिसर, यहां के व्यवस्थापकों के आत्मीय व्यवहार, संस्कृति के प्रति अनुराग, आतिथ्य की भूरि-भूर प्रशंसा की और यह सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि (I.C.T.M.-2011) एवं आगे भी यह आयोजन इसी परिसर में आयोजित किया जाये। इस प्रस्ताव पर कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन एवं कुलपति प्रो. अनूप स्वरूप ने अपनी सहमति प्रदान की।

अगले वर्ष पुनः जम्बूद्वीप के परिसर में मिलने के भाव एवं पूज्य माताजी के वात्सल्य की सुखद अनुभूतियों सहित सभी ने विदा ली।

✲ आयोजन सचिव - सम्मेलन
निदेशक गणिनी ज्ञानमती, शोधपीठ
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर - 250404

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

राष्ट्रीय जैन विद्या संगोष्ठी

इंदौर, 1-2 दिसम्बर 2010

* अनुपम जैन*

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इंदौर द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित होने वाली राष्ट्रीय जैन विद्या संगोष्ठी, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (दि. जैन उदासीन आश्रम) इंदौर के परिसर में 1-2 दिसम्बर 2010 को आयोजित की गई। इस वर्ष संगोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में फ्लोरिडा अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मियामी (फ्लोरिडा) अमेरिका के धार्मिक अध्ययन केन्द्र के निदेशक एवं प्रथम भगवान महावीर प्रोफेसरशिप से सम्मानित प्रो. नेथन केट्ज पधारें। उदघाटन एवं समापन सत्र के अतिरिक्त संगोष्ठी के 3 तकनीकी सत्रों में 14 शोध पत्रों का वायन किया गया। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर

जैन विद्या संगोष्ठी में समागत विद्वत् जन

1. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार 2009 समर्पण।
2. दुर्लभ पाण्डुलिपि प्रदर्शनी।
3. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व्याख्यान।
4. क्षु. जिनेन्द्रवर्णी स्मृति व्याख्यान।

भी आयोजित किये गये। इनकी रिपोर्ट अलग से प्रकाशित की जा रही है।

संगोष्ठी का सफल संयोजन प्रो. श्रेणिक बंडी, श्री होलास सोनी एवं श्री रमेश कासलीवाल के त्रिसदस्यीय संयोजक मंडल द्वारा किया गया।

संगोष्ठी के विभिन्न सत्रों की सत्रवार आख्या निम्नवत् है।

उदघाटन सत्र, 1.12.10 प्रातः 9.30-11.00 बजे

सत्र की अध्यक्षता देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. पी. के. मिश्र ने की एवं मुख्य अतिथि के रूप में प्रो. नेथन केट्ज (F.I.U. मियामी) उपस्थित थे। वि. अ. के रूप में डॉ. एम. के. पाण्ड्या, पूर्व अध्यक्ष JAINA-U.S.A.उपस्थित रहे। श्रीमती साधना दोशी के सस्वर मंगलाचरण से प्रारंभ इस सत्र में मंच पर पं. रतनलाल जैन शास्त्री, प्रो. नरेन्द्र धाकड़, अतिरिक्त संचालक-उच्चशिक्षा (इंदौर), प्रो. प्रेमसुमन जैन (श्रवणबेलगोला), प्रो. गोकुलचंद जैन (वाराणसी), प्रो. ललिताम्बा (बैंगलोर), प्रो. गणेश कावड़िया (इंदौर), डॉ. अजित कासलीवाल (इंदौर) उपस्थित रहे। स्वागत भाषण डॉ. नरेन्द्र धाकड़ ने दिया तथा संस्था परिचय एवं संगोष्ठी की विषयवस्तु का परिचय प्रो. श्रेणिक बंडी ने दिया।

श्रीमती साधना डोसी के मंगलाचरण से प्रारंभ उद्‍घाटन सत्र को संबोधित करते हुए प्रो. नेथन केट्‍ज ने कहा कि **कुन्दकुन्द आचार्य बहुत बड़े संत थे । उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत सभी के लिए महत्वपूर्ण हैं । हिन्दू एवं बौद्ध धर्म को गहराई से समझने हेतु जैन धर्म का अध्ययन आवश्यक है । जैन धर्म के अध्ययन बिना हिन्दू एवं बौद्ध धर्म का ज्ञान अधूरा ही होगा । विश्व में आज अनेकों समस्याएं मुंह खोले खड़ी हैं । इनका समाधान अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकांत को व्यावहारिक रूप में जीवन में अपनाने से ही संभव है ।** आपने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ केन्द्र के माध्यम से देवी अहिल्या वि.वि. इंदौर के सम्मुख अकादमिक आदान-प्रदान का प्रस्ताव रखा जिसे सत्र की अध्यक्षता कर रहे कुलपति प्रो. पी.के. मिश्र ने स्वीकार कर लिया। प्रो. मिश्र ने जैन, बौद्ध एवं हिन्दू धर्म में प्रतिपादित जीवन शैलियों की चर्चा की एवं विश्वास दिलाया कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को वि.वि. का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

अर्हत् वचन के विमोचन का दृश्य

प्रो. ललिताम्बा ने प्रो. केट्‍ज के व्याख्यान का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया एवं अपनी ओर से कहा कि **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं डॉ. अनुपम परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं । डॉ. कासलीवाल का योगदान भी सराहनीय रहा है ।**

इस अवसर पर अर्हत् वचन वर्ष 22, अंक 3-4, जुलाई-दिसम्बर 2010 अंक का विमोचन भी प्रो. केट्‍ज एवं कुलपति महोदय द्वारा किया गया ।

दि. 1.12.10, प्रातः 11.30 – 12.30 प्रथम तकनीकी सत्र (आमंत्रित व्याख्यान)

अध्यक्षता	प्रो. नरेन्द्र धाकड़, अति. संचालक-उच्चशिक्षा, इंदौर-उज्जैन संभाग
संचालन	प्रो. एस.के.बंडी, विभागाध्यक्ष-गणित, आई.पी.एस. एकेडमी, इंदौर
वक्ता	1. डॉ. सरोज कोठारी, महारानी लक्ष्मी बाई शा.कन्या महाविद्यालय, इंदौर "Relevence of Forgiveness for Pshycological Well Being of Human Society" 2. श्रीमती केशर जैन, इंदौर "Shri Virachand Raghavaji Gandhi & his Contribution to Jainism" 3. डॉ. प्रगति जैन, संघवी इंस्टीट्‍यूट ऑफ मैनेजमेन्ट, इंदौर "Jaina Elucidation of Mathematics with Reference to Dhavalā Text" 4. डॉ. संगीता विनायका, इंदौर 'मानवीय मूल्यों पर आधारित जैन संस्कृति'

दि. 1.12.10, मध्या. 02.00–03.00 द्वितीय तकनीकी सत्र (शोध पत्र वाचन)

अध्यक्षता	डॉ. देवकुमार जैन, प्राध्यापक-हिन्दी, रायपुर
संचालन	डॉ. प्रगति जैन, संघवी इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, इंदौर

वक्ता 5. डॉ. सुशीला सालगिया, सहसंपादिका-सन्मतिवाणी, इंदौर
'शिक्षा के उन्नयन में जैनाचार्यों का योगदान'

6. श्री जितेन्द्र शर्मा, स. प्राध्यापक-गणित,
टूबा इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नॉलॉजी, इंदौर
"A Comprative Study of Two Mathematical Texts of Karṇānuyoga Group"

7. श्री मनोज दुबे, प्राध्यापक-गणित, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, इंदौर
गणितसार-संग्रह में विद्यमान गणितीय मनोरंजन के तत्व

8. श्रीमती समता जैन, स. प्राध्यापक-हिन्दी, श्री जैन दिवाकर महाविद्यालय, इंदौर
'मानवीय मूल्यों की संवाहिका-गणिनी ज्ञानमती'

दिनांक 2.12.10 प्रातः 11.30-12.30 तृतीय तकनीकी सत्र (शोध पत्र वाचन)

अध्यक्षता श्री सूरजमल बोबरा, निदेशक-ज्ञानोदय फाउण्डेशन, इंदौर

संचालन डॉ. अनुपम जैन, मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर

वक्ता 9. डॉ. रेखा जैन, शिक्षिका-गुजराती स्कूल, इंदौर
'गणिनी ज्ञानमती माताजी का भाव वैभव'

10. डॉ. मनीषा जैन, इंदौर
'जैन एवं जैनेतर दर्शन के परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म की मानवीय प्रकृति'

11. डॉ. सुरेखा मिश्रा, पुस्तकालयाध्यक्ष-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
'पाण्डुलिपियाँ : भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि'

12. डॉ. (श्रीमती) सरोज जैन, अध्यक्ष-प्राकृत विभाग,
राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन केन्द्र, श्रवणबेलगोला,
'जैन साहित्य में मानव मूल्य'

निम्नांकित 2 आलेख, संबद्ध विद्वानों के समय पर उपस्थित न हो पाने के कारण पढ़े स्वीकार किये गये।

13. डॉ. संध्या जैन, स. प्राध्यापिका-हिन्दी, क्लॉथ मार्केट कन्या महाविद्यालय, इन्दौर
'मानवीय विकृतियाँ एवं जैन धर्म'

14. कु. रजनी जैन, शोध छात्रा-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
'जैन पाण्डुलिपियों में परिलक्षित जैनाचार्यों का मानवीय दृष्टिकोण'

दि. 2.12.10 अपरान्ह 3.00 – 4.00, समापन सत्र

अध्यक्षता प्रो. नवीन सी. जैन, पूर्व निदेशक - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

संचालन डॉ. प्रकाश चन्द जैन, सदस्य - निदेशक मण्डल, इन्दौर

संगोष्ठी की आख्या की प्रस्तुति के साथ ही प्रतिभागियों ने संगोष्ठी को अत्यन्त सफल निरूपित किया। प्रो. नेथन केट्ज के आगमन से ज्ञानपीठ का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय बन गया है। इस संगोष्ठी के मध्य आयोजित पांडुलिपि प्रदर्शनी, पुरस्कार समर्पण समारोह एवं 2 आमंत्रित व्याख्यानों की आख्या अग्रांकित है।

दुर्लभ पांडुलिपियों की प्रदर्शनी

स्वर्ण चित्रांकित पांडुलिपियों का आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में अवलोकन करते कुलपति जी

राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन, नईदिल्ली द्वारा मनोनीत पांडुलिपि स्रोत केन्द्र (MRC) तथा पांडुलिपि संरक्षण केंद्र (MCC) कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा 1-7 दिसम्बर 2010 को दुर्लभ पांडुलिपि प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसका उदघाटन प्रो. नेथन केट्ज (FIU - Miyami U.S.A.) तथा प्रो. पी.के. मिश्र (कुलपति-देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर) द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। प्रदर्शनी में स्वर्णाक्षरांकित एवं स्वर्ण चित्रांकित पांडुलिपियों को देखकर माननीय अतिथियों ने सुखद आश्चर्य व्यक्त किया एवं ज्ञानपीठ द्वारा किया जा रहा संरक्षण कार्य संस्कृति की महान सेवा निरूपित की।

दुर्लभ प्राचीन पांडुलिपियों का अवलोकन करते अतिथि

ज्ञानपीठ में संग्रहीत लगभग 500 वर्ष प्राचीन पांडुलिपियों को देखकर कुलपति प्रो. मिश्र ने इनके सूचीकरण एवं संरक्षण की आवश्यकता बताई। इस पर यह निर्णय किया गया कि संरक्षण तो (MCC) के अंतर्गत किया ही जा रहा है अकादमिक जगत तक इनकी जानकारी पहुंचाने हेतु इन्दौर में संरक्षित समस्त पांडुलिपियों की सूचियों को क्रमिक रूप से प्रकाशित करने का निश्चय किया जाये। इस हेतु इन्दौर ग्रंथावली शीर्षक से 10 भाग में लगभग 7000 पांडुलिपियों के विवरण प्रकाशित करने का प्रस्ताव बना। इन्दौर ग्रंथावली के प्रथम भाग में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में संग्रहीत पांडुलिपियों का विवरण प्रकाशित किया जाये जिससे शेष 49 भागों का एक माडल तैयार हो सके। प्रदर्शनी के अवलोकनोपरान्त विज्ञ महानुभावों द्वारा व्यक्त सम्मतियाँ इसी अंक में मत-अभिमत के अन्तर्गत प्रकाशित हैं।

प्रो. प्रेमसुमन जैन कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार-2009 से सम्मानित

प्रो. प्रेमसुमन जैन को पुरस्कार समर्पण का दृश्य

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर के अंतर्राष्ट्रीय शोध केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा देश का प्रतिष्ठित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार - 2009 राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, श्रवणबेलगोला के निदेशक प्रो. प्रेमसुमन जैन को प्रदान किया गया। प्रो. जैन को यह पुरस्कार प्राकृत भाषा के अध्ययन, अनुसंधान तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जैनाचार्यों के योगदान के प्रचार-प्रसार हेतु प्रदान किया गया। ज्ञातव्य है कि प्रो. जैन अनेक वर्षों तक मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय-उदयपुर में प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग के विभागाध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कर चुके हैं।

प्रो. प्रेमसुमन जैन ने इस अवसर पर कहा कि जैन आगमों की मूल भाषा प्राकृत है। अतः प्राकृत के अध्ययन और अनुसंधान के अभाव में न तो इतिहास सुरक्षित रखा जा सकता है और न संस्कृति। जैन शास्त्र भण्डारों में पाण्डुलिपि के रूप में संग्रहीत जैनाचार्यों की अथाह ज्ञान राशि को प्रकाश में लाने हेतु प्राकृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता है कि श्रवणबेलगोला के संस्थान द्वारा संचालित पत्राचार पाठ्यक्रम का एक प्रमुख केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ है।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए इंजी. श्री एस.के. जैन ने कहा कि **मैं जबसे कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ से जुड़ा हूँ, इसकी गतिविधियां निरन्तर बढ़ रही हैं, जो संतोष का विषय है। फ्लोरिडा अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मियामी के निदेशक प्रो. नेथन केट्ज के आगमन के साथ इस शोध केन्द्र की गतिविधियों को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से एक नया सूत्रपात हुआ है। जो जैन संस्कृति की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। आज जरूरत इस बात की है कि आधुनिक संचार साधनों, इंटरनेट आदि का प्रयोग कर संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया जाये।**

उच्चशिक्षा विभाग के इंदौर-उज्जैन संभाग के अति. संचालक डॉ. नरेन्द्र धाकड़ ने कहा कि **'सम्प्रदायगत मतभेदों, क्रियाकाण्डों एवं वैचारिक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर भारतीय संस्कृति विशेषतः जैन संस्कृति के अध्ययन, अनुसंधान कार्य में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का योगदान प्रशंसनीय है।** उन्होंने प्राकृत भाषा के प्रचार में प्रो. प्रेमसुमन जैन द्वारा प्रदत्त योगदान की प्रशंसा की।

स्वागत भाषण संस्थाध्यक्ष डॉ. अजित कासलीवाल ने दिया तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की बहुआयामी गतिविधियों तथा अब तक की उपलब्धियों की जानकारी संस्था सचिव डॉ. अनुपम जैन ने दी।

मंच पर पं. रतनलाल जैन, श्रीमती आशा सोनी (पार्षद), डॉ. देवकुमार जैन-रायपुर, डॉ. गोकुलचंद जैन-वाराणसी, प्रो. श्रेणिक बण्डी, श्री सूरजमल बोबरा आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

अतिथियों का स्वागत श्री होलास सोनी, डॉ. सुरेखा मिश्रा, श्री अरविन्द कुमार जैन, श्री माणकचंद जैन आदि ने किया। मंगलाचरण श्रीमती सुलोचना बड़जात्या ने किया तथा मेरी भावना का पाठ वीर निकलंक के सम्पादक श्री रमेश कासलीवाल ने किया। आभार माना ट्रस्टी श्री प्रदीप कासलीवाल ने।

संस्कृति संरक्षण हेतु इतिहास का ज्ञान जरूरी -सूरजमल बोबरा

संबोधित करते हुए श्री बोबरा जी, मंचासीन डॉ. विनायका एवं डॉ. सुनीता जैन

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सम्पूर्ण देश में मनाये जा रहे प्रथमाचार्य **चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर वर्ष में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व्याख्यान** का आयोजन दिनांक 1 दिसम्बर 2010 को रात्रि 8.00 बजे किया गया। इसकी अध्यक्षता दर्शन शास्त्र के उद्भट विद्वान प्रो. गोकुलचन्द जैन-वाराणसी ने की। डॉ. सुनीता जैन द्वारा मंगलाचरण में गोम्मटेशथुदि के सस्वर पाठ के बाद डॉ. अनुपम जैन ने आचार्य श्री के जीवन पर प्रकाश डाला।

मुख्य वक्ता श्री सूरजमल बोबरा ने जैन इतिहास के पक्षों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि जब भारत का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लिखा जा रहा था तब जैन इतिहास से संबंधित तथ्यों की घोर उपेक्षा हुई। जैन पुराणों एवं अन्य जैन साहित्य में उपलब्ध संदर्भों को न कोई महत्व दिया गया और न कोई विश्लेषण किया गया। इसी कारण आज जैन इतिहास बहुत विश्रृंखलित है। जैन धर्म और इतिहास के विद्यार्थी टूटी कड़ियों को न जोड़ पाने के कारण ही तीर्थंकर परम्परा को कपोल कल्पित बताने लगते हैं। जबकि केवल महावीर ही नहीं पार्श्वनाथ और नेमिनाथ के ऐतिहासिक और साहित्यिक प्रमाण जैनेतर साहित्य में आज भी मिल रहे हैं। क्या कारण है कि भगवान आदिनाथ के बाद 20 तीर्थंकरों ने सम्मेदशिखर को ही मोक्ष प्राप्ति की साधना हेतु उपयुक्त पाया ? इन तीर्थंकरों के काल में सम्मेदशिखर का स्वरूप क्या था ? ऋषभनिर्वाण भूमि अष्टापद क्या आदिनाथ के काल में भी इसी प्रकार थी ? आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज ने बताया कि भगवान महावीर के समय इस देश में जैन धर्मावलम्बियों की संख्या 4 करोड़ से अधिक थी। फिर जैन धर्म का इतना ह्रास क्यों हो गया ? इन सब बिन्दुओं पर अनुसंधान के साथ ही **20वीं शती में आचार्य शांतिसागरजी द्वारा पुनर्व्यवस्थित की गई श्रमण परम्परा के अवदान और इतिहास को भी सही तरीके से संजोये जाने की जरूरत है।**

कार्यक्रम में प्रो. प्रेमसुमन जैन-उदयपुर, डॉ. सरोज जैन-उदयपुर, डॉ. देवकुमार जैन-रायपुर, डॉ. सुशील सालगिया, श्रीमती रेखा पतंग्या, श्रीमती उषा पाटनी, डॉ. प्रगति जैन, डॉ. मनीषा जैन, श्रीमती समता जैन, डॉ. सरोज कोठारी, श्रीमती समता जैन, श्री सुभाष भाचावत, श्री तरुण जैन, श्री तरीन मेहता, श्री अरविंद जैन, श्री माणकचंद जैन, श्राविकाश्रम की बहनें एवं उदासीन आश्रम के भैय्याजी आदि उपस्थित रहे। कार्यक्रम का सशक्त संचालन डॉ. संगीता विनायका ने किया एवं आभार माना डॉ. सुरेखा मिश्रा ने।

क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

प्रो. संघवी अध्यक्षीय संबोधन देते हुए एवं मंचासीन श्री रमेश कासलीवाल

20वीं सदी के प्रथमाचार्य, चारित्रचक्रवर्ती आ. शांतिसागर वर्ष में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा **क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी स्मृति व्याख्यान** 02.12.10 को मध्यान्ह में आयोजित किया गया। आचार्य श्री शांतिसागर वर्ष में आयोजित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों की श्रृंखला में इस व्याख्यान का शीर्षक रखा गया **'जैन धर्म और मानव कल्याण।** प्रो. आर.के. संघवी, विभागाध्यक्ष-भौतिकी, शास. होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इंदौर की अध्यक्षता में आयोजित इस व्याख्यान के मुख्य वक्ता के रूप में राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, श्रवणबेलगोला के निदेशक प्रो. प्रेमसुमन जैन पधारे। आपने कहा कि 'जैन धर्म के इतिहास में आदि तीर्थकर भगवान ऋषभदेव ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिये असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छः विद्याओं का प्रतिपादन किया। उनके उपदेशों में धर्म, जाति, भाषा, लिंग आदि किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता। मानवता हेतु जरूरी शिक्षा, समाज व्यवस्था, राज्य व्यवस्था आदि का सूत्रपात भी उन्होंने किया। पर्यावरण संरक्षण के बारे में जैनाचार्यों के संदेश और विधि-निषेध आज भी इतने ही उपयोगी हैं जितने कि उस समय उपयोगी थे। इस देश को भारत नाम देने वाले भरत और बाहुबली ने युद्ध में भी अहिंसा का ध्यान रखा। उन्होंने 2 सेनाओं में होने वाले युद्ध को टाला। इसके पीछे जो भाव था वह था मानवता का कल्याण, क्योंकि युद्ध में धर्म, जाति और भाषा नहीं देखी जाती। विश्व में युद्ध के इतिहास तो लाखों लोगों के खून से ही लिखे जाते रहे हैं। अध्यक्षीय संबोधन में प्रो. संघवी ने कहा कि आज भी जैनाचार्य और जैन साधु मानव मात्र के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। इतना ही नहीं उनकी तो दृष्टि में छोटा से छोटा जीव भी दया और करुणा का पात्र होता है। यदि हमें विश्व में शांति स्थापित करनी हैं तो जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित अहिंसक जीवन शैली को अपनाना होगा। इसी में मानव मात्र की भलाई है।

कार्यक्रम में डॉ. सरोज जैन-उदयपुर, डॉ. देवकुमार जैन-रायपुर, डॉ. गोकुल चन्द जैन-वाराणसी, डॉ. सुनीता जैन-वाराणसी, डॉ. प्रकाशचंद जैन, डॉ. सुशील सालगिया, डॉ. प्रगति जैन, डॉ. मनीषा जैन, श्रीमती रेखा पतंग्या, श्रीमती उषा पाटनी, श्रीमती समता जैन, डॉ. सरोज कोठारी, श्री सुभाष भाचावत, डॉ. सुरेखा मिश्रा, श्री अरविंद जैन, श्री माणकचंद जैन, श्राविकाश्रम की बहनें एवं उदासीन आश्रम के भैय्याजी आदि उपस्थित रहे।

कार्यक्रम का सशक्त संचालन वीर निकलंक के यशस्वी एवं क्रांतिकारी सम्पादक श्री रमेश कासलीवाल ने किया। आचार्य श्री के व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी देने के साथ ही आभार माना संस्था सचिव डॉ. अनुपम जैन ने।

Report of open session (1.12.10) at Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

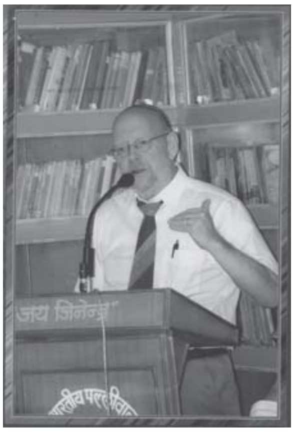

Prof. Nathan Katz

During his visit to India after taking over as the 'First Bhagwan Mahavir Professor of Jain Studies' at the Florida International University (FIU) USA, Prof. Nathan Katz visited Indore on December 1, 2010 on the invitation of Kundakunda Jñånapî²ha research centre (KKJ) of Devi Ahilya Vishwa Vidyalaya (University) (DAU).

Prof. Katz graced the Rashtriya Jain Vidya Sangosthi (National Symposium on Jainology) as a distinguished chief guest. The Interaction with him at a specially convened open session of the conference highlighted the promising possibilities of forging mutually beneficial bilateral cooperation and exchanges in Jain studies and research with a global perspective.

Prof. Katz elucidated his objective and strategy of promoting Jain studies in a western university like the FIU, and was interested in determining how Jain studies could be taught in a manner, that is authentic to the tradition and at the same time relevant to contemporary issues. He felt that through bilateral exchanges with well-known Jain Research Institutes in India, He could promote and coordinate Institutional linkages among universities in North America and Universities in India.

Addressing Dr. M.K. Pandya, on the Dias Shr. S.K. Jain, Prof. Katz & Dr. N.P. Jain

Very succinctly with his background of being professor of Religious studies at the FIU, he had already tried out with encouraging response introduction of key aspects of Jain philosophy across different faculties of economics, sociology, environmental science, psychology, philosophy and human behaviours. Programs Introducing need and desirability of promoting Ahi´så, Aparigraha and Anekånta had proved popular at undergraduate levels. So was the concept of vegetarianism.

At the open session presided over by Dr. N.P. Jain, former Indian Ambassador to UN, and globally well-known Jaina scholar and lucidly concluded by Dr. Anupam Jain, Executive Director of Kundakunda Jñånapî²ha proved to be a worthwhile exercise with the erudite expression of views of distinguished Jaina scholars, academicians and thinkers like Prof. G. Kawadia, Head School of Economics of Devi Ahilya University, Dr. Manmath Patni, Management Educationist and nutritionist, Dr. Mahendra Pandya, renowned NRI and social reformer, Mr. Vikas Kawadia post graduate student studying in USA and Er. S.K. Jain, leading Industrialist and social leader.

The conclusions of the open session could form the substance of a Memorandum of Understanding (MOU) between FIU and KKJ. The Vice Chancellor of DAVV lent his till and wholehearted support to giving concrete shape to the initiative in his address at the inaugural session of the Symposium.

(1) FIU and KKJ could make two very compatible partners sharing the right wavelength. FIU had the benefit of resources as a state-supported university coupled with establishment of the JAIN CHAIR in active financial-cum-conceptual cooperation of local florida-based Jain community. Like wise KKJ sponsored and liberally supported by the distinguished Kasliwal family of Indore inspired by the family patriarch and farsighted Jain leader the late shri Deo Kumar Singh Kasliwal and presently headed by scholarly and dedicated Dr. Ajit Kasliwal. It had in the course of past 23 years established an inspiring and rich record of meaningful research on varied aspects of the authentic Jain tradition. It has to its credit 40000 Books and various publications on Jain philosophy and has awarded Ph.D. degrees to over 24 Jain and non Jain scholars. Its Quarterly journal "Arhat Vacana" has made its mark as one of the few widely read research journals of Jainism. KKJ also enjoys the unique distinction of top research institution of the prominent Digambar sect of Jain religion, and has a rich collection of rare Jain manuscripts.

(2) KKJ agrees in principle to receive undergraduate students of FIU for a specific period of time for teaching them authentic Jain tradition as per mutually agreed syllabus. Like wise it would welcome select faculty from FIU for undertaking research work with the help of the exhaustive reference library of the Institute under the guidance of distinguished Jain scholars.

Financial and other details could be worked out in due course once the program gets a concrete shape and format.

(3) KKJ and FIU agree upon a priority list of joint research topics on varied aspects of Jain relation encompassing both its theory as well as relevance to cosmic science, economics, mathematics, environmental science, social consciousness inherent in observance of Jain principles, philosophical significance of religious festivals like Paryushan, as well as the essence of ancient religious texts like the Ågams, Samayasåra of Åcårya Kundakunda, Tattvårtha sūtra, Tiloyapaṇṇatti of Yativrasabha to name a few.

(4) KKJ agrees to popularize and promote undergraduate certificate program of FIU in Jain studies. With mutual discussion, the six different courses could be identifies with detailed syllabus and agreement in the inputs to be provided by both the institution.

KKJ would also assist in Introducing Jain awareness courses across syllabus in different faculties on the lubes already being experimented hy FIU in USA.

(5) KKJ would endeavour to assist FIU in getting Indian sponsors for funding Jain studies in FIU as well as Jain research program agreed upon between FIU and KKJ.

(6) Both sides look forward to proactive and meaningful collaboration and exchanges. KKJ would also be happy to serve on the International Advisory Board of FIU, particularly in view of to being the foremost research institution in the Digambar sect of Jain religion with a broad and liberal interfaith perspective.

(Dr. Anupam Jain, Executive Director of KKJ has been appointed as academic advisor of Bhagwan Mahavir Professorship of FIU, Miyami)

(7) KKJ would await with keen interest the response of FIU and on that basis proceed with finalizing the MOU with concrete action programs and modalities of execution in cooperation with the FIU.

पुष्पगिरि में विद्वत् सम्मेलन सम्पन्न

श्रीमद जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, पुष्पगिरि (सोनकच्छ) में दिनांक 18 जनवरी 2011 को आचार्य श्री पुष्पदन्तसागरजी की प्रेरणा एवं पूज्य मुनि श्री पुलकसागरजी के मार्गदर्शन में विद्वत् सम्मेलन आयोजित किया गया।

वरिष्ठ विद्वान **पं. खेमचन्द जैन** (कार्याध्यक्ष-तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ) जबलपुर की अध्यक्षता एवं युवा विद्वान तथा तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के महामंत्री **डॉ. अनुपम जैन** के संयोजकत्व में आयोजित इस सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में पंडिताचार्य स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी मूडबिद्री उपस्थित रहे। **'पुष्पगिरि तीर्थ एवं जनकल्याणकारी योजनाएं'** शीर्षक केन्द्रीय विषय पर बाहर से पधारें विद्वानों डॉ. देवकुमार जैन-रायपुर, डॉ. सुशील जैन-मैनपुरी, डॉ. संजीव सराफ-वाराणसी, डॉ. सविता जैन-उज्जैन, पं. अशोक शास्त्री-दिल्ली, पं. वृषभसेन जैन-सांगली, पं. चन्द्रकांत गुन्डप्पा-कर्नाटक, पं. पारस उपाध्याय-कोल्हापुर ने अपने विचार व्यक्त किये। इंदौर से श्री जयसेन जैन, श्री रमेश कासलीवाल, श्रीमती सुमन जैन, श्रीमती उषा पाटनी, डॉ. संगीता विनायका, श्री अभय बाकलीवाल एवं डॉ. सुरेखा मिश्रा भी उपस्थित रहीं।

मंच पर आचार्य श्री पुष्पदंतसागरजी आचार्य श्री कुमुदनन्दीजी, आचार्यश्री गुप्तिनंदीजी एवं आचार्यश्री पुष्पदंतसागरजी के शिष्यगण (मुनिराज) विराजमान थे।

वक्ताओं ने आचार्य श्री पुष्पदन्त सागरजी की प्रेरणा से संचालित हो रही 27 जनकल्याणकारी योजनाओं की चर्चा करते हुए इस बात को रेखांकित किया कि यह तीर्थ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मानव कल्याण की योजनाओं के कारण धार्मिक आस्था के केन्द्र के अतिरिक्त जनजागरण एवं संस्कृति संरक्षण का केंद्र भी बनेगा। मुनिश्री पुलकसागरजी महाराज की प्रेरणा से बनाये गये वात्सल्य धाम की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए वक्ताओं ने कहा वे दिन दूर नहीं जब इस संस्था से जैन समाज के बच्चे आई.ए.एस डॉक्टर और इंजीनियर बनकर निकलेंगे।

वक्ताओं ने आचार्य श्री से आग्रह किया कि संस्कृति के संरक्षण एवं जैन साहित्य के अध्ययन एवं अनुसंधान की योजनाओं को प्राथमिकता के आधार पर पूर्ण करायें क्योंकि आज विश्व में जैन साहित्य की विशेषतः मूल परम्परा के साहित्य की उपेक्षा हो रही है। इसके फलस्वरूप अनुसंधानकर्ताओं विशेषत: विदेशी विद्वानों को मूलपरम्परा के साहित्य के बारे में त्रुटित, दोषपूर्ण एवं पूर्वाग्रह के साथ लिखी गई जानकारियाँ ही मिलती हैं। हमारे आचार्यों के काल, कृतित्व एवं अवदान के बारे में सम्यक् जानकारी नहीं मिल पा रही है। इस बारे में पुष्पगिरि तीर्थ को ध्यान देना चाहिये।

पूज्य आचार्य श्री ने विद्वानों का आव्हान किया कि वे निरन्तर इस क्षेत्र पर आवागमन बनाये रखें और अपने सुझाव भी मुझे देते रहें। सभी अच्छे सुझावों का सदैव स्वागत है। आपने कहा आलोचनाओं की तो मैं परवाह नहीं करता किन्तु अच्छे कार्यकर्त्ताओं और विद्वानों का सदैव सम्मान करता हूँ।

समागत सभी विद्वानों का प्रशस्ति पत्र, प्रतीक चिन्ह, शाल एवं पगड़ी से सम्मान किया गया। पूज्य आचार्य श्री का वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद सभी विद्वानों को मिला।

डॉ. अनुपम जैन

वैशाली संस्थान में डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी स्मारक व्याख्यानमाला

प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली में डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी स्मारक व्याख्यानमाला का आयोजन 20 नवम्बर 2010 को किया गया, जिसका प्रारम्भ संस्थान की व्याख्याता डॉ. मंजुबाला के मंगलाचरण-णमोकार मंत्र एवं सरस्वती वन्दना से हुआ। तत्पश्चात् समागत अतिथियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलित कर व्याख्यानमाला का विधिवत् उद्घाटन किया गया। इसकी अध्यक्षता डॉ. रवीन्द्र कुमार सिंह अध्यक्ष, दर्शन विभाग, भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर ने की। संस्थान के निदेशक ने समागत अतिथियों का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया। इसके बाद अध्यक्ष द्वारा वर्ष-2008 में **'प्राकृत और जैनशास्त्र'** विषय में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले संस्थान के छात्र श्री रत्नाकर शुक्ल को 'श्रीमती तुलसादेबी गोरेलाल जैन चेरिटेबल ट्रस्ट, नागपुर' की ओर से प्रवर्तित **'प्रो. भागचन्द्र पुष्पलता जैन स्वर्ण पदक'** प्रदान किया गया।

व्याख्यानमाला को सम्बोधित करते हुए डॉ. श्रीयांश कुमार सिंघई आचार्य एवं अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), जयपुर ने **'पवयणपाहुड में श्रमण'** विषय पर व्याख्यान दिया, उन्होंने प्रवनचसार जैसे गूढ़ ग्रन्थ के सन्दर्भ में श्रमण के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि जिस कार्य को करने में आनन्द मिलता है वह कार्य अच्छा होता है। इसी आधार से हमें अच्छे बुरे का विवेकपूर्वक निर्धारण करना चाहिए।

अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ. रवीन्द्र कुमार सिंह ने कहा कि वक्ता ने अपने व्याख्यान में मानव जीवन का निहितार्थ बता दिया है। यदि हम आज के इस व्याख्यान से थोड़ा भी ग्रहण कर सके तो जीवन सार्थक हो जायेगा। संस्थान में ऐसे व्याख्यानों के आयोजनों से मानवमात्र का भला होगा।

अन्त में संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभचन्द्र जैन ने सभी आगत अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त किया।

डॉ. जिनेन्द्र जैन को 'विक्रम कालिदास राष्ट्रीय पुरस्कार'

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ के संस्कृत एवं प्राकृत विभाग के एशोसिएट प्रोफेसर एवं महावीर पथ-पत्रिका के प्रधान सम्पादक डॉ. जिनेन्द्र जैन को विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में आयोजित कालिदास समारोह में 'विक्रम कालिदास राष्ट्रीय पुरस्कार 2010' से सम्मानित किया गया। डॉ. जैन को यह पुरस्कार कालिदास समारोह में प्रस्तुत शोध आलेख **'कालिदास के संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा का वैशिष्टय'** पर दिया गया। पुरस्कार स्वरूप प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, अंगवस्त्र एवं पुरस्कार राशि प्रदान की गयी। इससे पहले डॉ. जैन को राजस्थान सरकार एवं अनेकों सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ श्री महावीरजी द्वारा प्रवर्तित 2005 का ब्र. पूरणलता ऋद्धि पुरस्कार उनकी मौलिक कृति **'जैन काव्यों का दार्शनिक मूल्यांकन'** के लिए प्रदान किया जा चुका है। ज्ञातव्य है कि डॉ. जैन 10 पुस्तकों तथा करीब 150 शोध आलेखों का लेखन करने के साथ-साथ कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डल के सदस्य एवं सम्पादक हैं।

ज्ञातव्य है कि डॉ. जिनेन्द्र जैन प्रो. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर के शिष्य एवं कर्मठ युवा विद्वान है।

श्रुत सेवा यंग अवार्ड समर्पण समारोह सम्पन्न

धर्म प्रभावना जनकल्याण परिषद (रजि.) द्वारा युवा विद्वानों के प्रोत्साहन हेतु प्रतिवर्ष प्रवर्तित श्रुत सेवा यंग अवार्ड का समर्पण समारोह परम पूज्य आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज ससंघ के सानिध्य में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, गोरेगांव मुम्बई में हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस वर्ष (2010) यह पुरस्कार युवा विद्वान पं. सागर जैन शास्त्री, मुम्बई को प्रदान किया गया।

समारोह का सफल संचालन श्री आशीष जैन शास्त्री जयपुर द्वारा किया गया। इस अवसर पर स्व. श्रीमती कुन्ती देवी सुमत प्रसाद जैन की स्मृति में डॉ. सुधीन्द्र जैन मुम्बई ने अगले पाँच वर्ष तक अपनी ओर से उक्त पुरस्कार देने की घोषणा की।

आचार्य श्री सुनील सागर जी महाराज ने अपने आशीष वचन में कहा कि वन्दनीय विद्वान नहीं उसकी विद्वत्ता होती है। यह व्यक्तित्व का, गुणों का सम्मान है। सन्त और समाज के बीच की कड़ी हैं, विद्वान। विद्वानों का यथोचित सम्मान होना चाहिये। **हम खूब ज्ञानी बने, ज्येष्ठ व श्रेष्ठ बने लेकिन पक्षपाती, पंथवादी, सन्तवादी न बने।** उक्त पुरस्कार युवा विद्वानों में नई ऊर्जा का संचार करेगा।

स्वागत श्री सुनील प्रसन्न व आभार श्री सुनील संचय ने व्यक्त किया।

राष्ट्रसंत मुनि श्री पुलकसागर जी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में

बहुचर्चित राष्ट्रसंत, पूज्य मुनि श्री पुलक सागरजी महाराज दिनांक 15.10.2010 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय में पधारे। लगभग 1 घंटे के अपने प्रवास में पूज्य मुनि श्री ने ग्रंथालय में संग्रहीत पाण्डुलिपियों एवं दुर्लभ पुस्तकों का सूक्ष्मता से अवलोकन किया। इस अवसर पर अपने उदगार करते हुए पूज्य मुनि श्री ने कहा **'साहित्य संस्कृति के प्राण है। वह संस्कृति और सभ्यता मर जाती है जिसके पास साहित्य न हो। मैं यहाँ आकर पूर्ण आस्था से कह सकता हूँ। यह शोध संस्थान सम्पूर्ण साहित्यों के पुनर्जन्म की पुण्यभूमि बनेगी। मैं अपने शुभाषीश प्रदान करता हूँ।'**

मुनि श्री की अगवानी संस्था के अध्यक्ष डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल, आश्रम के अधिष्ठाता ब्र. अनिल जैन एवं प्रबंधक श्री अरविंद जैन ने की। ज्ञानपीठ के बारे में विस्तृत जानकारी सचिव डॉ. अनुपम जैन एवं पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. सुरेखा मिश्रा ने दी। इस अवसर पर बाल ब्र. पं. रतनलाल शास्त्री वीर निकलंक के सम्पादक श्री रमेश कासलीवाल, श्री माणकचंद जैन, आश्रम के ब्रह्मचारी भैय्या, श्राविकाश्रम की बहिनें एवं ज्ञानपीठ परिवार के सदस्य उपस्थित रहे।

विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न

क्लर्क कालोनी, इन्दौर, 16.02.11

महोपवासी, परम तपस्वी, आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज के जन्म दिवस के अवसर पर परम्परा के **पट्टाधीश आचार्य श्री योगीन्द्रसागर जी महाराज** के ससंघ पावन सान्निध्य में 16 फरवरी 2011 को 2 सत्रों में विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। डॉ. सविता जैन के निर्देशन में आयोजित इस संगोष्ठी का संयोजन तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के महामंत्री डॉ. अनुपम जैन ने किया।

16.02.2011, प्रात: 9.00 बजे, प्रथम सत्र– डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती', महामंत्री- भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् की अध्यक्षता तथा दिगम्बर जैन महासमिति मध्यांचल के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र बाकलीवाल के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न इस सत्र का मंगलाचरण डॉ. संगीता विनायका ने किया। सत्र में पं. शीतलचंद जैन–ललितपुर, डॉ. सुशीला सालगिया–इन्दौर, श्रीमती उषा पाटनी– इन्दौर, ब्र. अनिल जैन 'शास्त्री'-इन्दौर एवं श्री रमेश कासलीवाल-इन्दौर ने अपने विचार व्यक्त किये।

पं. शीतलचंद जैन, ललितपुर ने कहा कि आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज महान तपस्वी एवं वचन ऋद्धि के धारी थे। उनकी समाधि के उपरान्त वरिष्ठतम् दीक्षित शिष्य बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागर जी महाराज को उनके पट्ट पर सुशोभित कर आगमानुसार अनुकरणीय कार्य किया गया है। सत्र के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार 'भारती' बुरहानपुर ने कहा कि **आगम के अनुसार बालाचार्य को ही आचार्य का पद प्रदान किया जाता है।** आचार्य श्री सन्मतिसागरजी ने जितने दिन उपवास किये उससे कम दिन आहार ग्रहण किया। ऐसे तपस्वी के दर्शन मात्र से ही वैराग्य के भाव बनते हैं। आचार्य श्री योगीन्द्रसागर जी महाराज ने अपने दीक्षागुरु आचार्य श्री सन्मतिसागर जी के जीवन विशेषत: उनके वात्सल्य के संस्मरणों को सुनाया और बताया कि उन जैसा संत दूसरा नहीं है। आपने बताया कि सन्मतिसागरजी कहते थे '**संयम पर तू ध्यान रखना।** सारी विद्यायें स्वयं सिद्ध हो जायेगी और विद्या प्राप्त होते ही चमत्कार हो जायेगा।'

16.02.11, मध्यान्द 2.00 बजे, द्वितीय सत्र– यह सत्र पं. पद्मचन्द जैन 'शास्त्री'–पानीपत की अध्यक्षता में श्रीमती उषा पाटनी के मंगलाचरण से प्रारंभ हुआ। इस सत्र में श्री राजेन्द्र जैन-सनावद, श्री जयसेन जैन–इन्दौर, श्री नरेश पाठक–पन्ना, डॉ. अनुपम जैन–इन्दौर, डॉ. संगीता विनायका– इन्दौर, डॉ. सुरेखा मिश्रा–इन्दौर एवं श्री अशोक शास्त्री–इन्दौर ने पूज्य आचार्य श्री सन्मतिसागरजी के दीर्घ तपस्वी एवं संयमित जीवन पर विचार रखें। सभी वक्ताओं ने प्रतिपादित किया कि इन्दौर की समाज ने आचार्य श्री के पटट् पर आचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज को प्रतिष्ठित कर संस्कृति की महान सेवा की है और आशा व्यक्त की कि लगभग 150 दीक्षायें देकर आचार्य श्री सन्मतिसागर जी ने जैन संस्कृति की जो महान सेवा की है उस क्रम को आगे बढ़ाते हुए आप अपने साहित्यिक अवदानों और आगमोक्त चर्या के माध्यम से इस क्रम को आगे बढ़ायेंगे।

दिगम्बर जैन समाज, क्लर्क कालोनी द्वारा शाल, श्रीफल एवं सम्मान राशि द्वारा सभी विद्वानों का सम्मान किया गया। पूज्य आचार्य श्री के मंगल आशीर्वचन से संगोष्ठी का समापन हुआ।

रमेश कासलीवाल

सम्पादक-वीर निकलंक

श्रुतधाम महोत्सव

अनेकान्त ज्ञान मंदिर - श्रुतधाम बीना में परम पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज, परम पूज्य मुनि श्री सरलसागरजी महाराज के मंगल आशीर्वाद से एवं परम श्रद्धेय ब्र. संदीप जी 'सरल' के पुनीत सान्निध्य एवं मार्गदर्शन में श्रुतधाम महोत्सव 20-31 जनवरी 2011 के मध्य आयोजित किया गया। 20 जनवरी 2011 को ध्वजारोहण डॉ. महेन्द्र जी, श्रीमती कांति जैन, कनाडा ने किया। वेदी शिलान्यास का पुनीत कार्यक्रम पं. नन्हें भाई शास्त्री, सागर ने करवाया। श्रुतधाम के नाम से निर्मित सी.डी. (ऑडियो) का लोकार्पण श्री वीरेन्द्र कुमार अशोकनगर ने किया। ब्र. संदीपजी 'सरल' के मंगल प्रवचन भी हुए। 21 जन. को भक्तामर मंडल विधान सानंद सम्पन्न हुआ। 22 जनवरी 2011 को मकराना (राजस्थान) से श्री आदिप्रभु धर्मप्रभावना रथयात्रा का विधिवत् तरीके से प्रस्थान करवाया।

30 जनवरी को अनेकांत ज्ञान मंदिर में प्रातः 9.00 बजे श्री महेन्द्रसिंह एस.डी.एम. महोदय ने मां जिनवाणी की स्थापना रथ पर की, श्री पी.सी. जैन तहसीलदार, विधायक डॉ. विनोद पंथी ने मां भारती की आरती करके शोभायात्रा प्रारम्भ करवाई। एक वृहद् शोभायात्रा हर्षोल्लास, उमंग के साथ शहर के प्रमुख मार्गों से होती हुई कृषि उपज मंडी के विशाल प्रागंण में पहुँचकर धर्मसभा के रूप में परिणत हुई। ब्र. संदीप जी 'सरल' ने धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि आज की ऐतिहासिक शोभायात्रा का वर्णन तीन शब्दों में किया जा सकता है। अभूतपूर्व, अनुपम एवं अविस्मरणीय।

31 जन. को घटयात्रा एवं वेदीशुद्धि का कार्यक्रम अतिभव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। 1 फरवरी 11 को प्रातः 8.30 बजे श्री आदिनाथ निर्वाण कल्याणक कार्यक्रम सम्पन्न किया गया एवं वेदी पर भगवान आदिनाथ का मनोज्ञ जिनबिम्ब विराजित किया गया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परीक्षा संस्थान द्वारा दीक्षान्त समारोह आयोजित

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परीक्षा संस्थान के द्वारा संचालित ज्योतिष प्रशिक्षण के अंतर्गत दीक्षान्त समारोह दिनांक 09.05.2011 को आयोजित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्रीमती विमला कासलीवाल ने की मुख्य अतिथि नवनाथ आश्रम के संस्थापक श्री दादू महाराज थे। विशेष अतिथि के रूप में श्रीमती अनुपमा जैन उपस्थित थी। मुख्य अतिथि ने अपने उद्बोधन में विभिन्न पहलुओं पर सटीक व निर्णायात्मक सुझाव दिये। वर्तमान कुरीतियों पर प्रहार करते हुए छोटे-छोटे कारगर उपाय भी सुझाये। कालसर्पयोग, पितृदोष, विवाह व शुभ मुहूर्त आदि के समय ध्यान रखी जाने वाली सावधानियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

इस अवसर पर प्रख्यात ज्योतिषाचार्य श्री शिव मेहता एवं श्री मोहन शर्मा ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम का सशक्त संचालन अधिष्ठाता ब्र. अनिल जैन ने किया। आगन्तुक अतिथियों का स्वागत श्री अरविन्द कुमार जैन व श्री माणकचंद जैन ने किया व आभार प्रशिक्षक मोहन शर्मा ने माना।

संवेदनशीलता के लिए स्याद्वाद जरूरी है – पूज्य आचार्य विद्यानंद मुनिराज

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
के जैन दर्शन विभाग में 'स्याद्वाद' पर एक दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी

स्याद्वाद बोलने की कला का नाम है, यह सत्य तक पहुंचने का मार्ग है। मनुष्य में संवेदनशीता के लिए स्याद्वाद जरूरी है। स्याद्वाद हमें सिखाता है कि जैसे आपको बोलने का अधिकार है वैसे ही दूसरों को भी बोलने का अधिकार है। उक्त विचार सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य विद्यानन्द मुनिराज ने जैन दर्शन विभाग द्वारा श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नईदिल्ली में आयोजित, **'भारतीय चिंतन में स्याद्वाद'** विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन समारोह में भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ मनीषियों को संबोधित करते हुए व्यक्त किये। उदघाटन समारोह में संगोष्ठी के अध्यक्ष तथा विद्यापीठ के कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय ने आचार्य समन्तभद्र की **'वादार्थी विचराम्यहम् नरपते शार्दूलविक्रीडितम्'** पंक्तियों को उदधृत करते हुए अनेकान्त-स्याद्वाद पर उनके योगदान को याद किया। उन्होंने कहा कि मुझे सप्तभंगी-सप्तरंगी इन्द्रधनुष की तरह प्रतीत होता है जो अपनी छटा बिखरते हुए एक दिशा को दूसरी दिशा से जोड़ता है। इसी तरह 'अनेकांत तथा स्याद्वाद' एक गम्भीर विषय है जिसका अध्ययन दर्शन के सभी विद्वानों को अवश्य करना चाहिए। मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए वरिष्ठ मनीषी महामहोपाध्याय प्रो. दयानन्द भार्गव ने कहा कि हमने 'अनेकांत' जैसे गम्भीर विषय को मात्र एक सम्प्रदाय से जोड़कर बहुत संकीर्ण कर दिया है। उन्होंने **'अनेकान्त की व्यापकता'** विषय पर बोलते हुए अनेक उद्धरणों द्वारा यह सिद्ध किया कि प्रायः सभी भारतीय दर्शन अलग-अलग तरीकों से 'अनेकांत' का ही प्रयोग कर रहे हैं। विषय प्रवर्तन करते हुए संगोष्ठी के संयोजक तथा जैनदर्शन विभाग के अध्यक्ष प्रो. डॉ. वीरसागर ने कहा कि स्याद्वाद जैनदर्शन का प्राण है, बिना स्याद्वाद के जिनागम में एक भी शब्द नहीं कहा गया है। हमें उदार भावना से स्याद्वाद को समझने का प्रयास करना चाहिए। उद्घाटन सत्र का संचालन करते हुए जैन दर्शन विभाग के सहायक आचार्य डॉ. अनेकांत जैन ने कहा कि यह प्रसन्नता की बात है कि दर्शन संकाय तथा अन्य संकायों के लगभग दो दर्जन विद्वान जो स्वयं भारतीय दर्शन की अलग-अलग शाखाओं में मर्मज्ञ मनीषी है, एक माह से स्याद्वाद को समझने का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें स्याद्वाद विषयक अनेक साहित्य विभाग द्वारा उपलब्ध करवाया गया है। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. कुलदीप ने किया।

प्रथम सत्र की अध्यक्षता दर्शन जगत के मूर्धन्य मनीषी भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद के पूर्व अध्यक्ष प्रो. सिद्धेश्वर भट्ट ने की। इस सत्र में प्रमुख वक्ता जोधपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो. धर्मचन्द जैन ने 'स्याद्वाद पर लगने वाले दोषों का परिहार' विषय पर अपना व्याख्यान दिया। जोधपुर विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग के आचार्य डॉ. राजकुमार जैन तथा साहित्य-संस्कृति संकाय प्रमुख प्रो. सुदीप जैन ने स्याद्वाद के सैद्धांतिक पक्ष को सभी के समक्ष रखा। विशिष्टाद्वैतवेदान्त विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष प्रो. केदार प्रसाद परोहा ने 'विशिष्टाद्वैतवेदान्त और स्याद्वाद' पर अपने महत्वपूर्ण विचार रखे। प्रथम सत्र का संचालन डॉ. अनेकांत जैन ने किया।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की आचार्य एवं अध्यक्ष सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्रो. शशिप्रभा कुमार ने की। मुख्य वक्तव्य जैनविश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं के जैन विद्या विभाग के आचार्य दामोदर शास्त्री ने दिया। द्वितीय सत्र का संचालन प्रो. वीर सागर जैन ने किया। संगोष्ठी के संयोजक प्रो. वीरसागर, सह संयोजक डॉ. अनेकांत, डॉ. कुलदीप ने संगोष्ठी की प्रचलित विधाओं से हटकर कुछ नये प्रयोग किये जो सफल रहे। विद्वानों ने ऐसी संगोष्ठियां बार-बार आयोजित करने की प्रेरणा दी। संगोष्ठी का समापन सत्र कुन्दकुन्द भारती के प्रांगण में पूज्य आचार्य विद्यानन्द मुनिराज के सान्निध्य में होने से संगोष्ठी की गरिमा और अधिक बढ़ गयी। समापन सत्र का संचालन श्री सतीश जैन, आकाशवाणी ने किया।

जीवन के हर कार्य में संयम आवश्यक : आचार्य विद्यानन्द मुनि

परमपूज्य श्वेतापिच्छाचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज, ससंघ के पावन सान्निध्य में पुरस्कार-समारोह
पुरस्करणीय विद्वान् श्री धन्यकुमार श्रीवर्मा जैनी एवं श्री सतीश जैन (आकाशवाणी) दिल्ली

सिद्धान्तचक्रवर्ती, श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज ने ग्रीनपार्क में आयोजित एक विशाल सभा में प्रवचन करते हुए कहा कि 'अनादिकाल से भारत धर्म प्रधान देश रहा है संतों का उपदेश मानवमात्र के कल्याण के लिए होता है। वे तो सभी को गंगा की तरह शीतलता प्रदान करते हैं। जो जीवन को मंगलमय बनाए, वहीं धर्म है। अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। अहिंसा का पालन संयम से ही होता है, इसलिए जीवन के हर कार्य में संयम आवश्यक है। सभा का आयोजन परमपूज्य आचार्यश्री की 87वीं जन्म जयंती पर जैन सभा युसुफ सराय, ग्रीनपार्क, नईदिल्ली ने कुन्दकुन्द भारती न्यास द्वारा प्रवर्तित पुरस्कार समर्पण समारोह के उपलक्ष्य में किया था।

इस अवसर पर जैन सिद्धांतों के अध्ययन-अध्यापन, प्रचार–प्रसार एवं अनुसंधान हेतु सेठ नेमचन्द एवं श्रीमती शांतिदेवी जैन की स्मृति में प्रवर्तित **आचार्य नेमिचन्द्र पुरस्कार श्री सतीश जैन (आकाशवाणी) दिल्ली** को शॉल, माल्यार्पण, प्रशस्ति पत्र, स्वर्ण पदक के साथ **समाजरत्न** की उपाधि से विभूषित किया गया तथा डी.सी. जैन फाउण्डेशन द्वारा प्रवर्तित **आचार्य पार्श्वदेव पुरस्कार धन्यकुमार श्रीवर्मा जैनी (सोलापुर)** को शॉल, माल्यार्पण, प्रशस्ति-पत्र, स्वर्ण पदक के साथ **साहित्य शिरोमणि** की उपाधि से विभूषित किया गया।

आचार्यश्री ने कहा कि विद्वान ही दुनिया को रास्ता दिखाते हैं । राजा तो केवल अपने देश में परंतु विद्वान सर्वत्र पूजे जाते हैं।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ के कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय ने कहा कि आचार्यश्री ज्ञान के भंडार है। ये तो भगवान महावीर की वाणी को गन्ने के रस की तरह पिलाते है।

सभा में पूज्य उपाध्याय श्री प्रज्ञसागरजी, पूज्य गणिनी आर्यिकाश्री विद्याश्री माताजी, क्षुल्लकश्री विभंजनसागरजी, मूडबिद्री के भट्टारकश्री चारुकीर्तिजी, नांदणी मठ के भट्टारक पूज्यश्री जिनसेनजी आदि उपस्थित थे।

श्रीमती शरयू दफ्तरी ने 'स्वानन्द विद्यामृत' (भाग 5) का लोकार्पण किया एवं हिन्दी जैन बोधक के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए।

सभा संचालन डॉ. वीरसागर जैन एवं आभार समाज के अध्यक्ष श्री रमेश चन्द जैन ने किया। नए ग्रंथों 'जैनधर्म का सरल परिचय' व 'रयणसार' का लोकार्पण भी किया गया।

जैन समाज के मेधावी विद्यार्थियों के लिये प्रशासनिक सेवाओं में प्रवेश का स्वर्णिम अवसर

जीतो एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रेनिंग फाउण्डेशन द्वारा देश में छः स्थानों पर प्रशासनिक प्रशिक्षण केन्द्र पिछले 4 से 5 वर्षों से प्रारंभ किये गये हैं। नई दिल्ली, इंदौर, अहमदाबाद, चैन्नई, पुणे एवं जयपुर में स्थित इन केन्द्रों में जैन समाज के उन मेधावी छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया जाता है जो कि केन्द्रीय लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोगों द्वारा प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती हेतु आयोजित होने वाली परीक्षाओं को देने के इच्छुक होते हैं। इन्दौर स्थित प्रशिक्षण केन्द्र में केन्द्रीय लोक सेवा आयोग एवं म.प्र. लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षाओं की तैयारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। इन परीक्षाओं में सफलता पाने के पश्चात अभ्यर्थियों का चयन भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय राजस्व सेवा, म.प्र. प्रशासनिक सेवा इत्यादि के अंतर्गत विभिन्न पदों जैसे कलेक्टर, आयकर अधिकारी, विदेशी दूतावासों के अधिकारी तथा राज्य में डिप्टी कलेक्टर, पंजीयक, सहायक संचालक, विकासखंड अधिकारी, तहसीलदार इत्यादि के लिये होता है।

एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रेनिंग सेंटर, इंदौर के समन्वयक और समाजसेवी श्री सोहनलाल पारेख द्वारा बतलाया गया कि देश के समस्त छः सेन्टरों पर छात्र-छात्राओं को श्रेष्ठ कोचिंग, निवास, भोजन, लाइब्रेरी इत्यादि की सुविधाएं निःशुल्क उपलब्ध कराई जा रही हैं।

इन्दौर सेन्टर के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए डॉ. हंस कुमार जैन, अकादमिक सलाहकार से मोबाइल नं. 9425954129 पर छात्र संपर्क कर सकते हैं।

भारत विकासरत्न अवार्ड 2011 के लिये श्री आनंद कासलीवाल चयनित

जैन युवा विचार मंच के कार्याध्यक्ष, सचिव शहर कांग्रेस कमेटी, लायन्स क्लब सहयोग के पूर्व सचिव, गोयल नगर जैन समाज के उपाध्यक्ष एवं कई संस्थाओं में प्रमुख पदों पर कार्यरत समाजसेवी श्री आनंद कासलीवाल को ऑल इंडिया बिजनेस डेवलपमेंट एसोसिएशन, दिल्ली ने भारत विकासरत्न अवार्ड 2011 से सम्मान करने हेतु चुना। उन्हें यह अवार्ड उनके केमिकल, सॉल्वेण्ट, एस.एस.वायर, ए.आर.सी. केमिकल्स के क्षेत्र में विशेष उपलब्धियों के लिये संस्था द्वारा प्रदान किया जायेगा। विदित है कि श्री आनंद कासलीवाल वीर निकलंक मासिक के संपादक श्री रमेश कासलीवाल के ज्येष्ठ पुत्र हैं।

डॉ. प्रचण्डिया स्मृति पुरस्कार

हिन्दी के प्रोफेसर डॉ. आदित्य प्रचण्डिया, अलीगढ़ द्वारा अपने पिताश्री की पुण्यस्मृति में 'डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया स्मृति साहित्यवारिधि सम्मान' क.मु. हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक और साहित्यकार प्रो. हरिमोहन को उनके स्तरीय साहित्य सृजन के लिए अखिल भारतीय साहित्य कलामंच मुरादाबाद में एक भव्य समारोह में दिनांक 26 दिसम्बर 2010 को दिया गया। प्रो. हरिमोहन को इस पुरस्कार में पाँच हजार रुपए, शाल, सम्मान पत्र और सरस्वती प्रतिमा भेंट की गई।

दि. जैन महिला संगठन का रजतोत्सव एवं श्रीमती सुमन जैन का अभिनन्दन

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन, इन्दौर ने अपने स्थापना के 25वें रजत जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में 13 जनवरी 2011 को रजत जयंती महोत्सव एवं अभिनंदन समारोह का आयोजन शांति मण्डपम्, इन्दौर में किया। इसमें मुख्य अतिथि इन्दौर के महापौर श्री कृष्णमुरारी मोघे, डॉ. सुधा जैन मलैया एवं डॉ. सविता इनामदार थी। कार्यक्रम की अध्यक्षता दि. जैन समाज के अध्यक्ष इंजी जैन श्री कैलाश वेद ने की। विशेष अतिथि के रूप में श्री सचिन जैन उद्योगपति, श्रीमती अंजु माखीजा एवं सुश्री उषाजी ठाकुर भाजपा प्रदेश उपाध्यक्षा उपस्थित थे। कार्यक्रम को राष्ट्रगीत नृत्य प्रतियोगिता से संयोजित किया गया। जिसमें विभिन्न महिला संगठन की इकाईयों ने अपनी सुंदर प्रस्तुति दी।

इस अवसर पर दि. जैन महिला संगठन इंदौर की अध्यक्षा श्रीमती सुमन जैन का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनने पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा अभिनंदन किया गया। दि. जैन महिला संगठन द्वारा श्रीमती सुमन जैन को अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। दि. जैन समाज (सामाजिक संसद), खण्डेलवाल दि. जैन महासभा, कंचनबाग दि. जैन समाज, दि. जैन परवार समाज एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ, दि. जैन महासमिति एवं अनेक संस्थाओं सहित दि. जैन महिला संगठन इन्दौर की 52 इकाइयों ने संस्था की नीव का पत्थर श्रीमती सुमनजी जैन का शाल श्रीफल, स्मृति चिन्ह भेंट कर अभिनंदन किया। इस अवसर पर श्री दिग्विजय सिंहजी जैन ने माँ अत्री देवी जैन चेरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना की घोषणा की जिसके माध्यम से समाज के निर्धन एवं कमजोर वर्ग के बच्चों की शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु व्यय दिया जायेगा। एतदर्थ आपने प्रथम चरण में 5,40,000 की राशि का चेक डॉ. अनुपम जैन को सौंपते हुए उन्हें ट्रस्ट का सचिव घोषित किया।

अर्हत् वचन सदस्यता शुल्क

	भारत		विदेश
	व्यक्तिगत	संस्थागत	
वार्षिक	150=00	250=00	US$20=00
10 वर्षीय	1500=00	2500=00	US$ 200=00
आजीवन/सहयोगी	2100=00	--	US$ 300=00

नोट - चेक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के नाम भेजें।

अक्षराभिषेकोत्सव 2011 : भव्यता के साथ सम्पन्न

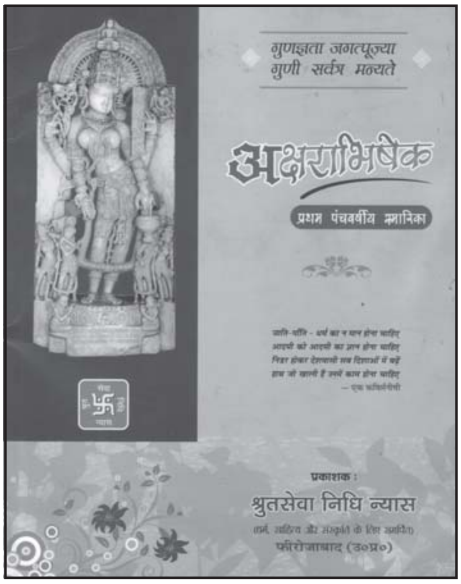

धर्म साहित्य और संस्कृति के लिए समर्पित फिरोजाबाद जनपद की साहित्यिक संस्था श्रुतसेवा निधि न्यास द्वारा अपने छठवें वार्षिक समारोह अक्षराभिषेकोत्सव 2011 के दौरान समाज के अग्रणी व्यक्तियों का सम्मान समारोह श्री रामचन्द्र पालीवाल ऑडीटोरियम में आयोजित किया गया। इसी क्रम में दस लोगों को अपने-अपने कार्यक्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने पर मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि श्री सुरेशचन्द्र जैन, कुलाधिपति-तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद ने मां सरस्वती के चित्र पर द्वीप प्रज्ज्वलित कर किया। इसके बाद बृजराज सिंह इण्टर कॉलेज के छात्र-छात्राओं ने सरस्वती वंदना एवं स्वागत गीत की प्रस्तुति की। कार्यक्रम के दौरान कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री पुष्पराज जैन को **समाज विभूषण** की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया। वहीं नगर पालिका चेयरमैन श्री मनीष असीजा को **सेवागुण-रत्नाकर** की मानद उपाधि से अलंकृत किया गय। उत्तर प्रदेश रत्न एवं साहित्यानुरागी उद्योगपति श्री बालकृष्ण गुप्त को **श्रुतधर-कण्ठाभरण** की उपाधि से अलंकृत किया गया। नगर में मुंसिफी की स्थापना से लेकर नगर को जनपद घोषित किये जाने तक लम्बे जन आंदोलनों में सक्रिय रहे श्री प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी को **प्रेमानन्द-मूर्ति** की उपाधि से सम्मानित किया गया। गत दस वर्षों से यूपी एजूकेशन बोर्ड से उत्तम अनुशासन और परीक्षाफल के लिये बृजराज सिंह इण्टर कॉलेज को ए श्रेणी का प्रमाण पत्र दिया जा रहा है। इसको देखते हुए श्री विश्वदीप सिंह को **शिक्षालोक-भास्कर** की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया। डॉ. श्री रमाशंकर को **नेत्रव्याधि-विमोचन** उपाधि से अलंकृत किया गया। श्री आश्चर्यलाल नरूला को **सेवा संस्कार सुधाकर** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। पं. सुरेन्द्र कुमार जैन को **जिनागमोपासक** मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। श्रीमती इन्दुकान्त जैन को **श्रुतसेविका** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। वहीं प्रियम जैन को सीबीएससी बोर्ड की 12वीं कक्षा में नगर में सबसे ज्यादा नम्बर लाने पर, अंशुल जैन को आईआईटी की परीक्षा में भारत में 706वीं रैंक लाने पर पलाश अग्रवाल को जेईई 2010 की परीक्षा में 1111वीं रैंक लाने पर सम्मानित किया गया। मानद उपाधि से सम्मानित सभी लोगों का माला व शाल उढ़ा कर एवं प्रतीक, प्रशस्तिपत्र तथा उपहार देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि नगर पालिका चैयरमेन श्री मनीष असीजा का भी सम्मान किया गया। कार्यक्रम के दौरान श्रुत सेवा निधि द्वारा अक्षराभिषेक श्रीमती इन्दुकान्त जैन द्वारा लिखी **दर्द का रिश्ता** श्री आश्चर्यलाल नरूला द्वारा लिखी गयी **योग का आश्चर्य** व डॉ. श्री रामसिंह शर्मा द्वारा लिखी **गीता का दिव्य संदेश** का विमोचन किया गाय। समारोह के दौरान अध्यक्षता कर रहे कन्नौज से आये प्रमुख उद्योगपति एवं समाज सेवी श्री

पुष्पराज जैन ने कहा कि संस्था के क्रियाकलापों की विस्तृत जानकारी होने पर उन्हें खुशी हुई है। संस्था द्वारा कराये जा रहे कार्यों को देखते हुए **उन्होंने संस्था को 1 लाख 11 हजार रूपये देने की घोषणा की।** कार्यक्रम के मुख्य अतिथि चांसलर-तीर्थंकर यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद श्री सुरेशचन्द्र जैन ने कहा कि जो लोग स्वैच्छिक लाभ देखकर किसी संस्था की स्थापना करते हैं, उस संस्था का विकास नहीं होता है। जनपद में 30-40 हजार जैन समाज की आबादी में अगर आपसी गुटबंदी न हो तो यहां भी जैन विश्वविद्यालय खुल सकता है। मुरादाबाद में 150 एकड़ जमीन में तीर्थंकर महावीर के नाम से इंजीनियरिंग कॉलेज एवं मेडिकल कॉलेज सहित लगभग 15 कॉलेज हैं। जहां उत्तर भारत के 23 राज्यों से आये छात्र-छात्रायें शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। कार्यक्रम का संचालन अनूपचन्द्र जैन ने किया। कार्यक्रम के दौरान नरेन्द्र प्रकाश जैन, विजय कुमार जैन, अनूपचन्द्र जैन, प्रमोद कुमार, वीरेन्द्र कुमार जैन, ललितेश कुमार जैन, सुभाषचन्द्र जैन, मुकेश कुमार, हरीकिशन जैन, सुरेशचन्द्र जैन, उपेन्द्र कुमार, जिनेन्द्र कुमार जैन एवं नगर के सभी वर्गों के गणमान्य नागरिक, उद्योगपति एवं समाज सेवी उपस्थित थे। कार्यक्रम जनवरी 2011 में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर अक्षराभिषेक शीर्षक पंचवर्षीय आख्या का भी प्रकाशन किया गया।

समारोह में उपस्थित नगर के सुधीजन

श्रुत सेवानिधि के संस्थापक – प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन

31 दिसम्बर 1933 को श्री रामस्वरूप जैन शास्त्री के यहाँ जन्म। श्री पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज के पूर्व प्राचार्य। लेखक, पत्रकार, धर्म-प्रवचनकार एवं वार्ताकार के रूप में अनेक संस्थाओं से जुड़कर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक अनूठी पहचान। शिक्षा, धर्म और समाज के क्षेत्र में दीर्घकालीन उल्लेख्य अवदान के लिए सन् 2003 में पश्चिम बंगाल दि. जैन महासभा, कोलकाता द्वारा 'लाइफटाइम अचीवमेण्ट अवार्ड' के रूप में सातसौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ 'मनीषा' का समर्पण। स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, चिन्तन-मनन तथा सकारात्मक एवं समन्वय मूलक विचारों के प्रचार के लिए देश-विदेश में भ्रमण। श्रीमती राजेश्वरी जैन (धर्मपत्नी) 18 फरवरी 1952 से हर सेवा-कार्य में सहयोगी हैं। अर्हत् वचन सम्पादक मण्डल के अध्यक्ष।

JATF

Announces Golden Opportunity to bright Young Graduates to become a Successful Civil Service Top Class Officer

Providing FREE Coaching & Residential Facilities to train Youth to succeed in the competitive exams conducted by UPSC and States PSC to become IAS/IFS/IPS/IRS etc. and State Administrative Officers

Our Training Centers : Delhi, Pune, Chennai, Jaipur, Indore & Ahmedabad.

Benefits to Students

- Privilege of service to Nation
- Advantage of Higher designated post in India
- Empowerment and guidance for Trade, Technology and Industries
- Contribution to Clean, Non-Violent and Good governance

Eligibility

- Bright & brilliant Graduate in any stream
- Preference to Post-Graduate and Professionals, like : Engineers, Doctors, MBAs, C.A.s etc.

Facilities

- Fully Furnished Residential Accommodation
- Hygienic and Nutritious Food
- Computer Lab
- Well Equipped Library
- Coaching Facilities
- Career Counseling
- Group Discussions

Application form for registration is available at following addresses and can be dowload from our website : www.jitoatf.org

JITO Administrative Training Foundation

JATF-Apex Office : 901, Corporate Avenue, Sonawala Road,Goregaon East, Mumbai -400 063

Registration forms can be sent at any of the following Address

Mumbai
901, Corporate Avenue
Nr. Udyog Bhavan, Sonawala Road,
Goregaon (E),
Mumbai - 400063

Delhi
WZ-No.6, VC-12, Galli No.10
Near Gurudwara, Virendra Nagar,
Tilak Nagar,New Delhi -110058

Chennai
1038, 26th Street,
Ponni Colony.
Annanagar, Chennai - 600040

Pune
1st Floor,
Oswal Bandhu Samaj Building,
Shankar Seth Road,Pune - 411042

Jaipur
88, Paras, Neelkant Nagar,
Purani Chungi,
Queens Road, Jaipur - 302021

Ahmedabad
8/A, Suketu Society, Opp. Bhumipooja Apartment,
Dadasaheb Char Pagla Road, Behind Boys Hostel,Navrangpura,
Ahmedabad - 380 009

Indore
46/1, Anurag Nagar,
Behind Press Compex
Indore - 452 010

For any query / clarification, please contact :
Mumbai – 9819849764 (Anil Jain) and Delhi – 9958606797 (Pramode Jain)
Email:info@jitoatf.org

Parashwanath Vidhyapeeth

Parashwanath Vidhyapeeth Varanasi (PV) Invites Scholars of Jain Philosophy, Religion, nonviolence to join its ambitious expansion plans.

PV Provides an excellent fully equipped campus adjacent to BHU and apportunities to teach and work with foreign scholars and students in India and abroad. PV is an approved external research organization of BHU.

PV is a well known Jain education and research organization since 1937. PV is honoured to have leading scholars of Jainism with it since its inception. It has now planned a major expansion plan to conduct research and its application in Jain doctrine, ethics, languages, meditaiton, rituals, history, art and their application to resolve issues of society in 21st century.

PV has openings for the following academic staff :

Position	Qualification	Experience
Professor / Principal Research Fellow	Ph.D.	10 + years
Associate Professors / Senior Research Fellows	Ph.D.	6 + years
Assistant Professors / Research Fellows	Ph.D.	1 + years
P.G. Research Fellows	Ph.D.	Fresh
Research Assistants	M.A. / Ph.D.	1 year for M.A.

Other Requirements : The candidates should have demonstrable experience of conducting research and publishing and / or teaching in reputed universities or research institutes. Fluency in English and computer working is desirable along with command of Hindi / Prakrit or Sanskrit. Candidates who have superannuated / retired may also apply for suitable openings. Candidates for Research Associates without a Ph.D. will have the option to work for a Ph.D. also while serving PV.

Salary : Competitive salary along with living accomodation at the campus shall be provided.

General : All positions are for posting at the campus of PV in Varanasi. Initially all the positions shall be on contranct basis for three years and likely to be made permanent on successful completion of the contract period. Openings, especially for foreign scholars also exist for shorter periods of 6 months to one year to work on specific projects earmarked by PV.

The President PV
D-28, Panchsheel Enclave, New Delhi - 110017
of email to isjs_pv@yahoo.com

A wonderful exhibition of a leading manuscript cellection.

1.12.10 **- Dr. Nathan katz**
Professor of Religious Studies
Florida International University
Miami (Florida) U.S.A.

Handsome collection of leading Āgama and other manuscripts like Bhaktāmbara Stotra by Ācārya Māntungaji. I would like somebody should explore me 'things' I wish to understand.

1.12.10 **- Dr. Rajkamal Sanghavi**
Prof. & Head, Department of Physics,
Govt. Holkar Science College, Indore

यहाँ पांडुलिपियों एवं अद्‌भुत भाषाओं का संग्रह है। यहां आकर ऐसा लगा जैसे हम इतिहास से रूबरु हो रहे है।

1.12.10 **– राकेश भौर**, संवाददाता दैनिक भास्कर, इंदौर

यहाँ की पांडुलिपियों ज्ञान का भंडार हैं।

1.12.10 **– रामकृष्ण मुले**, पत्रकार
पत्रिका दैनिक, इन्दौर

बहुत प्रभावित हुआ हूँ ज्ञानपीठ को देखकर।

2.12.10 **– डॉ. वाजिद कुरेशी,** प्रोफेसर उर्दू,
79/ए-2, आदर्श नगर, देवास रोड, उज्जैन

ज्ञानपीठ ने समग्र ज्ञान को पांडुलिपियों के माध्यम से संजोने एवं संरक्षित करने का जो मानद् प्रयास किया है वह भविष्य में मानव जाति को पूर्व की समृद्धि से अवगत करायेगा। आपका प्रयास अतुलनीय है।

08.03.11 **– डॉ. अजय प्रताप सिंह** - विभागाध्यक्ष,
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

यहां के लिए कुछ भी कहना कम है। (बहुत सुन्दर संग्रह है)

09.03.11 **– डॉ. कीर्ति श्रीवास्तव**
प्रभारी-संरक्षण, राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन,
11- मानसिंह रोड, नईदिल्ली

ज्ञानपीठ वास्तविक भाव में ज्ञान का प्रकाश देने वाला संस्थान है। पांडुलिपियों के संरक्षण और जन-जन में उसके प्रति जागरण का अभियान संस्थान द्वारा सराहनीय है। यहां के गतिशील निदेशक और कर्तव्यनिष्ठ उनके सहयोगियों की टीम साधुवाद और प्रशंसा की पात्र है। विशेष रूप से संस्था के कर्तव्य के प्रति लगन और दायित्व निर्वहन का जो जोश सुरेखा जी में है, वह अनुकरणीय है।

09.03.11 **– आई.पी. पाण्डेय**
पूर्व सहायक निदेशक,
राज्य संग्रहालय, लखनऊ, 9956895556,

सांस्कृतिक सम्पदा से परिपूर्ण संस्था है, जो मौलिकता को बनाये रखने में अग्रसर है।

11.03.11 **– विभाष कुमार**

मानस पथ, पश्चिमी पटेल नगर,
पटना- 800023

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में प्रतिस्थापित सांस्कृतिक प्राचीन सम्पदा को जिस तरह संजोया गया है और जैन धर्म एवं अन्य साहित्य को जिस ढंग से प्रचारित एवं प्रसारित किया जा रहा है यह इस संस्थान की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जो व्यक्ति इस कार्य को अन्जाम दे रहे हैं वे बधाई के पात्र हैं हमारी शुभकामनाएं है कि यह संस्थान भारत के अग्रणी संस्थानों में अपना नाम करेगा।

11.03.11 **– प्रो. जे.एन. गौतम**

कुलाधिसचिव
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ

27.03.11 **– जयन्त मलैया**

मंत्री, म.प्र. शासन, भोपाल

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर बहुआयामी संस्थान है। शोध, सर्वेक्षण, संरक्षण, प्रकाशन और प्रस्तुतिकरण के क्षेत्र में इसके कार्यकलाप अत्यन्त प्रशंस्य और उल्लेखनीय हैं। इसके संस्थापक, संचालक वृन्द और महामंत्री डॉ. अनुपम जी के योगदान, प्रत्युत्पन्न मतित्व और समसामयिकता के अवबोध का शतशः अभिनन्दन।

27.03.11 **– प्रो. भागचन्द्र जैन,** 'भागेन्दु', निदेशक,

संस्कृत, प्राकृत तथा जैन विद्या अनुसंधान केन्द्र, दमोह (म.प्र.)

अति उत्तम प्रयास, जितनी प्रशंसा की जाये..... थोड़ी है। इसे बनाये रखे, नई पीढ़ियों को दिशा मिलेगी।

28.03.11 **– दिनेश चौबे,**

भास्कर टी.वी, इन्दौर

बहुत अच्छी प्रदर्शनी है। बच्चों को इसके जरिये इतिहास को समझने में अवश्य मदद मिलेगी।

28.03.11 **– चैतन्य मिश्रा**

21, सेक्टर-ए, संगम नगर, इंदौर

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में आयोजित त्रिदिवसीय 'भारत में गणितीय पांडुलिपियां' विषयक राष्ट्रीय सेमिनार के साथ विशेष कक्ष में प्रकाशित ग्रंथों की व्यवस्थित प्रदर्शनी को देखने का सुअवसर मिला। इस सुव्यवस्थित ज्ञान सम्पदा को देख मन प्रमुदित हो उठा। डॉ. अनुपम जैन को बधाई।

29.03.11 **– प्रो. (डॉ.) प्रेमचन्द रॉंवका**

2-2, श्रीजीनगर, दुर्गापुरा, जयपुर (राज.)

सम्यक्ज्ञान ही जीवन उत्थान का कारण होता है प्रत्येक जीव को उस ज्ञान को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। पुस्तकालय इसमें अच्छी भूमिका अदा करते हैं। इनके माध्यम से जीवन में आत्म उत्थान की ओर अग्रसर हो। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय भी बहुत अच्छा माध्यम है। सम्यकज्ञान प्राप्त करने का। भव्य जीव सम्यकज्ञान प्राप्त कर आत्म कल्याण करें।

29.03.11 **– प्रो. विक्रम जैन**

सेवानिवृत्त प्राध्यापक-अंग्रेजी